हमारी संसद

डा. काश्यप—कुछ अन्य कृतियां

1. हिन्दी में

जवाहरलाल नेहरू और भारत का संविधान
भारतीय राजनीति में नए मोड़—दल बदल और राज्यों में राजनीति
संविधान की आत्मा
संविधान की कहानी
संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष
स्वाधीनता संघर्ष-चित्र गाथा
भारतीय सरकार एवं राजनीति
राजनीति कोश
संसदीय प्रक्रिया
बेसिक कांस्टीट्यूशनल वैल्यूज
रिफार्मिंग द कांस्टीट्यूशन
द पालिटिक्स आफ डिफेक्शन
द पालिटिक्स आफ पावर
द अननोन नीत्शे
ट्राइस्ट विद फ्रीडम
गोविन्द वल्लभ पंत—पार्लियामेंटेरियन, स्टेट्समैन एंड एडमिनिस्ट्रेटर
अवर पार्लियामेंट—एन इंट्रोडक्शन
अवर कांस्टीट्यूशन—एन इंट्रोडक्शन टु कान्स्टीट्यूशन एंड कान्स्टीट्यूशनल लॉ आफ इंडिया
लेजिस्लेटिव मैनेजमेंट स्टडीज़
द पोलिटिकल सिस्टम एंड इंस्टीट्यूशन बिल्डिंग अंडर जवाहरलाल नेहरू

2. अंग्रेजी में

हिस्ट्री आफ पार्लियामेंट आफ इंडिया (6 भागों में)
पार्लियामेंट आफ इंडिया—मिथ्स एंड रिएलिटीज
ह्यूमन राइट्स एंड पार्लियामेंट
पार्लियामेंट—विट एंड ह्यूमर
द टैन लोकसभाज़
द मिनिस्टर्स एंड द लेजिसलेचर्स
एंटी डिफेक्शन लॉ एंड पार्लियामेंटरी प्रिवीलेजेज़
हिस्ट्री आफ द फ्रीडम मूवमेंट (1857-1947)
जवाहरलाल नेहरू—द कांस्टीट्यूशन एंड द पार्लियामेंट
आफिस आफ द स्पीकर एंड स्पीकर्स आफ लोक सभा
हिस्ट्री आफ पार्लियामेंटरी डेमोक्रेसी
डीलिंकिंग रिलीज़न एंड पोलिटिक्स

भारत–देश और लोग

हमारी संसद

भारत की संसद—एक परिचय

सुभाष काश्यप

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-0257-1

पहला संस्करण : 1991

तीसरा संस्करण : 1996

छठी आवृत्ति : 2001 (*शक* 1923)

© सुभाष काश्यप, 1991

Our Parliament *(Hindi)*

रु. **50.00**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

संकेताक्षर

नियम	यदि अन्यथा उल्लेख न हो तो इसका अभिप्राय लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम से है
अनु.	भारत के संविधान का अनुच्छेद
निर्देश	लोक सभा के प्रक्रिया नियमों के अधीन अध्यक्ष द्वारा दिए गए निर्देश
राजपत्र	भारत सरकार का राजपत्र
संविधान	भारत का संविधान
सदन	लोक सभा
सदनों	लोक सभा और राज्य सभा
सदस्य	लोक सभा/राज्य सभा का सदस्य
मंत्री	मंत्रिपरिषद का सदस्य
राष्ट्रपति	भारत का राष्ट्रपति
पीठासीन अधिकारी	लोक सभा अध्यक्ष/राज्य सभा का सभापति या सदन की बैठकों की विधिवत अध्यक्षता करने वाला व्यक्ति
महासचिव	सचिव/महासचिव, लोक सभा/राज्य सभा
पृ.	पृष्ठ

भूमिका

नेशनल बुक ट्रस्ट ने बड़ी सूझबूझ से वर्षों पूर्व फैसला किया कि एक ऐसी पुस्तक निकाली जाए जो आम लोगों के लिए भारतीय संसद की परिचायक हो। किसी-न-किसी कारण यह योजना अनेक हाथों से निकलती रही और यह कार्य संपन्न होने में बहुत उतार चढ़ाव आए। पुस्तक की पांडुलिपि तैयार होने में लगभग 10 वर्ष लग गये। नेशनल बुक ट्रस्ट का बहुत बहुत धन्यवाद कि 1991 में उन्होंने प्रथम हिंदी संस्करण को पाठकों के सामने रखा। यह और भी हर्ष का विषय है कि कुछ महीनों के अंदर ही उसकी सारी प्रतियां बिक गईं और पुनर्मुद्रण की आवश्यकता पड़ गई। 1993 में द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ और शीघ्र ही 1994 में उसका भी पुनर्मुद्रण हुआ। प्रस्तुत तृतीय संस्करण यथा संशोधित है। इसमें पहले संस्करण के बाद हुए परिवर्तनों का समावेश कर आज तक की सही स्थिति देने का प्रयास किया गया है। तीन नये अध्याय तथा कतिपय ताजा सामग्री जोड़ी गई है। आशा है पुस्तक की उपयोगिता बढ़ी होगी।

दुर्भाग्य की बात है कि हमारी संसद के विषय में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध नहीं थी जो सरल एवं संक्षिप्त हो और जिसमें सभी जरूरी सामग्री भी दी गई हो। यह पुस्तक इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक प्रयास है। इसमें हमारी संसद के विषय में सुविधाजनक और सरल, गैर-तकनीकी भाषा में कुछ आधारभूत तथ्य और प्रामाणिक तथा अद्यतन जानकारी प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक स्थान पर इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि घटनाओं आदि का चित्रण निष्पक्ष और सरल हो। यह प्रयास किया गया है कि यथासंभव अनावश्यक ब्यौरे न दिये जाएं और विवादास्पद बातों में न पड़ा जाए। इस पुस्तक में संक्षेप में वर्णन किया गया है कि हमारी संसद वर्तमान रूप में कैसे आई, यह क्या है, इसके कृत्य क्या हैं, यह क्यों आवश्यक है, इसका गठन कैसे होता है और यह कैसे कार्य करती है। वस्तुतया इस पुस्तक का नाम "अपनी संसद को जानिए" या "संसद—क्या, क्यों और कैसे" भी हो सकता था।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह जानना आवश्यक है कि जिस देश का वह वासी है उसकी शासन व्यवस्था क्या है और उन संस्थाओं का स्वरूप क्या है जो उसके जीवन को शासित करती हैं और उसकी स्वतंत्रताओं की रक्षा करती हैं। जैसाकि किसी ने कहा है, "इससे अधिक महत्व की बात कभी नहीं कही गई कि जो लोग अपनी सरकार के स्वरूप को नहीं

समझते उनके लिए स्वतंत्रता और स्वतंत्र संस्थाओं को अधिक समय तक बनाए रखना संभव नहीं है" । जो राजनीतिक प्रणाली हमने अपनाई है उसमें संसद लोगों की सर्वोच्च संस्था है और अपनी स्वतंत्रता और प्रभुसत्ता के प्रतीक के रूप में उनके लिए संसद को अच्छी तरह से जानना आवश्यक है।

इस पुस्तक के पहले ही अध्याय में वैदिक काल से प्रतिनिधि विधायी संस्थाओं के उद्भव और विकास का वर्णन करके यह प्रयास किया गया है कि संसद के अध्ययन को उचित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखा जाए। इस बात की प्रायः उपेक्षा की जाती है कि आधुनिक काल में, विशेषकर भारत में, संसद कानून बनाने वाली संस्था, विधायी निकाय, होने के अतिरिक्त अन्य बहुत से कार्य भी करती है। सरकार पर राजनीतिक तथा वित्तीय नियंत्रण रखना, जनता का प्रतिनिधित्व करना और उसकी शिकायतें व्यक्त करना, संघर्षों का समाधान करना और राष्ट्रीय एकता बनाए रखना इत्यादि इसके विभिन्न कृत्य हैं। इस पुस्तक में संसद के इन विविध क्रियाकलापों का वर्णन किया गया है।

संसद का एक पहलू ऐसा है जिसका कि इस विषय पर लिखी गई अधिकांश पुस्तकों में सरसरी तौर पर ही उल्लेख किया गया है और वह है संसद के दोनों सदनों का वास्तविक कार्यकरण अर्थात, उनकी बैठकें, पीठासीन अधिकारियों की भूमिका, प्रश्नकाल और प्रस्ताव, बजट और विधायी प्रक्रिया इत्यादि। यह कहना आवश्यक नहीं कि हमारी राजनीतिक प्रणाली के सार्थक मूल्यांकन के लिए संसद के दोनों सदनों के वास्तविक कार्यकरण को अच्छी तरह समझना अनिवार्य है। अतः इन महत्वपूर्ण पहलुओं का पर्याप्त वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

आधुनिक राज्य और प्रशासनिक कृत्यों का क्षेत्र इतना विशाल और जटिल है कि विधायी प्रस्तावों की पर्याप्त छानबीन करना और प्रशासनिक कार्यों पर निगरानी रखना संसद के लिए असंभव हो जाता है। इसलिए लोकतंत्रात्मक जगत में लगभग सभी विधानमंडलों द्वारा संसदीय समिति प्रणाली अपनाई गई है। भारतीय संसद ने भी अपने कृत्यों के प्रभावी निर्वहन के लिए सहायता हेतु सुविकसित समिति प्रणाली अपनाई है। हमारी संसद में कार्य करने वाली विभिन्न समितियों, अर्थात वित्तीय तथा सामान्य और स्थायी तथा तदर्थ समितियों का इस पुस्तक में विस्तृत विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत संस्करण में 17 नयी विभागीय स्थायी समितियों का भी विवेचन किया गया है।

संसद का प्रभावपूर्ण होना काफी सीमा तक सचिवालय द्वारा इसे उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं पर निर्भर करता है। सचिवालय अपने दिन-प्रति-दिन के कार्य में कार्यपालिका से जितना स्वतंत्र होगा उतनी ही निष्पक्ष और सही जानकारी वह उपलब्ध करा सकता है और ऐसी ही जानकारी के आधार पर सांसद अपने महत्वपूर्ण कर्तव्यों का निर्वहन कर सकते हैं। स्वतंत्र सचिवालय का महत्व 1920 के शतक के बाद के वर्षों से ही महसूस किया जाने लगा था और इसलिए संसद के सदस्यों की सहायता करने वाली आदर्श संस्थाओं के रूप में लोक सभा सचिवालय और राज्य सचिवालय के विकास का भी इस पुस्तक में वर्णन किया गया है।

संसदीय शिष्टाचार और संसदीय विशेषाधिकारों की प्रायः समाचारपत्रों आदि में चर्चा की जाती है। वस्तुतया हमारी विधायी संस्थाओं के गरिमापूर्ण एवं सार्थक कार्यकरण में ये मामले महत्व का स्थान रखते हैं। संसदीय विशेषाधिकारों का अधिकांशतया गलत अर्थ लिया जाता है। वकीलों, पत्रकारों, सभी नागरिकों और स्वयं सांसदों को इनकी सीमा का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। मैंने प्रयास किया है कि न्यायिक व्याख्याओं और संसद के दोनों सदनों के, इनकी समितियों के और पीठासीन अधिकारियों के फैसलों के प्रकाश में इस महत्वपूर्ण सिद्धांत की परिधियों का विश्लेषण किया जाए।

"हमारी संसद" भारत के सभी नागरिकों के लिए है। यह पुस्तक केवल विद्वानों, व्यवसायियों और विशेषज्ञों के लिए न होकर, साधारण पाठकों, व्यस्क नवशिक्षितों और स्कूल तथा कालेजों में शिक्षा पाने वाले सभी आयुवर्गों के युवकों और युवतियों के लिए है। आशा है यह पुस्तक अधिक से अधिक लोगों द्वारा बड़ी रुचि से पढ़ी जाएगी, वे इससे लाभान्वित होंगे और यह सभी लोगों को संसद का बेहतर ज्ञान कराते हुए उन्हें एक-दूसरे के निकट लाने में सहायक होगी।

मैं नेशनल बुक ट्रस्ट और इसके प्राधिकारियों का आभारी हूं। उन्होंने बड़ी शीघ्रता से और उत्कृष्ट रूप से सस्ते दामों पर यह पुस्तक प्रकाशित की है। मुझे विशेष प्रसन्नता है कि कई अन्य भारतीय भाषाओं में भी यह पुस्तक उपलब्ध हो गई है और आशा है कि शीघ्र ही सभी भारतीय भाषाओं में इसके संस्करण प्रकाशित हो जायेंगे।

अक्तूबर 1995

सुभाष काश्यप
डी-298, सर्वोदय एनक्लेव
नयी दिल्ली-110017

1

संसदीय शासन प्रणाली का उद्भव एवं विकास

हमने संसदीय लोकतंत्रात्मक प्रणाली को सोच-समझकर ही चुना है; हमने इसे केवल इसी कारण नहीं चुना कि हमारा सोचने का तरीका कुछ हद तक ऐसा ही रहा बल्कि इस कारण भी कि यह प्रणाली हमारी पुरातन परंपराओं के अनुकूल है। स्वाभाविक है कि पुरातन परंपराओं का पुरातन स्वरूप में नहीं अपितु नयी परिस्थितियों और नये वातावरण के अनुसार बदलकर अनुसरण किया गया है; इस पद्धति को चुनने का एक कारण यह भी है कि हमने देखा कि अन्य देशों में, विशेष रूप से यूनाइटेड किंगडम में यह प्रणाली सफल रही है।

—जवाहरलाल नेहरू

प्राचीन भारत में प्रतिनिधि निकाय

26 जनवरी, 1950 के दिन भारत के नये गणराज्य के संविधान का शुभारंभ हुआ और भारत अपने लंबे इतिहास में पहली बार एक आधुनिक संस्थागत ढांचे के साथ पूर्ण संसदीय लोकतंत्र बना। लोकतंत्र एवं प्रतिनिधि संस्थाएं भारत के लिए पूर्णतया नयी नहीं हैं। कुछ प्रतिनिधि निकाय तथा लोकतंत्रात्मक स्वशासी संस्थाएं वैदिक काल में भी विद्यमान थीं (सिरका 3000-1000 ईसा पूर्व)। ऋग्वेद में "सभा" तथा "समिति" नामक दो संस्थाओं का उल्लेख है। वहीं से आधुनिक संसद की शुरुआत मानी जा सकती है। इन दो संस्थाओं का दर्जा और इनके कृत्य अलग अलग थे। "समिति" एक आम सभा या लोक सभा हुआ करती थी और "सभा" अपेक्षतया छोटा और चयनित वरिष्ठ लोगों का निकाय, जो मोटे तौर पर आधुनिक विधानमंडलों में उपरि सदन के समान था। वैदिक ग्रंथों में ऐसे अनेक संकेत मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि ये दो निकाय राज्य के कार्यों से निकट का संबंध रखते थे और इन्हें पर्याप्त प्राधिकार, प्रभुत्व एवं सम्मान प्राप्त था। ऐसा ज्ञात होता है कि आधुनिक संसदीय लोकमत के कुछ महत्वपूर्ण तत्व, जैसे निर्बाध चर्चा और बहुमत द्वारा निर्णय, तब भी विद्यमान थे। बहुमत से हुआ निर्णय "अलंघनीय माना जाता था जिसकी अवहेलना नहीं हो सकती थी क्योंकि जब एक सभा में अनेक लोग मिलते हैं और वहां एक आवाज से बोलते हैं तो उस आवाज या बहुमत की अन्य लोगों द्वारा उपेक्षा नहीं की जा सकती"। वास्तव में प्राचीन भारतीय समाज

का मूल सिद्धांत यह था कि शासन का कार्य किसी एक व्यक्ति की इच्छानुसार नहीं बल्कि पार्षदों की सहायता से संयुक्त रूप से होना चाहिए। पार्षदों का परामर्श आदर से माना जाता था। वैदिक काल के राजनीतिक सिद्धांत के अनुसार "धर्म" को वास्तव में प्रभुत्व दिया जाता था और "धर्म" अथवा विधि द्वारा शासन के सिद्धांत को राजा द्वारा माना जाता था और लागू किया जाता था। आदर्श यह था कि राजा की शक्तियां जनेच्छा और रीति-रिवाजों, प्रथाओं और धर्मशास्त्रों के आदेशों द्वारा सीमित होती थीं। राजा को विधि तथा अपने क्षेत्र के विधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी पड़ती थी और अपनी जनता के भौतिक तथा नैतिक कल्याण के लिए राज्य को न्यास अथवा ट्रस्ट के रूप में रखना होता था। यद्यपि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि प्राचीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था मुख्यतया राजतंत्रवादी हुआ करती थी, फिर भी ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहां राजा का चुनाव होता था। जो भी हो, कुछ लोकतंत्रात्मक संस्थाएं एवं प्रथाएं प्रायः हमारी राजतंत्रीय शासन प्रणाली का सदा अभिन्न अंग रहीं।

"आत्रेय ब्राह्मण", पाणिनि की "अष्टाध्यायी", कौटिल्य के "अर्थशास्त्र", "महाभारत", अशोक स्तंभों के शिलालेखों, समकालीन यूनानी इतिहासकारों तथा बौद्ध एवं जैन विद्वानों द्वारा लिखित ग्रंथों में तथा "मनुस्मृति" में इस तथ्य के पर्याप्त ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं कि वैदिकोत्तर काल में अनेक गणराज्य भी थे। उन गणराज्यों में, जो "समधा" अथवा गणराज्य के नाम से जाने जाते थे, प्रभुसत्ता एक बहुत बड़ी सभा में निहित रहती थी और उसी सभा के सदस्य न केवल कार्यपालिका के सदस्यों को, बल्कि सैनिक प्रमुखों को भी चुना करते थे। वही वैदेशिक कार्यों पर नियंत्रित रखती थी और शांति और युद्ध जैसे मामलों का फैसला भी करती थी। इसके अतिरिक्त, कार्यपालिका पर निर्वाचित सभा का पूर्ण नियंत्रण रहता था। पाली में लिखित ग्रंथों में इस विषय में दिलचस्प ब्यौरे मिलते हैं कि प्राचीन गणराज्यों में सभाओं में क्या क्या प्रथाएं एवं प्रक्रियाएं अपनाई जाती थीं जो कुछ विद्वानों के अनुसार "आधुनिकतम स्वरूप के विधि एवं संवैधानिक" सिद्धांतों पर आधारित थीं। उदाहरण के तौर पर, सभा का अपना अध्यक्ष हुआ करता था जिसे "विनयधार" कहा जाता था और सचेतक भी हुआ करता था जिसे "गणपूरक" कहा जाता था। "विनयधार" संकल्प, गणपूर्ति का अभाव, बहुमत द्वारा मतदान, इत्यादि जैसे प्रक्रियागत उपायों एवं शब्दावली से परिचित होता था। सभा में चर्चाएं स्वतंत्र, स्वच्छ एवं निर्बाध हुआ करती थीं। मतदान शलाकाओं (टिकटों) द्वारा होता था जो विभिन्न मतों का प्रतिनिधि करने वाली भिन्न भिन्न रंगों की लकड़ी की पट्टियां होती थीं। जटिल और गंभीर मामले प्रायः सभा के सदस्यों में से चुनी गई विशेष समिति के पास भेजे जाते थे।

निचले स्तर पर लोकतंत्र प्रादेशिक परिषदों (जनपद), नगर परिषदों (पौर सभा) और ग्राम सभाओं के रूप में विद्यमान था। ये निकाय स्थानीय कार्यों की देखरेख पूरी स्वाधीनता से करते थे जिसमें स्थानीय उपक्रम एवं स्वशासन का तत्व रहता था। "अर्थशास्त्र", "महाभारत" और "मनुस्मृति" में "ग्राम संघ" विद्यमान होने का अनेकों स्थानों पर उल्लेख मिलता है। उन दिनों ग्राम सभाओं, ग्राम संघों अथवा पंचायतों जैसे निर्वाचित स्थानीय निकाय साधारणतया

भारतीय राजनीति व्यवस्था के अंग होते थे। "सभा" तथा "समिति" जैसी लोकतंत्रात्मक संस्थाएं तथा गणराज्य तो बाद में लुप्त हो गए परंतु ग्राम स्तर पर "ग्राम संघ", "ग्राम सभाएं" अथवा "पंचायतें" अनेक हिंदू तथा मुस्लिम राजवंशों के शासन काल में अस्तित्व में रहीं तथा ब्रिटिश शासकों के आगमन तक और उसके पश्चात भी किसी न किसी रूप में प्रभावी संस्थाओं के रूप में कार्य करती रहीं और फलती फूलती रहीं।

आधुनिक संसदीय संस्थाओं का उद्‌भव

आधुनिक अर्थों में संसदीय शासन प्रणाली एवं विधायी संस्थाओं का उद्‌भव एवं विकास लगभग दो शताब्दियों तक ब्रिटेन के साथ भारत के संबंधों से जुड़ा हुआ है। परंतु यह मान लेना गलत होगा कि बिल्कुल ब्रिटेन जैसी संस्थाएं किसी समय भारत में प्रतिस्थापित हो गईं। जिस रूप में भारत की संसद और संसदीय संस्थाओं को आज हम जानते हैं उनका विकास भारत में ही हुआ। इनका विकास विदेशी शासन से मुक्ति के लिए और स्वतंत्र लोकतंत्रात्मक संस्थाओं की स्थापना के लिए किए गए अनेक संघर्षों और ब्रिटिश शासकों द्वारा रुक रुककर, धीरे धीरे, झिका झिकाकर, छोटे छोटे टुकड़ों में दिए गए संवैधानिक सुधारों के द्वारा हुआ।

1833 का चार्टर अधिनियम : भारत में केंद्रीय विधानमंडल की पहली धुंधली-सी शुरुआत 1833 के चार्टर अधिनियम से हुई जिसके द्वारा भारतीय शासन प्रणाली में और भारत सरकार की विधायी शक्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। इस अधिनियम के द्वारा भारत में सब ब्रिटिश राज्य क्षेत्रों के लिए एक विधान परिषद की स्थापना की गई। वह पहला अवसर था जबकि गवर्नर-जनरल की सरकार "भारत सरकार" के नाम से जानी जाने लगी और उसकी कौंसिल "इंडियन कौंसिल" के नाम से। गवर्नर-जनरल की कौंसिल की विधि-निर्माण बैठकों और कार्यपालिका बैठकों में भेद करके इस अधिनियम द्वारा संस्थागत विशेषज्ञता का तत्व भी जोड़ा गया। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के कार्यपालिका तथा विधायी कृत्यों में इस अधिनियम के द्वारा जो भेद किया गया उसके परिणामस्वरूप एक "चौथा" अथवा विधायी सदस्य शामिल किया गया और इस पद पर विशिष्ट विधिवेत्ता लार्ड मैकाले को नियुक्त किया गया। इस प्रकार, हमें 1833 के अधिनियम में कार्यपालिका परिषद से भिन्न एक विधान परिषद के बीज दिखाई पड़ते हैं, यद्यपि बहुत बाद तक इस नाम का उपयोग नहीं हुआ।

1853 का चार्टर अधिनियम : 1853 का अधिनियम अंतिम चार्टर अधिनियम था जिसके द्वारा गवर्नर-जनरल की कौंसिल में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। कौंसिल के "चौथे" अथवा विधायी सदस्य को कार्यपालिका बैठकों में उपस्थित होने और मतदान करने का अधिकार देकर उसे अन्य सदस्यों के बराबर का दर्जा प्रदान किया गया। इसके साथ ही, छह विशेष सदस्य शामिल करके, जिन्हें "विधायी पार्षद" का पदनाम दिया गया, विधायी प्रयोजनों के लिए कौंसिल का विस्तार किया गया। इस प्रकार, गवर्नर-जनरल तथा कमांडर इन चीफ के अतिरिक्त, 1853 के अधिनियम के अधीन गठित कौंसिल में बारह सदस्य थे। कौंसिल जब विधायी निकाय के रूप में कार्य करती थी तो वहां चर्चा लिखित न होकर मौखिक होती थी; विधेयक किसी एक सदस्य के

पास भेजने के बजाए प्रवर समितियों के पास भेजे जाते थे, विधान कार्य गोपनीय होने के बजाय सार्वजनिक रूप से किया जाता था और कार्यवाहियों के वृतांत सरकारी तौर पर प्रकाशित किए जाते थे। इस प्रकार, विधानमंडल और कार्यपालिका में भेद करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। नयी कौंसिल के कर्तव्य विधान बनाने तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि, जैसा कि मांटेगु-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1918) में कहा गया, "संसद के आशयों के विपरीत, इसने शिकायतों की जांच करने और उन्हें दूर करने के प्रयोजनार्थ समवेत लघु प्रतिनिधि सभा का रूप धारण करना आरंभ कर दिया"।

1861 का इंडियन कौंसिल्ज अधिनियम : इस अधिनियम का उद्देश्य "गवर्नर-जनरल की कौंसिल के गठन के लिए बेहतर व्यवस्था करना" और "अनेक प्रेजिडेंसियों तथा प्रांतों की स्थानीय सरकार के लिए व्यवस्था करना" था। इस अधिनियम को "भारतीय विधानमंडल का प्रमुख घोषणापत्र" कहा गया जिसके द्वारा "भारत में विधायी अधिकारों के अंतरण की प्रणाली" का उद्घाटन हुआ। इस अधिनियम द्वारा केंद्रीय एवं प्रांतीय स्तरों पर विधान बनाने की व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। इसके अधीन गवर्नर-जनरल की कौंसिल पुनर्गठित की गई और तत्पश्चात उसके लिए अब तक के चार के स्थान पर पांच साधारण सदस्यों की व्यवस्था की गई। विधान बनाने के प्रयोजनार्थ, गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया कि वह अपनी कौंसिल के लिए "कम से कम छह और अधिक से अधिक बारह" अतिरिक्त सदस्य मनोनीत करे जिनमें से कम से कम आधे गैर-सरकारी सदस्य हों। यद्यपि कानून द्वारा विस्तारित कौंसिल के लिए गैर-सरकारी सदस्यों में भारतीयों को नियुक्त किया जाना जरूरी नहीं था तथापि हाउस आफ कामंस में यह आश्वासन दिया गया कि भारतीयों को इन पदों पर नियुक्त किया जाएगा। इस आश्वासन और इस तथ्य के बावजूद कि कौंसिल के लिए स्पष्ट व्यवस्था थी कि वह केवल विधायी कार्य करे, इसे उत्तरदायी या प्रतिनिधि विधायी निकाय नहीं माना जा सकता। वह सरकार की विधायी समिति मात्र थी जिसके द्वारा कार्यपालिका विधान के बारे में मंत्रणा एवं सहायता प्राप्त करती थी। विचाराधीन विधान के अलावा किसी अन्य विषय पर चूंकि उसमें विचार नहीं किया जाता था और उसे शिकायतों की जांच करने, जानकारी प्राप्त करने या कार्यपालिका के आचरण की जांच करने का अधिकार नहीं था, अतः उस कौंसिल में उत्तरदायी संस्थाओं का कोई अंश नहीं था। फिर भी, सवैधानिक विकास की दृष्टि से 1861 के अधिनियम के परिणामस्वरूप पहले की स्थिति में सुधार हुआ क्योंकि अंग्रेजी राज के भारत में जमने के पश्चात इसमें पहली बार विधायी निकायों में गैर-सरकारी व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व के महत्वपूर्ण सिद्धांत को स्वीकार किया गया। इसके अतिरिक्त, तत्पश्चात विधान उचित विचार-विमर्श के बाद बनाए गए और वे नियमित विधान थे जिन्हें केवल उसी प्रक्रिया द्वारा बदला जा सकता था, जिस प्रक्रिया से वे बने थे। इस प्रकार कार्यपालिका द्वारा विधान बनाए जाने के दिन व्यावहारिक रूप से बीत गए और यह समझा जाने लगा कि विधान बनाना केवल कार्यपालिका का ही कार्य नहीं है।

इंडियन नेशनल कांग्रेस का गठन : इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना 1885 में हुई। इससे भारत में साम्राज्यवादी नियंत्रण धीरे धीरे कम होने की और उत्तरदायी सरकार के विकास की प्रक्रिया की शुरुआत हुई। कांग्रेस ने प्रारंभ से ही अपने सार्वजनिक जीवन का मुख्य आधार यह बनाया कि देश में धीरे धीरे प्रतिनिधि संस्थाएं बनें। कांग्रेस का विचार था कौंसिल में सुधार से ही अन्य सब व्यवस्थाओं में सुधार हो सकता है। कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन, (मुंबई, 1889) में इस विषय पर बोलते हुए सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने कहा : "यदि कौंसिल में सुधार हो जाता है तो आपको और सभी कुछ मिल जाएगा। हमारे देश का भविष्य और हमारी प्रशासनिक व्यवस्था का भविष्य इसी पर निर्भर करता है"।

1892 का इंडियन कौंसिल्ज अधिनियम : यह अधिनियम, कम से कम अंशतः, प्रतिनिधि संस्थाओं के लिए बढ़ती हुई भारतीय मांग को स्वीकारने की दिशा में एक कदम था। ब्रिटिश संसद द्वारा "विधान परिषदों में भारत की जनता को वास्तव में प्रतिनिधित्व देने" की दृष्टि से इंडियन कौंसिल्ज अधिनियम 1892 को स्वीकृति प्रदान करना इन अर्थों में कांग्रेस की विजय माना गया कि ब्रिटिश सरकार ने पहली बार "परिवर्द्धित परिषदों में प्रतिनिधित्व की बात को मान्यता दी"। कांग्रेस को इस बात से संतुष्टि हुई कि "भारतीयों के राजनीतिक मताधिकार के साझे प्रयोजनार्थ उनमें एकता उसी ने कायम की"।

भारतीय परिषदों के पुनर्गठन के लिए 1892 के अधिनियम द्वारा इंडियन कौंसिल्ज अधिनियम, 1861 में संशोधन किया गया। गवर्नर-जनरल की विधान परिषद का अग्रेतर विस्तार करने के लिए यह व्यवस्था की गई कि उसमें "कम से कम दस और ज्यादा से ज्यादा सोलह" अतिरिक्त सदस्य होंगे। पहले यह व्यवस्था थी कि उसमें कम से कम छः और अधिक से अधिक बारह सदस्य होंगे। इसी प्रकार प्रांतीय विधान परिषदों के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि की गई। जिन विनियमों के अधीन परिषदों के अतिरिक्त सदस्य मनोनीत किए जाते थे उनमें निर्धारित था कि कुछ गैर-सरकारी व्यक्ति, विशेष हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ मान्यता प्राप्त निकायों अथवा एसोसिएशनों की सिफारिश पर मनोनीत किए जाने चाहिए। गवर्नर-जनरल की विधान परिषद, अथवा भारतीय विधान परिषद् में इस प्रकार पांच और अतिरिक्त सदस्य शामिल किए गए जिनमें से चार को प्रांतीय परिषदों के गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा और एक को कलकत्ता वाणिज्य मंडल द्वारा मनोनीत किया गया। यद्यपि "चुनाव" शब्द का जानबूझकर प्रयोग नहीं किया गया परंतु इस तथ्य से प्रांतीय परिषद के गैर-सरकारी सदस्यों ने सिफारिश की और केंद्रीय परिषद में अपने मनोनीत सदस्य को भेजा, चुनाव के सिद्धांत को अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकारने का संकेत मिलता है।

विधान परिषद के सदस्यों को भी प्रश्न पूछने, अर्थात महत्वपूर्ण विषयों पर जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से सरकारी सदस्यों से पूछताछ करने का अधिकार दिया गया। इस अधिकार का, जो किसी भी विधानमंडल का एक मौलिक अधिकार होता है, प्रयोग उस समय कभी कभार ही किया गया, परंतु यह अधिकार प्राप्त हो जाना संसदीय संस्था के विकास में

एक निश्चयात्मक कदम था। यह एक दिलचस्प बात है कि प्रारंभिक अवस्थाओं में इस अधिकार का प्रयोग सरकारी सदस्यों द्वारा भी किया गया। यह विचित्र लगता होगा कि किस तरह एक सरकारी सदस्य दूसरे सरकारी सदस्य से प्रश्न कर रहा है और जानकारी प्राप्त कर रहा है।

1892 के अधिनियम के परिणामस्वरूप विधान परिषदों में प्रतिनिधिक तत्व आया और परिषदों के कार्यकरण पर लगे प्रतिबंधों में कुछ ढील दी गई। इस दृष्टि से 1892 के अधिनियम ने 1861 के अधिनियम में निश्चय ही सुधार किया। "निर्वाचित" सदस्यों के प्रवेश से परिषद के जीवन में एक नवीन युग प्रारंभ हुआ। जनमत को और अधिक अभिव्यक्त किया जाने लगा और चर्चाओं में विचार-विमर्श तथा आलोचनात्मक पहलुओं में परिवर्तन आया।

1909 का इंडियन कौंसिल्ज अधिनियम : देश के कार्यों में और अधिक एवं प्रभावी प्रतिनिधित्व के लिए कांग्रेस द्वारा जो सतत अभियान चलाया गया, उसके फलस्वरूप 1908 के मोरले-मिंटो सुधार प्रस्ताव आए। मोरले-मिंटो संवैधानिक सुधारों की योजना को इंडियन कौंसिल्ज अधिनियम, 1909 द्वारा कार्यरूप दिया गया। इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए विनियमों से भारतीय विधानमंडलों के गठन एवं कृत्यों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। भारतीय विधान परिषद की अधिकतम सदस्य संख्या 16 से बढ़ाकर 60 कर दी गई। इनके अलावा कार्यकारी पार्षद पदेन सदस्य होते थे। प्रेजिडेंसीज/प्रांतों में विधान परिषदों का आकार भी दुगुने से अधिक हो गया। अधिनियम के अनुसार अपेक्षित था कि विधान परिषदों में निर्वाचित तथा मनोनीत दोनों प्रकार के सदस्य होने चाहिए।

1909 के अधिनियम द्वारा विधान परिषदों के कृत्यों में परिवर्द्धन किया गया। इसके अधीन सदस्यों को बजट पर और सामान्य सार्वजनिक हित के किसी भी मामले पर संकल्प पेश करने और उन पर परिषद में मतदान कराने का अधिकार दिया गया। संकल्प सरकार के लिए सिफारिशों का रूप ले सकते थे परंतु सरकार उन्हें स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं थी। अनुपूरक प्रश्नों की अनुमति देते हुए प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया परंतु प्रेजीडेंट को यह शक्ति प्राप्त थी कि वह चाहे तो किसी प्रश्न के लिए अनुमति न दे।

1909 में जो सुधार हुए उनमें सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि पृथक अथवा सांप्रदायिक आधार पर निर्वाचन की पद्धति लागू की गई जिसके अनुसार मुसलमानों, वाणिज्य मंडलों, जमींदारों इत्यादि जैसे विशेष हितों के लिए परिषदों में प्रतिनिधित्व एवं स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था की गई। इस अधिनियम के अधीन प्रतिनिधित्व की जिस सांप्रदायिक पद्धति की शुरुआत की गई उससे भारत का भावी सार्वजनिक जीवन दूषित हो गया और पृथकतावादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला। 1857 के विद्रोह के दमन के पश्चात धर्मनिरपेक्ष भारतीय राष्ट्रवाद को इससे सबसे अधिक धक्का पहुंचा और यह ब्रिटेन की "फूट डालो और राज करो" की नीति की वास्तव में सबसे बड़ी विजय थी। सरदार पाणिकर के शब्दों में "यह घृणित द्वि-राष्ट्र सिद्धांत की प्रथम अभिव्यक्ति थी जिससे अंत में देश का विभाजन हुआ"।

भारत सरकार अधिनियम, 1919 : 1919 के सुधार अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों द्वारा भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। केंद्र में, भारतीय विधान परिषद के स्थान पर द्विसदनीय विधानमंडल बनाया गया जिसमें एक था राज्य परिषद (कौंसिल आफ स्टेट) और दूसरा था विधान सभा (निम्न सदन) और प्रत्येक सदन में अधिकांश सदस्य निर्वाचित होते थे।

राज्य परिषद में सांविधिक नियमों के अनुसार मनोनीत अथवा निर्वाचित अधिक से अधिक 60 सदस्य और इनमें अधिक से अधिक 20 सरकारी सदस्य होने की व्यवस्था थी। प्रथम राज्य परिषद में कुल 60 सदस्य थे जिनमें से 34 निर्वाचित, 20 मनोनीत सरकारी सदस्य और 6 मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य थे। अधिनियम के अधीन विधान सभा की सदस्य संख्या अस्थाई रूप से 140 निर्धारित की गई। इनमें 100 निर्वाचित, 26 मनोनीत सरकारी सदस्य और शेष मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य होते थे। सांविधिक नियमों के अनुसार कुल सदस्य संख्या में वृद्धि की जा सकती थी और विभिन्न वर्गों के सदस्यों के बीच अनुपात में परिवर्तन भी किया जा सकता था, ताकि कुल संख्या के कम से कम 5/7 सदस्य निर्वाचित हों और शेष में से कम से कम एक-तिहाई गैर-सरकारी सदस्य हों। 1919 के अधिनियम के अधीन गठित प्रथम विधान सभा वर्ष 1921 में अस्तित्व में आई। उसके कुल 145 सदस्य थे। 104 निर्वाचित—52 सामान्य, 30 मुस्लिम, 9 यूरोपीय, 7 भूस्वामी, 4 वाणिज्यिक तथा 2 सिख निर्वाचन क्षेत्रों से—26 सरकारी सदस्य और 15 मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य थे।

दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य प्रत्यक्ष रूप से चुने गए थे परंतु मताधिकार बहुत ही सीमित था जो संपत्ति तथा कर अथवा शिक्षा संबंधी अर्हताओं पर आधारित था। राज्य परिषद के मामले में, संपत्ति संबंधी मतदाता अर्हताएं इतनी ऊंची रखी गई थीं कि वह सदन लगभग धनी भूस्वामियों तथा व्यापारियों का ही सदन बनकर रह गया था। राज्य परिषद की अपेक्षा विधान सभा के लिए निर्वाचन हेतु मतदान की संपत्ति संबंधी अर्हता कम स्तर पर रखी गई थी, परंतु फिर भी वह प्रांतीय मताधिकार के लिए अपेक्षित अर्हता से काफी अधिक थी। 1920 में परिषद के कुल मतदाता केवल 17,644 थे और विधान सभा के 904,746। परिषद की सामान्य कार्यावधि पांच वर्षों की थी तथा विधान सभा की तीन वर्षों की। गवर्नर-जनरल दोनों में से किसी भी सदन को उसकी पूर्ण कालावधि समाप्त होने से पूर्व ही भंग कर सकता था। वह विशेष परिस्थितियों में उनकी सामान्य कार्यावधि बढ़ा भी सकता था। दोनों सदनों को समान शक्तियां प्राप्त थीं, सिवाय इसके कि केवल विधान सभा ही आपूर्ति (सप्लाईज) की स्वीकृति दे सकती थी अथवा रोक सकती थी।

1919 के अधिनियम के अधीन उस प्रणाली के अनुसार जो "द्वितंत्र" (डाइआर्की) के नाम से प्रसिद्ध हुई, प्रांतों में तो आंशिक रूप से उत्तरदाई सरकार स्थापित की गई परंतु केंद्र में उत्तरदायित्व का कोई तत्व नहीं था और गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल का भारत के लिए केवल सेक्रेटरी आफ स्टेट के प्रति और उसके द्वारा ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायित्व बना रहा। केंद्रीय विधानमंडल का स्वरूप यद्यपि पहली विधान परिषदों की अपेक्षा अधिक प्रतिनिधिक

था और उसे पहली बार आपूर्तियों की स्वीकृति देने की शक्ति प्राप्त थी तथापि उसे सरकार को बदलने की शक्ति प्राप्त नहीं थी। विधान बनाने तथा वित्तीय नियंत्रण के क्षेत्र में भी उसकी शक्तियां सीमित थीं और वे गवर्नर-जनरल की सर्वोपरि शक्तियों के अध्यधीन थीं। इस प्रकार, यद्यपि संपूर्ण ब्रिटिश इंडिया के लिए, भारत में सम्राट की ब्रिटिश प्रजा एवं सेवियों के लिए तथा ब्रिटिश इंडिया में और उससे बाहर ब्रिटिश इंडिया की सारी प्रजा के लिए केंद्रीय विधानमंडल की शक्ति को दोहराया गया परंतु उसकी अनेक महत्वपूर्ण सीमाएं बनी रहीं जो या तो ब्रिटिश संसद की प्रभुसत्ता जो ज्यों की त्यों बनाए रखने के लिए निर्धारित की गई थीं या फिर गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद की प्रभुसत्ता बनाए रखने के लिए। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय विधानमंडल को ब्रिटिश इंडिया से संबंधित किसी भी संसदीय विधि में संशोधन करने या उसका निरसन करने या ब्रिटिश संसद के प्राधिकार को छूने वाला कोई कार्य करने की शक्ति प्राप्त नहीं थी। अधिनियम के अधीन यह भी अपेक्षित था कि कुछ महत्वपूर्ण मामलों पर प्रभाव रखने वाले विधान गवर्नर-जनरल की पूर्ण मंजूरी से ही भारत के किसी भी सदन में पेश किए जा सकें। विधानमंडल द्वारा पास किए गए किसी भी विधेयक को वीटो करने अथवा उसे महामहिम की इच्छा जानने के लिए रखने की उसकी वर्तमान शक्ति के अतिरिक्त, गवर्नर-जनरल को ऐसे विधान अधिनियमति कराने की शक्ति प्रदान की गई जो वह ब्रिटिश इंडिया अथवा ब्रिटिश इंडिया के किसी भाग की सुरक्षा, शांति या हित साधन के लिए आवश्यक समझे। आपात की स्थिति में ब्रिटिश इंडिया की शांति एवं समुचित शासन के लिए अध्यादेश प्रख्यापित करने की गवर्नर-जनरल की शक्ति भी बरकरार रही।

इसी प्रकार, वित्तीय मामलों में भी यद्यपि विधान सभा को यह शक्ति प्रदान की गई कि वह किसी अनुदान की मांग को स्वीकृत कर सकती है अथवा स्वीकृत करने से इंकार कर सकती है या किसी मांग की राशि में कमी कर सकती है, तथापि सभा द्वारा किसी मांग को स्वीकृति प्रदान करने से इंकार किए जाने की स्थिति में गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल केवल यह घोषणा करके उसे बहाल कर सकता था कि वह उस के उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार 1919 के अधिनियम के अधीन भारतीय विधानमंडल प्रभुसत्तारहित निकाय था और प्रशासनिक, विधायी एवं वित्तीय मामलों में सरकार के क्रियाकलापों के सब क्षेत्रों में कार्यपालिका के सामने शक्तिहीन था। फिर भी, विधानमंडल के गठन के साथ, विधान बनाने का कार्य गवर्नर-जनरल की कौंसिल के हाथ में नहीं रहा। उस निकाय को अब एक मंत्रिमंडल के रूप में कार्य करना होता था और सरकार के वित्तीय एवं विधायी प्रस्ताव विधानमंडल में प्रस्तुत करने होते थे जिसका पीठासीन अधिकारी गैर-सरकारी "प्रेजीडेंट" होता था। विधायी कार्य में भारी वृद्धि हुई और देश को स्थायी लाभ पहुंचाने वाले अनेक विधान बनाए गए। व्यय के कुछ रक्षित शीर्षों को छोड़कर शेष बजट के लिए स्वीकृति लेनी होती थी और सभा द्वारा आपूर्ति एवं सेवाओं से इंकार किए जाने या पूरा बजट अस्वीकृत किए जाने की स्थिति में सरकार को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। दोनों सदनों में वाक स्वातंत्र्य

सुनिश्चित होने, प्रश्न पूछने तथा संकल्प एवं स्थगन प्रस्ताव पेश करने का अधिकार होने के कारण सदस्यों को सरकार की आलोचना करने और उसे अनावृत करने के अवसर मिलते थे। कुछ सदस्यों को सरकार पर प्रभाव डालने और कार्यपालिका विभागों के कार्यकरण से परिचित होने के स्थाई समितियों के माध्यम से अतिरिक्त अवसर प्राप्त होने लगे।

केंद्रीय विधानमंडल का उद्‌भव ऐतिहासिक महत्व की बात थी। यह पहला अवसर था जबकि विधान बनाने में और सरकार की नीतियों को प्रभावित करने में जन-प्रतिनिधियों की आवाज सुनी गई। इसने देश के राजनीतिक भविष्य की दिशा निर्धारण में भी महान भूमिका अदा की। जब देश विदेशी प्रभुत्व को समाप्त करने के लिए संघर्ष कर रहा था तो विधानमंडल में समवेत जन-प्रतिनिध सदन में संघर्ष कर रहे थे। दुनिया ने देखा कि विदेशी सरकार किस प्रकार जनता की इच्छाओं के समक्ष झुकती है या अपनी पराजय स्वीकारती है। निस्संदेह, उस पराजय से सरकार को कोई अंतर नहीं पड़ता था क्योंकि मनोनीत कार्यकारी पार्षदों से बनी सरकार पद त्याग करने के लिए बाध्य नहीं थी। फिर भी, आलोचनात्मक विधानमंडल होने से कार्यपालिका को सावधानी और विवेक से काम लेना पड़ता था और उसमें जनता के प्रति अपने दायित्व की चेतना पैदा हुई।

लोकमान्य तिलक ने 1919 के सुधारों को "असंतोषजनक, निराशाजनक और प्रकाशहीन सूर्य" बताया। परंतु उन्होंने घोषणा की कि जो कुछ दिया गया है उसे वह स्वीकार करेंगे, आंदोलन करेंगे और अधिक परिश्रम करेंगे और यथासंभव शीघ्र और अधिक प्राप्त करने के लिए इसका प्रयोग करेंगे। उनकी संवेदनशील सहयोग की नीति में सहयोग के साथ साथ संवैधानिक अधिकारों पर जोर देने और यदि आवश्यक हो तो, संवैधानिक रुकावटें पैदा करने की बात भी शामिल थी। श्रीमती एनीबेसेंट ने घोषणा की कि यह योजना "ब्रिटेन द्वारा पेश किए जाने और भारत द्वारा स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है"। इस प्रकार 1919 के सुधारों पर कांग्रेस में एक तरह की दरार पैदा हो गई। 1918 में कांग्रेस को छोड़ने वाले कुछ नरमपंथियों ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में नेशनल लिबरेशन फेडेरेशन नामक एक अलग संगठन बना लिया था। इन नरमपंथियों ने सुधारों का स्वागत किया परंतु कांग्रेस ने अपने 1919 के अमृतसर अधिवेशन में उन्हें "अपर्याप्त, असंतोषजनक एवं निराशाजनक" बताया।

1919 के अधिनियम के अधीन विधानमंडल : 1919 के अधिनियम के संवैधानिक सुधार 1921 में लागू हुए। देश के सबसे बड़े और सबसे अधिक प्रभावशाली राजनीतिक दल, इंडियन नेशनल कांग्रेस ने 1920-21 के निर्वाचनों का बहिष्कार किया और इस प्रकार जो विधानमंडल 1921 में बने उनमें उसका प्रतिनिधित्व नहीं था। केवल नरमपंथियों द्वारा, जो 1918 में कांग्रेस को छोड़ गए थे, बनाई गई नेशनल लिबरेशन फेडरेशन ने ही निर्वाचनों में सक्रिय रूप से भाग लिया और इस दल के अनेक प्रसिद्ध सदस्य विधानमंडल के लिए निर्वाचित हुए। जैसाकि उनसे आशा की जाती थी और जैसाकि उन्होंने अपने निर्वाचकों को वचन दिया था, उन्होंने विधायकों एवं मंत्रियों के रूप में अपने कृत्यों का निर्वहन किया। उन्होंने परिषदों में अपने कार्यक्रम को "समरूपी, निरंतर एवं संगत रुकावट डालने की नीति" बताया।

1923 में, देशबन्धु सी. आर. दास और पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्वराज पार्टी बनाई जिसकी नीति यह थी कि चुनाव लड़े जाएं और व्यवस्था को बदलने या "शत्रु के कैंप" में प्रवेश करके व्यवस्था को तोड़ने की दृष्टि से परिषदों में स्थान प्राप्त किया जाए। मौलाना आजाद की अध्यक्षता में सितंबर 1923 में हुए कांग्रेस के विशेष दिल्ली अधिवेशन में परिषदों में स्थान प्राप्त करने की स्वराज पार्टी की योजना को स्वीकृति दी गई और तत्पश्चात स्वराज पार्टी कांग्रेस का विधायी पक्ष बन गई। स्वराज पार्टी के नेताओं ने यह कह कर विधानमंडलों में प्रवेश को उचित ठहराया कि विद्यमान परिस्थितियों में प्रशासन व्यवस्था को निरर्थक एवं अप्रभावी बनाने का यही सबसे अच्छा तरीका है।

स्वराज पार्टी को 1923 के निर्वाचनों में आश्चर्यजनक सफलता मिली। कुल 145 स्थानों में से 25 स्थान जीत कर स्वराज पार्टी केंद्रीय विधानमंडल में सबसे बड़ी पार्टी बन गई। मौलाना आजाद के अनुसार पार्टी की सबसे बड़ी सफलता यह थी कि वह उन स्थानों पर भी जीत गई जो मुसलमानों के लिए आरक्षित थे। कुछ निर्दलीय सदस्यों तथा पंडित मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व वाली नेशनलिस्ट पार्टी के सदस्यों के समर्थन से इसे पूर्ण बहुमत प्राप्त हो गया। मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराजवादियों ने राष्ट्रीय महत्व के अनेक प्रस्तावों पर सरकार को पराजित किया और बजट तथा अनेक विधायी उपायों के पास होने में बार बार रुकावट डाली। अनेक बार सदन से बहिर्गमन अथवा वाक आउट किये। स्वराजवादियों के प्रयासों के परिणामस्वरूप 1924 और 1925 में राष्ट्रीय मांग अथवा "नेशनल डिमांड" संबंधी संकल्प भारी बहुमत से पास हुए।

1926 के निर्वाचनों के परिणाम स्वराज पार्टी के लिए निराशाजनक रहे। 7 मार्च, 1926 को अखिल भारत कांग्रेस समिति ने, सरकार से सहयोग के कोई चिन्ह दिखाई न देने के कारण, स्वराजवादियों से कहा कि वे विरोध स्वरूप विधानमंडलों से उठकर चले आएं। इस प्रकार स्वराजवादी प्रयोग समाप्त हुआ।

इस अवधि के दौरान एक महत्वपूर्ण घटना अध्यक्ष पद का विकास था। केंद्रीय विधान सभा का प्रथम प्रेजीडेंट (अध्यक्ष), सर फ्रेडरिक व्हाईट को मनोनीत किया गया था परंतु अगस्त, 1925 में श्री विट्ठलभाई पटेल को चुना गया और वे सभा के प्रथम गैर-सरकारी प्रेजीडेंट (अध्यक्ष) बने। उन्होंने तथा सदन के अनेक सदस्यों ने महसूस किया कि सभा का सचिव भारत सरकार के अधीन विधायी विभाग का सचिव होने से निर्वाचित अध्यक्ष की स्वतंत्रता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। 22 सितंबर, 1928 को पंडित मोतीलाल नेहरू ने सदन में एक संकल्प पेश किया कि एक पृथक सभा विभाग (एसेंबली डिपार्टमेंट) बनाया जाए। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ। सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया ने कुछ रूपभेदों के साथ उसे स्वीकृति प्रदान की और 10 जनवरी, 1929 से विधान सभा विभाग नामक एक पृथक पूर्ण विभाग बनाया गया। अध्यक्ष को नये विभाग का वास्तविक प्रमुख अधिकारी बनाया गया और उसके लिए कर्मचारी अध्यक्ष की अनुमति से नियुक्ति किए गए।

भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अनुसार किए गए सीमित सुधार प्रतिनिधि उत्तरदायी

सरकार की जनता की मांग को पूरा करने में पूर्णतया अपर्याप्त सिद्ध हुए। सीमित शक्तियों वाले विधानमंडल के विरुद्ध राष्ट्रीय मत बढ़ता गया और वर्ष प्रतिवर्ष पूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न संसद और उत्तरदायी सरकार के लिए मांग जोर पकड़ती गई।

साईमन कमीशन की नियुक्ति : 1920 से 1935 तक के वर्ष बहुत महत्वपूर्ण थे। इन वर्षों में देश में बहुत राजनीतिक चेतना पैदा हुई। महात्मा गांधी के नेतृत्व में इंडियन नेशनल कांग्रेस ने एक जन-संगठन का रूप ले लिया। 1919 के अधिनियम में व्यवस्था थी कि दस वर्षों की अवधि व्यतीत हो जाने पर एक रायल कमीशन नियुक्त किया जाए जो "ब्रिटिश इंडिया में शासन प्रणाली के कार्यकरण की तथा प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की जांच करे..." और यह बताया कि "क्या उत्तरदायी सरकार के सिद्धांत को कार्यरूप देना, या उत्तरदायी सरकार का विस्तार करना, उसमें रूपभेद करना, या सीमित करना वांछनीय है और, यदि हां तो कहां तक वांछनीय है, तथा क्या स्थानीय विधानमंडलों में दूसरा सदन स्थापित करना वांछनीय है या नहीं"। नवंबर, 1927 में, निर्धारित समय से दो वर्ष पूर्व ही, उक्त कमीशन की नियुक्ति की घोषणा कर दी गई। परंतु कमीशन के सभापति, सर जॉन साईमन, और उसके सभी सदस्य ब्रिटिश संसद में से ही चुने गए। सभी श्वेत सदस्यों के उस साईमन कमीशन का अधिकांश भारतीय दलों ने बहिष्कार किया। कमीशन के मई, 1930 में प्रकाशित प्रतिवेदन को सब राजनीतिक दलों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। इस बीच जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में इंडियन नेशनल कांग्रेस 1929 में अपने लाहौर अधिवेशन में घोषणा कर चुकी थी कि "पूर्ण स्वराज" ही हमारा उद्देश्य है।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 : 1935 के अधिनियम का उद्देश्य संघीय ढांचे की व्यवस्था करना था। उसमें उपबंध था कि गवर्नर-जनरल के "कृत्यों के निर्वहन में" उसकी "सहायता तथा मंत्रणा" के लिए, सिवाय उस स्थिति के जहां उसके लिए अपने कृत्यों का निर्वहन "अपने विवेकाधिकार" अथवा "अपने व्यक्तिगत विचार" के अनुसार करना अपेक्षित हो, दस से अनधिक सदस्यों की मंत्रिपरिषद होगी। संघीय विधानमंडल के प्रति मंत्रियों के व्यक्तिगत या सामूहिक उत्तरदायित्व का अधिनियम में कोई उल्लेख नहीं था यद्यपि यह अपेक्षित था कि प्रत्येक मंत्री विधानमंडल के किसी एक सदन का सदस्य अवश्य हो। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री के पद का भी कोई उल्लेख नहीं था। मंत्रियों को नियुक्त करने और बर्खास्त करने के बारे में अपने कृत्यों का प्रयोग गवर्नर-जनरल को अपने "विवेकाधिकार" से करना था। वह अपने "विवेकाधिकार" से मंत्रिपरिषद की बैठकों की अध्यक्षता कर सकता था।

अधिनियम में व्यवस्था थी कि संघीय विधानमंडल में (सम्राट), जिसका प्रतिनिधित्व गवर्नर-जनरल करता था, तथा दो सदन होंगे जिन्हें क्रमशः कौंसिल आफ स्टेट (उपरि सदन) तथा हाउस आफ एसेंबली (निम्न सदन) कहा जाएगा। कौंसिल में ब्रिटिश इंडिया के 156 प्रतिनिधि और भारतीय रियासतों के 104 से अनधिक प्रतिनिधि होंगे तथा हाउस आफ एसेंबली में ब्रिटिश इंडिया के 250 प्रतिनिधि तथा भारतीय रियासतों के 125 से अनधिक प्रतिमिधि

होंगे। कौंसिल आफ स्टेट एक स्थायी निकाय होगा जिसे भंग नहीं किया जा सकेगा परंतु उसके एक-तिहाई सदस्य हर तीसरे वर्ष सेवानिवृत्त हो जाएंगे। प्रत्येक संघीय एसेंबली, यदि उसे गवर्नर-जनरल द्वारा अपने "विवेकाधिकार" से समय-पूर्व भंग नहीं कर दिया जाता तो, पांच वर्षों तक कार्य करेगी। अधिनियम में उपरि सदन के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन की और निम्न सदन के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन की पद्धति अपनाई गई थी।

यह व्यवस्था थी कि प्रत्येक सदन अपना सभापति तथा उपसभापति चुनेगा और उसे, अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अपनी प्रक्रिया एवं कार्य को स्वयं विनियमित करने की शक्ति प्राप्त होगी। गवर्नर-जनरल को अपने "विवेकाधिकार" से विधानमंडल को बैठक के लिय आमंत्रित करने और उसका सत्रावसान करने तथा निम्न सदन को भंग करने की शक्ति प्राप्त होगी। कोई विधेयक तब तक कानून नहीं बनेगा जब तक कि दोनों सदन उस पर सहमत न हो जाएं और गवर्नर-जनरल उस पर अपनी अनुमति न दे दे अथवा जो विधेयक महामहिम की इच्छा जानने के लिए रक्षित रखा गया हो, उस पर महामहिम की इच्छा की सूचना न मिल जाए। गवर्नर-जनरल की अनुमति प्राप्त अधिनियम भी महामहिम द्वारा नामंजूर किया जा सकता था। गबर्नर-जनरल कोई विधेयक पुनर्विचार के लिए सदनों के पास भेज सकता था। सदनों में असहमति होने की स्थिति में गवर्नर-जनरल संयुक्त बैठक बुला सकता था जिसमें बहुमत द्वारा निर्णय हो सकता था।

दोनों सदनों को लगभग समान शक्तियां दी गई थीं, परंतु वित्तीय क्षेत्र में कुछ अंतर था। धन विधेयक केवल निम्न सदन में ही पेश किए जा सकते थे, परंतु उपरि सदन को निम्न सदन के समान ही उनमें संशोधन करने या उन्हें अस्वीकार करने की शक्ति प्राप्त थी, और गवर्नर-जनरल को संयुक्त बैठक बुलाकर मतभेद दूर करने की शक्ति प्राप्त थी।

कांग्रेस के लखनऊ में (अप्रैल, 1936) और फैजपुर में (1937) हुए क्रमशः 49वें और 50वें अधिवेशनों में इस अधिनियम में उपबंधित नये संविधान को इस आधार पर पूर्णतया अस्वीकार कर दिया गया कि इससे "राष्ट्र की इच्छा किसी भी प्रकार पूरी नहीं होती"। कांग्रेस ने महसूस किया कि अधिनियम भारत की जनता की घोषित इच्छा के प्रतिकूल उस पर लाद दिया गया है। कांग्रेस ने घोषणा की कि भारत की जनता केवल ऐसे संवैधानिक ढांचे को मान्यता दे सकती है जो स्वयं उनके द्वारा बनाया गया हो।

1935 के अधिनियम का संघीय व्यवस्था वाला भाग कभी लागू नहीं हुआ क्योंकि रियासतों को संघ में शामिल होने के लिए तैयार नहीं किया जा सका। इसके परिणामस्वरूप, भारत में केंद्रीय सरकार का संविधान, प्रांतों को स्वायत्तता दिये जाने से पैदा हुए रूपभेदों के साथ, वैसा ही रहा जैसाकि वह 1919 के अधिनियम के अनुसार था। इस प्रकार, केंद्र में ऐसी कोई मंत्रिपरिषद नियुक्त नहीं हुई जो विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी हो और केंद्रीय विधानमंडल की शक्तियां एवं कृत्य तब तक वही रहें जैसी कि 1919 के अधिनियम में व्यवस्था थी। उनमें भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के लागू हो जाने तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। 1934 में गठित विधान सभा में कांग्रेस दल के 44 सदस्य और 11 वे राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने भोलाभाई देसाई

और अणे के नेतृत्व में सामान्यतया उन्हीं के साथ मतदान किया। राष्ट्रीय दलों और सरकारी पक्ष के बीच संतुलन रखने वाले निर्दलीय सदस्यों के नेता जिन्ना थे। राष्ट्रवादियों का मुख्य उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि भारत सरकार गैर-जिम्मेदार है, भारत की जनता का उसमें कोई विश्वास नहीं है और वे उसे समर्थन देने को तैयार नहीं हैं। सरकार के प्रति विरोध प्रकट करने के अवसर तब आते थे जब रेलवे एवं सामान्य बजट पर मतदान होता था। इस उद्देश्य से अनेक मदों की अनुदानों की मांगें अस्वीकार कर दी जाती थीं। भारत की जनता की शिकायतों को व्यक्त करने और जनता के हितों की उपेक्षा किए जाने के लिए सरकार की निंदा करने हेतु कटौती प्रस्ताव पेश किए जाते थे। गवर्नर-जनरल में निहित प्रमाणिकरण की विशेष शक्तियों के अनुसार सरकार उनमें से अधिकांश कटौतियों को बहाल कर दिया करती थी। इससे स्वभावतया यह साफ हो जाता था कि भारत का शासन जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की सम्मति से नहीं बल्कि गर्वनर-जनरल के तानाशाही आदेश से चल रहा है।

केंद्रीय विधान सभा के नये चुनाव, जो बहुत पहले हो जाने चाहिए थे, 1945 की अंतिम तिमाही में हुए। कांग्रेस ने वह चुनाव 1942 के अपने "भारत छोड़ो" प्रस्ताव को लेकर लड़े। चुनावों में कांग्रेस को निर्वाचित स्थानों में अधिकांश स्थान (102 में से 56) प्राप्त हुए। कांग्रेस विधायक दल के नेता शरत चन्द्र बोस थे। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अधीन कुछ परिवर्तन हुए। 1935 के अधिनियम के वे उपबंध निष्प्रभावी हो गए जिनके अंतर्गत गवर्नर-जनरल या गवर्नर अपने विवेकाधिकार के अनुसार अथवा अपने व्यक्तिगत विचार के अनुसार कार्य कर सकता था। डौमीनियन विधानमंडल को "विधान बनाने की पूर्ण शक्ति, उन विधानों सहित जिसका राज्यक्षेत्रातीत प्रभाव हो," प्राप्त हो गई।

प्रथम प्रभुसत्ता संपन्न विधानमंडल

गवर्नर-जनरल द्वारा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अनुसरण में, संविधान सभा द्वारा अन्य उपबंध किए जाने तक, भारत सरकार अधिनियम, 1935 को डौमीनियन का अस्थायी संविधान बनाने के लिए उसमें रूपभेद किया गया और उसे अनुकूल बनाया गया। गवर्नर-जनरल की "उसके कृत्यों के निर्वहन में" "सहायता करने तथा मंत्रणा देने के लिए" एक मंत्रिपरिषद बनी। गवर्नर-जनरल की विधायी शक्तियां समाप्त कर दी गई और उसे यह शक्ति प्रदान की गई कि वह डौमीनियन की शांति एवं अच्छे प्रशासन के लिए केवल आपात स्थिति में अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है। गवर्नर-जनरल डौमीनियन विधानमंडल का अंग नहीं रहा और विधानमंडल को भंग करने की उसकी शक्ति समाप्त हो गई। इस प्रकार, गवर्नर-जनरल देश का केवल उपाधिधारी प्रमुख रह गया और डौमीनियन विधानमंडल पूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न हो गया। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 में भारत की संविधान सभा को पूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न निकाय घोषित किया गया और 14-15 अगस्त, 1947 की मध्य रात्रि को उस सभा ने देश का शासन चलाने की पूर्ण शक्तियां ग्रहण कर लीं। अधिनियम की धारा 8 के द्वारा संविधान सभा को पूर्ण विधायी शक्ति प्राप्त हो गई। किंतु साथ ही यह अनुभव किया गया कि

संविधान सभा के संविधान-निर्माण के कृत्य तथा विधानमंडल के रूप में इसके साधारण कृत्य में भेद बनाए रखना वांछनीय होगा। सदन के सहमत हो जाने पर, इस विषय पर विचार करने के लिए 20 अगस्त, 1947 को श्री जी. वी. मावलंकर की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई।

29 अगस्त, 1947 को मावलंकर समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात संविधान सभा ने संकल्प किया कि संविधान-निर्माण निकाय के रूप में सभा के कार्य और डौमीनियन विधानमंडल के रूप में उसके कार्य में स्पष्ट भेद किया जाए और जब सभा डौमीनियन विधान सभा के रूप में कार्य करे तो उसकी अध्यक्षता के लिए एक अध्यक्ष के चुनाव हेतु उपबंध किया जाए।

उपरोक्त संकल्प के अनुसरण में भारतीय डौमीनियन की स्थापना से ठीक पूर्व लागू विधान सभा नियमों को संविधान सभा के प्रेजीडेंट द्वारा रूपभेदित किया गया तथा उन्हें अनुकूल बनाया गया।

संविधान सभा (विधायी) की एक अलग निकाय के रूप में प्रथम बैठक 17 नवंबर, 1947 को संविधान सभा के प्रेजीडेंट डा. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुई।

अध्यक्ष पद के लिए चूंकि केवल श्री जी.वी. मावलंकर का एक ही नाम प्राप्त हुआ था अतः उन्हें विधिवत निर्वाचित घोषित किया गया। डा. राजेन्द्र प्रसाद अध्यक्ष-पीठ से उठ गए और तब अध्यक्ष मावलंकर ने वह स्थान ग्रहण किया। इस बीच संविधान सभा स्वतंत्र भाग के लिए संविधान के निर्माण कार्य में लगी हुई थी।

संविधान सभा ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया कि संसदीय कार्यपालिका सामूहिक रूप से संसद के निर्वाचित सदन के प्रति उत्तरदायी हो, जैसी कि संघीय संविधान समिति ने सिफारिश की थी और बाद में प्रारूप समिति द्वारा तैयार किए गए संविधान के प्रारूप में उसे सम्मिलित किया गया। 4 नवंबर, 1948 को संविधान का प्रारूप संविधान सभा में पेश करते हुए और संसदीय शासन प्रणाली के लिए सिफारिश करते हुए, प्रारूप समिति के सभापति बी. आर. अंबेडकर ने कहा कि "संविधान के प्रारूप में संसदीय शासन प्रणाली की सिफारिश करते हुए अधिक स्थिरता की अपेक्षा अधिक उत्तरदायित्व को तरजीह दी गई है"। यद्यपि संसदीय शासन प्रणाली के विचार के विरुद्ध कुछ आवाजें सुनी गईं तथापि प्रारूप समिति के प्रस्ताव के पक्ष में भारी बहुमत था और अंत में 26 जनवरी, 1950 को स्वतंत्र भारत के गणराज्य का संविधान लागू हो जाने से, आधुनिक संस्थागत ढांचे और उसकी अन्य सब शाखा-प्रशाखाओं सहित पूर्ण संसदीय शासन प्रणाली स्थापित हो गई। संविधान सभा भारत की अस्थायी संसद बन गई और वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रथम आम चुनावों के पश्चात नये संविधान के उपबंधों के अनुसार संसद का गठन होने तक इसी प्रकार कार्य करती रही।

नये संविधान के अंतर्गत प्रथम आम चुनाव वर्ष 1951-52 में हुए। प्रथम निर्वाचित संसद जिसके दो सदन थे, राज्य सभा और लोक सभा, मई, 1952 में बनी; दूसरी लोक सभा मई, 1957 में बनी; तीसरी अप्रैल, 1962 में; चौथी मार्च, 1967 में; पांचवीं मार्च, 1971 में;

छठी मार्च, 1977 में; सातवीं जनवरी, 1980 में, आठवीं जनवरी, 1985 में; नवीं दिसंबर, 1989 में और दसवीं जून, 1991 में बनी।[1] 1952 में पहली बार गठित राज्य सभा एक निरंतर रहने वाला, स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता। हर दो वर्ष बाद इसके एक-तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण करते हैं।

संदर्भ

1. **विषय पर विस्तृत विवेचन के लिए देखिये सुभाष काश्यप, *हिस्ट्री आफ पार्लियामेंटरी डेमोक्रेसी*, दिल्ली, 1991; द टैन लोकसभाज, दिल्ली, 1992 तथा हिस्ट्री आफ द पार्लियामेंट आफ इंडिया, दिल्ली, भाग एक 1994, भाग दो 1995**

2

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था-संसद का गठन और स्थान

प्रतिनिधिक संसदीय लोकतंत्र

हमने प्रतिनिधिक संसदीय लोकतंत्र की प्रणाली अपनाई है। तीन शब्द, अर्थात प्रतिनिधिक, संसदीय एवं लोकतंत्र हमारी राजनीतिक व्यवस्था के मूल तत्व हैं।

लोकतंत्र का निहित अर्थ है आत्मनिर्णय का लोगों का अधिकार और मानव की तर्कसंगतता में आस्था। सच्चे लोकतंत्र की मूल बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसकी जाति, धर्म, रंग अथवा लिंग कोई भी हो और शिक्षा का स्तर, आर्थिक अथवा व्यावसायिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो, स्वशासन के और, जैसे वह उचित समझे वैसे, अपने कार्यों को करने के योग्य है। लोकतंत्र में लोग अपने स्वामी स्वयं होते हैं।

भारत के संविधान में, इसकी उद्देशिका के महान शब्दों में, कहा गया है कि "हम, भारत के लोग, दृढ़ संकल्प होकर इस संविधान को अंगीकृत करते हैं", जिससे निस्संदेह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में प्रभुसत्ता केवल जनता में निहित है किंतु लोगों के हाथों में प्रभुसत्ता वैसे ही है जैसे भीषण पहाड़ी नदी के जल की शक्ति। उसे उपयोगी बनाने के लिए संयत करना होता है। लोगों को किसी संस्था की आवश्यकता होती है, एक माध्यम की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा वे अपनी प्रभुसत्ता की अभिव्यक्ति कर सकें और उसका प्रयोग कर सकें। हमारे संविधान की योजना और सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की इसकी व्यवस्था के अंतर्गत लोग संघीय संसद के लिए प्रतिनिधि चुनने हेतु मतदान करते समय अपनी प्रभुसत्ता का प्रयोग करते हैं। संसद लोगों की सर्वोत्कृष्ट संस्था बन जाती है जिसके माध्यम से लोगों की प्रभुसत्ता को अभिव्यक्ति मिलती है।

प्रारंभ में, प्राचीन यूनानी "सिटी स्टेट्स" अथवा नगर राज्यों में और भारत में वैदिक काल में लोग शासन संबंधी मामलों का फैसला करने के लिए स्वयं समवेत हुआ करते थे। इस प्रकार लोग राज्य के मामलों का फैसला करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से अपनी शक्ति का प्रयोग करते थे और इस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था को प्रत्यक्ष लोफतंत्र कहा जा सकता है। परंतु धीरे धीरे राजनीतिक ईकाइयों के आकार एवं जनसंख्या में वृद्धि होने से और अंततोगत्वा

आधुनिक राष्ट्र-राज्यों के बनने से, राज्य के मामलों पर विचार करने और सुचारु रूप से निर्णय पर पहुंचने के लिए लोगों के लिए एक स्थान पर समवेत होने का प्रबंध करना असंभव हो गया। इसीलिए सभी प्रकार का प्रत्यक्ष लोकतंत्र शीघ्र ही संसार भर में समाप्त हो गया, सिवाय स्विटजरलैंड के कुछ "कैंटनों" के जहां अब भी विभिन्न मामलों पर लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से मतदान के द्वारा फैसले हो सकते हैं। आधुनिक लोकतंत्र के लिए आवश्यक हो गया है कि वह ऐसा प्रतिनिधि लोकतंत्र हो जहां लोग अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से अपनी प्रभुसत्ता का प्रयोग करें।

"संसदीय" शब्द का अर्थ विशेष रूप से एक प्रकार की लोकतंत्रात्मक राजनीतिक व्यवस्था है जहां सर्वोच्च शक्ति लोगों के प्रतिनिधियों के निकाय में निहित है जिसे "संसद" कहते हैं। संसदीय प्रणाली ऐसी प्रणाली है जिसमें राज्य के शासन में संसद का प्रमुख स्थान है। भारत के संविधान के अधीन संघीय विधानमंडल को "संसद" कहा जाता है। यह वह धुरी है, जो देश की राजनीतिक व्यवस्था की नींव है।

संसद का गठन

भारतीय संसद राष्ट्रपति और दो सदनों—राज्य सभा (कौंसिल आफ स्टेट्स) और लोक सभा (हाउस आफ द पीपुल)—से मिलकर बनती है।

राष्ट्रपति : गणराज्य के राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से ऐसे निर्वाचन मंडल द्वारा किया जाता है जिसमें संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं। यद्यपि भारत का राष्ट्रपति संसद का अंग होता है तथापि वह दोनों में से किसी भी सदन में न तो बैठता है न ही उसकी चर्चाओं में भाग लेता है। संसद से संबंधित कुछ ऐसे संवैधानिक कृत्य हैं जिनका उसे निर्वहन करना होता है। राष्ट्रपति समय समय पर संसद के दोनों सदनों को बैठक के लिए आमंत्रित करता है। वह संसद के दोनों सदनों का सत्रावसान कर सकता है और लोक सभा को भंग कर सकता है। दोनों सदनों द्वारा पास किया गया कोई विधेयक तभी कानून बन सकता है जब राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति प्रदान कर दे। इतना ही नहीं, जब संसद के दोनों सदनों का अधिवेशन न चल रहा हो और राष्ट्रपति का समाधान हो जाए कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण उसके लिए आवश्यक है कि वह तुरंत कार्यवाही करे तो वह अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है जिसकी शक्ति एवं प्रभाव वही होता है जो संसद द्वारा पास की गई विधि का होता है।

लोक सभा के लिए प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात प्रथम अधिवेशन के प्रारंभ में और प्रत्येक वर्ष के प्रथम अधिवेशन के प्रारंभ में राष्ट्रपति एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण करता है और सदनों की बैठक के लिए आमंत्रित करने के लिए कारणों की संसद को सूचना देता है। इसके अतिरिक्त, वह संसद के किसी एक सदन के समक्ष अथवा एक साथ समवेत दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण कर सकता है और इस प्रयोजन के लिए सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकता है। उसे संसद में उस समय लंबित किसी

विधेयक के संबंध में संदेश या कोई अन्य संदेश किसी भी सदन को भेजने का अधिकार है। जिस सदन को कोई संदेश इस प्रकार भेजा गया हो वह सदन उस संदेश द्वारा जिस विषय पर विचार करना अपेक्षित हो, उस पर सुविधानुसार शीघ्रता से विचार करता है। कुछ प्रकार के विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने के पश्चात ही पेश किए जा सकते हैं अथवा उन पर आगे कोई कार्यवाही की जा सकती है।

संविधान के अनुसार संसद संबंधी कुछ अन्य कृत्य भी हैं जिनका निर्वहन राष्ट्रपति से अपेक्षित है। जब कभी आवश्यक हो, तो वह लोक सभा का अस्थायी (प्रो-टेम) अध्यक्ष और राज्य सभा का कार्यकारी सभापति नियुक्त करता है। किसी विधेयक पर दोनों सदनों के बीच असहमति होने की स्थिति में उनकी संयुक्त बैठक बुलाता है। राष्ट्रपति प्रत्येक वर्ष सरकार का बजट, जिसे संविधान में "वार्षिक वित्तीय विवरण" कहा गया है, और भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक, वित्त आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी तथा पिछड़े वर्ग आयोग जैसे संवैधानिक प्राधिकरणों के कुछ अन्य प्रतिवेदन संसद के समक्ष रखवाता है। यदि उसकी राय हो कि आंग्ल-भारतीय समुदाय का लोक सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह सदन के लिए दो से अनधिक सदस्य मनोनीत कर सकता है। राष्ट्रपति साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा जैसे मामलों के विषय में विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से 12 सदस्य राज्य सभा के लिए मनोनीत करता है। इसके अतिरिक्त, उसे निर्वाचन आयोग की राय प्राप्त करने के पश्चात फैसला करने की शक्ति प्राप्त है कि क्या विधिवत निर्वाचित कोई सदस्य संविधान के अनुच्छेद 108 में निर्धारित अनर्हताओं से ग्रस्त होता है अथवा नहीं। इस विषय में उसका फैसला अंतिम होता है।

राज्य सभा : राज्य सभा, जैसाकि इसके नाम से पता चलता है, राज्यों की परिषद अथवा कौंसिल आफ स्टेट्स है। यह अप्रत्यक्ष रीति से लोगों का प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि राज्य सभा के सदस्य राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा चुने जाते हैं। संघ के विभिन्न राज्यों को राज्य सभा में समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। भारत में प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या ज्यादातर उसकी जनसंख्या पर निर्भर करती है। इस प्रकार, उत्तर प्रदेश के जबकि राज्य सभा में 34 सदस्य हैं, मणिपुर, मिजोरम, सिक्किम, त्रिपुरा आदि जैसे अपेक्षतया छोटे राज्यों का केवल एक एक सदस्य है। अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह, चंडीगढ़, दादर तथा नागर हवेली, दमन तथा दीव और लक्षद्वीप जैसे कुछ संघ राज्य क्षेत्रों की जनसंख्या इतनी कम है कि राज्य सभा में उनका प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता। संविधान के अधीन राज्य सभा के 250 से अनधिक सदस्य हो सकते हैं। इनमें राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत 12 सदस्य तथा 238 राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्रों द्वारा चुने सदस्य होते हैं। इस समय राज्य के 245 सदस्य हैं। (देखिए परिशिष्ट 1 और रेखाचित्र 4)

लोक सभा की निर्धारित कार्यावधि 5 वर्ष की है, पर वह राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय भंग की जा सकती है, इसके विपरीत राज्य सभा एक स्थायी निकाय है और उसे भंग नहीं

किया जा सकता। राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य की कार्यावधि छः वर्षों की है, उसके सदस्यों में से यथासंभव एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक द्वितीय वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाते हैं। सदस्यों की पदावधि उस तिथि से आरंभ हो जाती है जब भारत सरकार द्वारा सदस्यों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाते हैं। उपराष्ट्रपति, जो संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाता है, राज्य सभा का पदेन सभापति होता है, जबकि उपसभापति पद के लिए राज्य सभा के सदस्यों द्वारा अपने में से किसी सदस्य को निर्वाचित किया जाता है।

लोक सभा : दूसरा सदन, लोक सभा, हाउस आफ द पीपुल है। इसे जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से चुना जाता है। भारत का नागरिक, जो 18 वर्ष से अन्यून आयु का हो, लोक सभा के लिए निर्वाचनों में मतदान करने का हकदार होगा, यदि उसे कानून के अधीन अन्यथा अनर्ह न कर दिया जाए। संविधान में उपबंध है कि लोक सभा के 530 से अनधिक सदस्य राज्यों में प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों से प्रत्यक्ष रीति से चुने जाएंगे और 20 से अनधिक सदस्य संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करेंगे, जिनका निर्वाचन ऐसी रीति से होगा जिसे संसद विधि द्वारा उपबंधित करे। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति, आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए दो से अनधिक सदस्य मनोनीत कर सकता है। इस प्रकार सदन की अधिकतम सदस्य संख्या 552 हो, ऐसी संविधान में परिकल्पना की गई है। निर्वाचित किए जाने वाले सदस्यों की कुल संख्या को राज्यों के बीच ऐसी रीति से वितरित किया जाता है जिससे कि प्रत्येक राज्य के लिए आवंटित स्थानों की संख्या और राज्य की जनसंख्या के बीच यथासंभव ऐसा अनुपात रहे जो सब राज्यों के लिए समान हो। इस प्रयोजन के लिए जनसंख्या का आशय है वह जनसंख्या जो 1971 की जनगणना द्वारा सुनिश्चित की गई है। सन् 2000 तक लोक सभा में स्थानों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होगा [अनुच्छेद 81 (3)] लोक सभा में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए जनसंख्या-अनुपात के आधार पर स्थान आरक्षित हैं। आरंभ में यह आरक्षण दस वर्ष के लिए था किंतु हर बार इसे दस वर्ष के लिए बढ़ा दिया जाता था। नवीनतम संशोधन के अंतर्गत अब यह पचास वर्ष के लिए अर्थात सन् 2000 तक के लिए है। (देखिए परिशिष्ट 2 तथा रेखाचित्र 5)

लोक सभा की कार्यावधि निर्धारित है जैसाकि संयुक्त राज्य अमेरिका में लोगों द्वारा निर्वाचित हाउस आफ रिप्रेजेंटिव्ज की और यूनाइटेड किंगडम में हाउस आफ कामंस की है। प्रतिनिधिक लोकतंत्र का उद्देश्य यह है कि सरकार वैध रूप से सत्तारूढ़ रहने के लिए समय समय पर जनादेश प्राप्त करती रहे। भारत में सदन की कार्यावधि उसकी प्रथम बैठक के लिए नियत तिथि से पांच वर्षों की है। पांच वर्षों की अवधि समाप्त हो जाने पर सदन स्वतः भंग हो जाता है। कुछ परिस्थितियों में सदन की पूर्ण कार्यावधि समाप्त होने से पूर्व ही इसे भंग किया जा सकता है। जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो तब संसद लोक सभा की कार्यावधि ऐसी अवधि के लिए बढ़ा सकती है जो एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं हो और उद्घोषणा के प्रवृत्त न रहने के पश्चात किसी भी दशा में उसकी कार्यावधि छः माह से

अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती।

वस्तुतया हुआ यह है कि प्रथम लोक सभा से लेकर नवीं लोक सभा तक किसी भी सदन ने अपना कार्यकाल पूरा नहीं किया है। प्रत्येक सदन का कुछ समय पूर्व ही विघटन होता रहा है। आपात काल में जब लोक सभा का कार्यकाल बढ़ा दिया गया था तब वह बढ़ा हुआ कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी।

दोनों सदनों की सापेक्ष भूमिका

संसद के दोनों सदनों का, सिवाय वित्तीय और मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्त्व के मामलों के जो पूर्णतया लोक सभा के अधिकार क्षेत्र में हैं, सभी क्षेत्रों में समान शक्तियां एवं दर्जा प्राप्त है। राज्य सभा की शक्तियां निम्न प्रकार सीमित हैं: —

(1) कोई धन विधेयक राज्य सभा में पेश नहीं किया जा सकता।

(2) राज्य सभा किसी धन विधेयक को अस्वीकृत करने अथवा उसमें संशोधन करने की सिफारिश ही कर सकती है। यदि ऐसा विधेयक चौदह दिनों की अवधि के भीतर लोक सभा को लौटाया नहीं जाता तो उसे उक्त अवधि के समाप्त हो जाने पर लोक सभा द्वारा पास किए गए रूप में दोनों सदनों द्वारा पास किया गया माना जाता है।

(3) कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं, इसका फैसला लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है।

(4) राज्य सभा वार्षिक वित्तीय विवरण पर विचार कर सकती है। इसे अनुदानों की मांगों को अस्वीकृत करने की शक्ति प्राप्त नहीं है।

(5) राज्य सभा को मंत्रिपरिषद में अविश्वास का प्रस्ताव पास करने की शक्ति प्राप्त नहीं है।

परंतु इसका यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि लोक सभा की तुलना में राज्य सभा कम महत्व रखती है अथवा इसे द्वितीय स्थान दिया जाता है। धन विधेयकों को छोड़कर अन्य सब प्रकार के विधेयकों के मामले में राज्य सभा की शक्तियां लोक सभा के बराबर हैं। कोई भी गैर-वित्तीय विधेयक अधिनियम बनने से पूर्व दोनों में से प्रत्येक सदन द्वारा पास किया जाना आवश्यक है। राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने, उपराष्ट्रपति को हटाने, संविधान में संशोधन करने और उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने जैसे महत्वपूर्ण मामलों में राज्य सभा को लोक सभा के समान शक्तियां प्राप्त हैं। राष्ट्रपति के अध्यादेशों, आपात की उद्घोषणा और किसी राज्य में संवैधानिक व्यवस्था के विफल हो जाने की उद्घोषणा को संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखना अनिवार्य है। किसी धन विधेयक और संविधान संशोधन विधेयक को छोड़कर अन्य किसी भी विधेयक पर दोनों सदनों के बीच असहमति को दोनों सदनों द्वारा संयुक्त बैठक में दूर किया जाता है जिसमें मामले बहुमत द्वारा तय किये जाते हैं। दोनों सदनों की ऐसी संयुक्त बैठक का पीठासीन अधिकारी लोक सभा का अध्यक्ष होता है।

इसके अतिरिक्त संविधान के अधीन राज्य सभा को कुछ विशेष शक्तियां सौंपी गई हैं। यह घोषणा करने की शक्ति केवल राज्य सभा को प्राप्त है कि संसद के लिए राज्य सूची में वर्णित किसी विषय के संबंध में विधान बनाना राष्ट्रीय हित में होगा। यदि राज्य सभा इस आशय का संकल्प दो-तिहाई बहुमत से पास कर देती है तो संघीय संसद "राज्य सूची" में वर्णित किसी विषय के संबंध में भी संपूर्ण देश के लिए अथवा देश के किसी भाग के लिए विधान बना सकती है। इसके अतिरिक्त यदि राज्य सभा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषणा करती है कि राष्ट्रीय हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो संविधान के अधीन संसद को, विधि द्वारा, संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन के लिए उपबंध करने की शक्ति प्राप्त है।

संसद तथा कार्यपालिका

"कार्यपालिका" शब्द का प्रयोग ढीले ढंग से किया जाता है और इसके अनेक भिन्न भिन्न अर्थ निकलते हैं। भारतीय संविधान के अधीन कार्यपालिका का प्रमुख राष्ट्रपति है। सभी कार्यकारी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं और वह इनका प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करता है। अतः कार्यपालिका के सभी कार्य राष्ट्रपति के नाम से किए जाते हैं। परंतु उसके लिए यह अपेक्षित है कि वह मंत्रिपरिषद की सहायता और परामर्श से ही कार्य करे। इस प्रकार, राष्ट्रपति केवल औपचारिक, संवैधानिक या नाममात्र प्रमुख होता है। वास्तविक या राजनीतिक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद है। भारत सरकार मंत्रियों से बनती है और सरकार का प्रमुख प्रधानमंत्री है। इसके अतिरिक्त, स्थायी प्रशासन है जिसमें सिविल सेवाएं हैं, भारी संख्या में प्रशासकों का कर्मचारी वर्ग है, तकनीकी विशेषज्ञ हैं और अन्य प्रशासनिक अमला है जो वास्तव में नीतियों के निर्माण एवं कार्यान्वयन में मंत्रियों की सहायता करता है। अतः विचार के स्पष्टीकरण के लिए "कार्यपालिका" शब्द का प्रयोग राजनीतिक कार्यपालिका को अर्थात मंत्रिपरिषद को निर्दिष्ट करने हेतु किया जा सकता है, जबकि "प्रशासन" या "प्रशासनिक" का अर्थ स्थायी सेवाएं या प्रशासनिक व्यवस्था है।

नयी लोक सभा के विधिवत निर्वाचन और गठन के पश्चात राष्ट्रपति ऐसे दल या दलों के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है जिसे लोक सभा में आधे से अधिक सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो। इस प्रकार, प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। अन्य मंत्री राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की मंत्रणा से नियुक्त किये जाते हैं। यहां बता दिया जाना संगत होगा कि राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री नियुक्त करने में निजी इच्छा का प्रयोग करने का प्रायः कोई अवसर नहीं मिलता। परंतु यदि ऐसी स्थिति पैदा हो जाए कि किसी भी दल को लोक सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो राष्ट्रपति किसी ऐसे नेता का चयन करने में स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है जिसे, उसकी राय में, सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त होने की संभावना हो।

प्रधानमंत्री आमतौर पर लोक सभा का सदस्य होता है परंतु मंत्री संसद के दोनों सदनों के लिए जाते हैं। किसी ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री नियुक्त किया जा सकता है जो संसद के किसी भी सदन का सदस्य न हो; परंतु उसे छह मास के पश्चात पद छोड़ना पड़ता है, यदि इस बीच, वह दोनों में से किसी सदन के लिए निर्वाचित न हो जाए। मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है अतः उसके लिये यह जरूरी है कि लोक सभा का विश्वास खोते ही पद-त्याग कर दे। साथ ही, प्रत्येक मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है और उसके द्वारा उसे बर्खास्त किया जा सकता है। परंतु राष्ट्रपति चूंकि प्रधानमंत्री की मंत्रणा से ही ऐसा करता है अतः यह शक्ति वास्तव में प्रधानमंत्री को प्राप्त है।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कार्यपालिका एवं विधानमंडल का वास्तविक सम्मिश्रण है। कार्यपालिका तथा विधानमंडल के आपस में घनिष्ठ संबंध रहते हैं और उनमें किसी प्रकार के विरोध अथवा विभाजन की गुंजाइश नहीं है। दोनों की शक्ति के लिए स्पर्धा करने वाले दो भिन्न केंद्रों के रूप में कल्पना नहीं की जाती बल्कि सरकार के कार्यों में अलग न हो सकने वाले भागीदारों या सह-भागीदारों के रूप में ही उन्हें देखा जाना चाहिये। संसद एक वृहत निकाय है। संसद स्वयं शासन नहीं करती और न ही कर सकती है। मंत्रिपरिषद के बारे में एक तरह से कहा जा सकता है कि यह संसद की महान कार्यपालिका समिति होती है जिसे मूल निकाय की ओर से शासन करने का उत्तरदायित्त्व सौंपा जाता है। दूसरे शब्दों में, कार्यपालिका कोई पृथक या बाह्य निकाय नहीं है। वह संसद का अंग है। क्योंकि मंत्रिपरिषद का मूल संसद है और वह संसद का भाग बनी रहती है और लोक सभा के प्रति उत्तरदायी रहती है। उनका संबंध ऐसा है जैसे बूंद का सागर से होता है, उनका संबंध परस्पर निर्भरता का है। परंतु कार्यपालिका के कृत्यों और संसद के कृत्यों में स्पष्ट अंतर है। संसद का कार्य विधान बनाना, मंत्रणा देना, आलोचना करना और लोगों की शिकायतों को व्यक्त करना है। कार्यपालिका का कृत्य शासन करना है, यद्यपि वह संसद की ओर से ही शासन करती है।

भारतीय संसद के प्रथम सचिव के शब्दों में :

> "संसद को सरकार के उत्तरदायित्वों में किसी भी समय हिस्सा नहीं लेना चाहिए क्योंकि यदि संसद एक बार ऐसा करना आरंभ कर देती है तो संसद के तथा कार्यपालिका के उत्तरदायित्व अस्पष्ट हो जाते हैं संसद कमजोर होने लगती है और आलोचना करने की अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकती"।

यदि कार्यपालिका को विधायी और वित्तीय प्रस्ताव तैयार करने और उन्हें संसद के समक्ष रखने तथा स्वीकृत नीतियों को, संसद द्वारा किसी भी प्रकार की अड़चन पैदा किए बिना, कार्यरूप देने का लगभग असीमित अधिकार प्राप्त है तो संसद को सूचना प्राप्त करने, चर्चा करने, छानबीन करने और कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों पर जन-प्रतिनिधियों की स्वीकृति की मुहर लगाने की असीम शक्ति प्राप्त है। कार्यपालिका तथा प्रशासन संसद के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। संसद का कृत्य कार्यपालिका पर राजनीतिक एवं वित्तीय नियंत्रण रखना और प्रशासन पर संसदीय निगरानी सुनिश्चित करना है।

संसद तथा न्यायपालिका

भारत में न्यायपालिका, विधानमंडल तथा कार्यपालिका के साथ एक समन्वयकारी प्राधिकरण है। भारत का उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय मिलकर एकीकृत न्यायपालिका बनती है। उच्चतम न्यायालय को न्यायिक व्यवस्था में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। वह देश का उच्चतम न्यायाधिकरण है।

संसद को न्यायालयों के गठन, संगठन, अधिकार क्षेत्र एवं शक्तियां विनियमित करने वाले विधान बनाने की शक्ति प्राप्त है। भारत का उच्चतम न्यायालय मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनता है। संविधान में यह निर्धारित था कि मुख्य न्यायाधीश के अलावा न्यायाधीशों की संख्या सात से अधिक नहीं होगी। परंतु संसद को शक्ति दी गई थी कि वह विधि द्वारा अधिक संख्या में न्यायाधीश निर्धारित करे। इस उपबंध के अधीन, संसद ने उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) अधिनियम पास किया जिसके अनुसार अन्य न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाकर दस कर दी गई और बाद में इस अधिनियम के अनेक संशोधनों द्वारा 25 कर दी गई। इस प्रकार इस समय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या मुख्य न्यायाधीश सहित, 26 है।

प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय है जो मुख्य न्यायाधीश तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों से बनता है जो राष्ट्रपति समय समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझे। संविधान के अधीन, संसद, विधि द्वारा—

(क) किसी संघ-राज्य क्षेत्र पर किसी उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का विस्तार कर सकती है या किसी संघ-राज्य क्षेत्र को किसी उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से निकाल सकती है;

(ख) दो या दो से अधिक राज्यों के लिए या दो या दो से अधिक राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्र के लिए एक ही उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है; और

(ग) किसी संघ-राज्य क्षेत्र के लिए उच्च न्यायालय का गठन कर सकती है या किसी ऐसे राज्य क्षेत्र में किसी न्यायालय को संविधान के सभी या किसी एक प्रयोजनार्थ उच्च न्यायालय घोषित कर सकती है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, राष्ट्रपति द्वारा मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से, जैसे वह आवश्यक समझे, परामर्श करने के पश्चात नियुक्त किए जाते हैं। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश संबंधित राज्य के राज्यपाल तथा उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श करने के पश्चात नियुक्त किए जाते हैं। किसी भी न्यायालय का न्यायाधीश अपने हाथ से लिखकर, राष्ट्रपति को संबोधित करके, अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है परंतु उसे सिवाय संविधान में निर्धारित प्रक्रिया के द्वारा अपने पद से हटाया नहीं जा सकता। आम धारणा यह है कि न्यायाधीशों को हटाने के लिये 'महाभियोग' का प्रस्ताव लाना होता है। वस्तुतया ऐसा नहीं है। संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। 'महाभियोग'

की प्रक्रिया केवल राष्ट्रपति के लिए है। किसी न्यायाधीश को अपने पद से तभी हटाया जा सकता है यदि संसद के दोनों सदनों द्वारा एक विशेष बहुमत से (अर्थात उस सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा प्रत्येक सदन के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा) पास किया गया संयुक्त समावेदन संसद के उसी सत्र में राष्ट्रपति के समक्ष रखा जाए। उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के उसके कर्तव्यों के निर्वहन में आचरण के विषय में, सिवाय उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रस्ताव के, अन्य किसी प्रकार चर्चा करने की संसद को शक्ति प्राप्त नहीं है। ऐसा उपबंध स्पष्टतया इसलिए रखा गया है कि न्यायाधीश कार्यपालिका तथा विधानमंडल के प्रभाव से मुक्त रहें। परंतु इस संबंध में न्यायाधीश को प्राप्त संरक्षण उसके न्यायिक कर्तव्यों तक सीमित है, उसके निजी आचरण के निए नहीं।

संसद, विधि द्वारा, संघ के लिए एक प्रशासनिक अधिकरण (एडमिनिसट्रेटिव ट्रिब्यूनल) और प्रत्येक राज्य के लिए या दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक पृथक प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना के लिए उपबंध कर सकती है। इस उपबंध के अधीन बनाए गए कानून में यह उल्लेख किया जाता है कि अधिकरणों के अधिकार क्षेत्र क्या क्या होंगे और शक्तियां क्या क्या होंगी। ऐसे कानून में, उच्चतम न्यायालय के अनुच्छेद 136 के अधीन कार्यक्षेत्र के सिवाय, सभी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र का कुछ उल्लिखित मामलों के संबंध में अपवर्जन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अधीन संसद को एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा बनाने की शक्ति प्राप्त है जिसमें जिला न्यायाधीश से छोटा कोई पद न हो।

संसद के किसी भी सदन की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को, प्रक्रिया की किसी कथित अनियमितता के आधार पर, किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। प्रत्येक सदन का पीठासीन अधिकारी या कोई अन्य अधिकारी या संसद सदस्य जिसमें प्रक्रिया को विनियमित करने या संसद के किसी भी सदन के निर्णय को लागू करने या कार्यरूप देने की शक्तियां निहित की गई हों, उन शक्तियों का प्रयोग करने में न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता। सदन के आंतरिक मामलों को प्रभावित करने वाले किसी मामले के संबंध में "रिट", निदेश या आदेश जारी करना न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से परे है।

ऐसे संविधान के ढांचे में जो व्यक्तिगत मूल अधिकारों की गारंटी देता है, संघ तथा राज्यों की अलग अलग शक्तियों का उपबंध करता है और संसद सहित राज्य के प्रत्येक निकाय की शक्तियों एवं कृत्यों की स्पष्ट परिभाषा करता है और उनका परिसीमन करता है, न्यायपालिका न्यायिक पुनर्विलोकन की अपनी शक्तियों के अधीन बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। संसद द्वारा बनाए गए किसी भी विधान को न्यायालय संविधान की शक्तियों से बाहर और इस कारण शून्य एवं अप्रवर्तनीय घोषित कर सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 13 में यह स्पष्ट उपबंध है कि संसद, राज्य विधानमंडल या कोई भी अन्य प्राधिकरण ऐसा विधान न बनाए जो संविधान के भाग 3 में वर्णित किसी भी मूल अधिकार से असंगत हो, या उसे न्यून करता

हो। अनुच्छेद 32 और 226 द्वारा इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए क्रमशः उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की शक्ति प्रदान की गई है। इस प्रकार, भारत में किसी विधान की संवैधानिक वैधता को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि विधान का विषय :

(क) उस विधानमंडल के अधिकार क्षेत्र में नहीं है जिसने इसे पास किया है;

(ख) संविधान के उपबंधों के प्रतिकूल है; या

(ग) मूल अधिकारों में से किसी का हनन करता है।

कभी कभी ऐसा मान लिया जाता है और प्रायः कहा जाता है कि जैसे विधानमंडल का काम विधान बनाना और कार्यपालिका का काम उसे कार्यान्वित करना है, उसी तरह न्यायालयों का काम संविधान एवं विधियों की व्याख्या करना है। ऐसी धारणा बहुत ही भ्रामक एवं गलत है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था में केवल न्यायपालिका ही व्याख्या नहीं करती है। अनेक ऐसे प्राधिकरण हैं जो लगभग प्रतिदिन अपने कृत्यों का निर्वहन करते हुए वैधता से संविधान की व्याख्या करते हैं। उदाहरणार्थ संसद के दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों को अपने विनिर्णय देते हुए, जो उनके अपने अपने सदनों में अंतिम होते हैं, संविधान के उपबंधों की व्याख्या करनी पड़ती है। न्यायालयों का मूल कृत्य व्यक्तियों के बीच, व्यक्तियों और राज्यों के बीच, एक राज्य तथा दूसरे राज्य के बीच तथा राज्यों के बीच विवादों का न्यायनिर्णय करना है और न्यायनिर्णय करते हुए न्यायालयों के लिए संविधान तथा विधियों की व्याख्या करना अपेक्षित हो सकता है। और जो व्याख्या उच्चतम न्यायालय द्वारा की जाती है वह विधान बन जाती है जिसे देश के सभी न्यायालय मानते हैं। उच्चतम न्यायालय के फैसले के विरुद्ध कोई अपील नहीं है। वह तब तक देश के कानून के रूप में बना रहता है जब तक कि स्वयं उच्चतम न्यायालय उस व्याख्या का पुनर्विलोकन न करे या उसको बदल न दे या जब तक संसद द्वारा उस कानून में या संविधान में उपयुक्त संशोधन न कर दिया जाए। यदि संसद का कोई अधिनियम न्यायपालिका द्वारा रद्द कर दिया जाता है तो संसद उसकी ऐसी त्रुटियों को दूर करके, जिनके कारण वह रद्द किया गया हो, उसे फिर से अधिनियमित कर सकती है। इसके अतिरिक्त संसद अपनी संवैधानिक शक्तियों की सीमा में रहते हुए संविधान में ऐसी रीति से संशोधन कर सकती है जिससे कि वह कानून असंवैधानिक न रहे।

भारतीय संसद इतनी सर्वशक्ति संपन्न नहीं है जितनी कि ब्रिटिश संसद है जहां विधान के न्यायिक पुनर्विलोकन की अनुमति नहीं है। साथ ही, भारतीय न्यायपालिका इतनी सर्वशक्ति संपन्न नहीं है जितनी कि संयुक्त राज्य अमेरिका में है जहां न्यायिक पुनर्विलोकन की वस्तुतया कोई सीमा ही नहीं है।

संसद तथा राज्य विधानमंडल

भारतीय संविधान द्वारा देश में संघीय शासन प्रणाली स्थापित की गई है क्योंकि संघ तथा राज्यों के बीच विधायी, कार्यपालिका एवं वित्तीय शक्तियों का वितरण किया गया है। परंतु भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को संघीय अथवा फेडरल कहना बड़ी संदेहास्पद बात है। संविधान के

पाठ में फेडरेशन शब्द का प्रयोग कहीं नहीं किया गया है। वास्तव में, भारत को फेडरेशन का नाम देने का प्रस्ताव संविधान सभा में विशिष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया गया था। संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत को "राज्यों का संघ", (यूनियन आफ स्टेट्स) कहा गया है। संविधान में ऐसे बहुत से तत्व हैं और इसके अनेक ऐसे उपबंध हैं जो बहुत स्पष्ट रूप में इसके फेडरल संविधान होने के विरुद्ध हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के विपरीत भारत में नागरिकता एक है; ध्वज एक है; संविधान एक है। न्यायपालिका भी एकीकृत है और संघ तथा राज्यों में विभाजित नहीं है। परंतु संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस बारे में मतभेद हो सकता है कि क्या भारतीय राजनीतिक व्यवस्था संघीय स्वरूप की है, एकात्मक है या अर्द्धसंघीय है या कि यह एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जो भावना से तो एकात्मक है परंतु जिसका ढांचा संघीय स्वरूप का है।

भारतीय संघ में इस समय 25 राज्य हैं और सात संघ-राज्य क्षेत्र हैं, जैसाकि संविधान की पहली अनुसूची में उल्लिखित है। संघ का राज्य क्षेत्र राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्रों में बंटा हुआ है। किसी राज्य द्वारा बनाया गया विधान उस राज्य के राज्य क्षेत्र में ही लागू हो सकता है। संघ की संसद भारत के संपूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भी भाग के लिए विधान बना सकती है। संसद को राज्यक्षेत्रातीत विधान बनाने की शक्ति भी प्राप्त है, अर्थात इसके द्वारा बनाया गया कोई विधान केवल भारतीय राज्य क्षेत्र के लोगों और संपत्ति पर ही लागू नहीं होगा बल्कि विदेशों में रह रहे भारतीय नागरिकों पर भी लागू होगा। राज्यों को ऐसा विधान बनाने की शक्ति प्राप्त नहीं है।

संविधान में संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्ति का वितरण तीन प्रकार से करने का उपबंध किया गया है। सूची 1 अथवा संघ सूची में 97 विषय हैं जिनके बारे में केवल संसद ही विधान बना सकता है। सूची 2 या राज्य सूची में 66 विषय हैं जिनके बारे में केवल राज्य विधानमंडल ही विधान बना सकते हैं। सूची 3 या समवर्ती सूची में 47 मदें हैं जिनके बारे में संसद और राज्य विधानमंडल, दोनों ही विधान बना सकते हैं। यद्यपि संविधान द्वारा आवंटित अपने अपने क्षेत्रों में, संसद और राज्य विधानमंडलों को पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त है, तथापि शक्तियों के वितरण की योजना में विधायी क्षेत्र में संसद के सामान्य प्रभुत्व पर बल दिया गया है।

संघ सूची में, जो तीन सूचियों में सबसे लंबी है, रक्षा, वैदेशिक कार्य, रेलवे, संचार, बैंकिंग, मुद्रा आदि जैसे महत्वपूर्ण विषय हैं। अवशिष्ट शक्तियां, अर्थात ऐसे विषय के संबंध में विधान की शक्ति जो तीनों में से किसी भी सूची में वर्णित न हो, संसद को प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त, समवर्ती सूची में, एक ही विषय के संबंध में संघ के और राज्य के विधान में टकराव होने की स्थिति में, संघ का विधान मान्य होता है, दूसरे शब्दों में, इस संबंध में संघ के विधान का स्थान पहला है। समवर्ती क्षेत्र के किसी विषय में राज्य की विधि के पक्ष में इस नियम का अपवाद है कि संसद के पहले के किसी विधान के साथ टकराव होने के मामले में राज्य का विधान मान्य रहता है, यदि उसे विचारार्थ रक्षित रखा गया हो और

राष्ट्रपति की अनुमति उस पर प्राप्त हो चुकी हो। परंतु इस उपबंध में संसद के लिए ऐसी कोई रोक नहीं है कि वह राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए विधान में बाद में संशोधन नहीं कर सकतीं, उसे बदल नहीं सकती या निरस्त नहीं कर सकती। प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाना अपेक्षित है जिससे संसद द्वारा बनाए गए विधान का अनुपालन सुनिश्चित हो।

राज्यों के लिए पूर्णतया रक्षित क्षेत्रों में भी, संसद को कुछ परिस्थितियों में विधान बनाने की शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार, जब कभी राज्य सभा एक संकल्प पास करके, जिसे विशेष बहुमत प्राप्त हो, यह घोषणा करती है कि ऐसा करना राष्ट्रीय हित में आवश्यक या समीचीन है तो संसद राज्य सूची में उल्लिखित किसी विषय पर विधान बना सकती है। इसके अतिरिक्त, जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो तो संसद की विधान बनाने की शक्ति का विस्तार हो जाता है जिससे वह राज्य सूची के किसी विषय पर विधान बना सकती है। यद्यपि संसद द्वारा राष्ट्रीय हित में या आपात स्थिति के दौरान प्रयोग की गई किसी शक्ति से किसी राज्य के विधानमंडल की सामान्य विधायी शक्ति प्रतिबंधित नहीं होतीं, तथापि टकराव की स्थिति में संसद द्वारा बनाया गया विधान प्रवर्तन में रहता है और जब तक वह प्रवर्तन में रहता है तब तक राज्य विधान, जहां तक संसद के विधान से उसके टकराव का संबंध है, अप्रवर्तनीय रहता है।

किसी देश के साथ की गई संधि, समझौते या अभिसमय को या किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, एसोसिएशन या अन्य निकाय में किसी विषय पर, यदि वह विषय राज्य सूची में हो तो भी, किए गए फैसले को कार्यान्वित करने के लिए विधान बनाने की शक्ति भी संसद को प्राप्त है।

संसद से निवेदन किए जाने पर भी वह राज्य सूची के किसी विषय पर विधान बना सकती है। यदि दो या दो से अधिक राज्य विधानमंडल ऐसा वांछनीय समझते हैं कि उनके अधिकार क्षेत्र वाले किसी विषय का विनियमन संसद के विधान द्वारा होना चाहिए और इस आशय का संकल्प पास करते हैं तो, संसद आवश्यक विधान बना सकती है। परंतु इस प्रकार बनाया गया विधान उन्हीं राज्यों में प्रभावित रहता है जिन्होंने इस हेतु निवेदन किया हो और अन्य उन राज्यों में भी जो इस बारे में संकल्प पास करके बाद में उसे अपना लें। संघ सूची की कुछ प्रविष्टियों से भी संसद को शक्ति प्रदान हो जाती है कि वह, विधि द्वारा अपेक्षित घोषणा करके, कुछ क्षेत्र और विषय राज्य के क्षेत्र से अपने अधिकार में ले ले।

संविधान में उपबंध है कि यदि राष्ट्रपति का, किसी राज्य के राज्यपाल से रिपोर्ट मिलने पर या अन्यथा यह समाधान हो जाता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा उस राज्य की सरकार के सभी या कोई कृत्य अपने हाथ में ले सकता है और यह घोषणा कर सकता है कि राज्य के विधानमंडल की शक्तियों का प्रयोग संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन किया जाएगा।

नये राज्यों की स्थापना एवं गठन के मामलों से भी संसद के प्रभुत्व का संकेत मिलता है। संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह—

(क) किसी राज्य में से उसका राज्य क्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकती है;

(ख) किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ा या घटा सकती है;

(ग) किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है; और

(घ) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकती है।

ये परिवर्तन संविधान में संशोधनों की तरह न होकर ऐसे संशोधन हैं जो राष्ट्रपति की सिफारिश पर संसद द्वारा साधारण बहुमत से विधेयक पास करके किए जा सकते हैं। ऐसे विधेयकों पर संबंधित राज्यों के विधानमंडलों के, इस प्रयोजनार्थ निर्धारित अवधि में विचार जानने के लिए उनके पास भेजना अपेक्षित है। परंतु विधेयक इस प्रकार विधानमंडलों के पास भेजने से संसद की जैसा वह उचित समझे वैसा परिवर्तन करने की शक्ति कम नहीं होती। इसके अतिरिक्त, संसद को किसी राज्य में विधान परिषद का साधारण प्रक्रिया द्वारा उत्पादन या सृजन करने की शक्ति प्राप्त है जिसके लिए संविधान में संशोधन करना अपेक्षित नहीं है। यदि किसी राज्य की विधान सभा विशेष बहुमत से इस आशय का संकल्प पास कर देती हैं तो संसद के अधिनियम द्वारा ही ऐसा हो सकता है।

अंतिम परंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि संसद राज्यपाल के द्वारा राज्यों पर कुछ नियंत्रण रखती है। जैसाकि हम जानते हैं, राष्ट्रपति संसद का एक अंग है और साथ ही वह संघ की कार्यपालिका का प्रमुख भी है। राज्यों के राज्यपाल उस के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और वे राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यंत पद धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति ऐसी किसी आकस्मिकता में जिसके लिए संविधान में उपबंध न किया गया हो, राज्य के राज्यपाल के कृत्यों के निर्वहन के लिए ऐसे उपबंध कर सकता है जो वह ठीक समझे।

परंतु इन सब तथ्यों से यह अभिप्राय नहीं है कि भारत में राज्य संघ के मात्र प्रशासनिक एजेंट हों। संविधान में निर्धारित सीमाओं में रहकर संघ और राज्य एक-दूसरे में स्वतंत्र हैं। अपने क्षेत्र में कोई एक-दूसरे के अधीन नहीं है। अंबेडकर के शब्दों में, "संविधान द्वारा नियत किए गए अपने क्षेत्र में राज्य उतने ही संपन्न हैं जितना कि केंद्र संविधान द्वारा सौंपे गए अपने क्षेत्र में हैं"। एक का प्राधिकार दूसरे के प्राधिकार से समन्वयकारी है। वास्तव में, भारत में संघ और राज्यों का संबंध निम्नलिखित दो विरोधी विचारों में समझौते का प्रतीक है :

(1) शक्तियों का सामान्य विभाजन जिसके अनुसार राज्य अपने क्षेत्रों में स्वायत्त है;

(2) विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रीय एकता और मजबूत संघ की आवश्यकता।

इस प्रकार, व्यवहार में भारत में, जैसे कि ग्रैनविल्ल आस्टिन द्वारा कहा गया है, "एक सहकारी संघ विद्यमान है जिसमें संसद का प्रभुत्व तो है परंतु इस कारण राज्य कमजोर नहीं है"।

निष्कर्ष

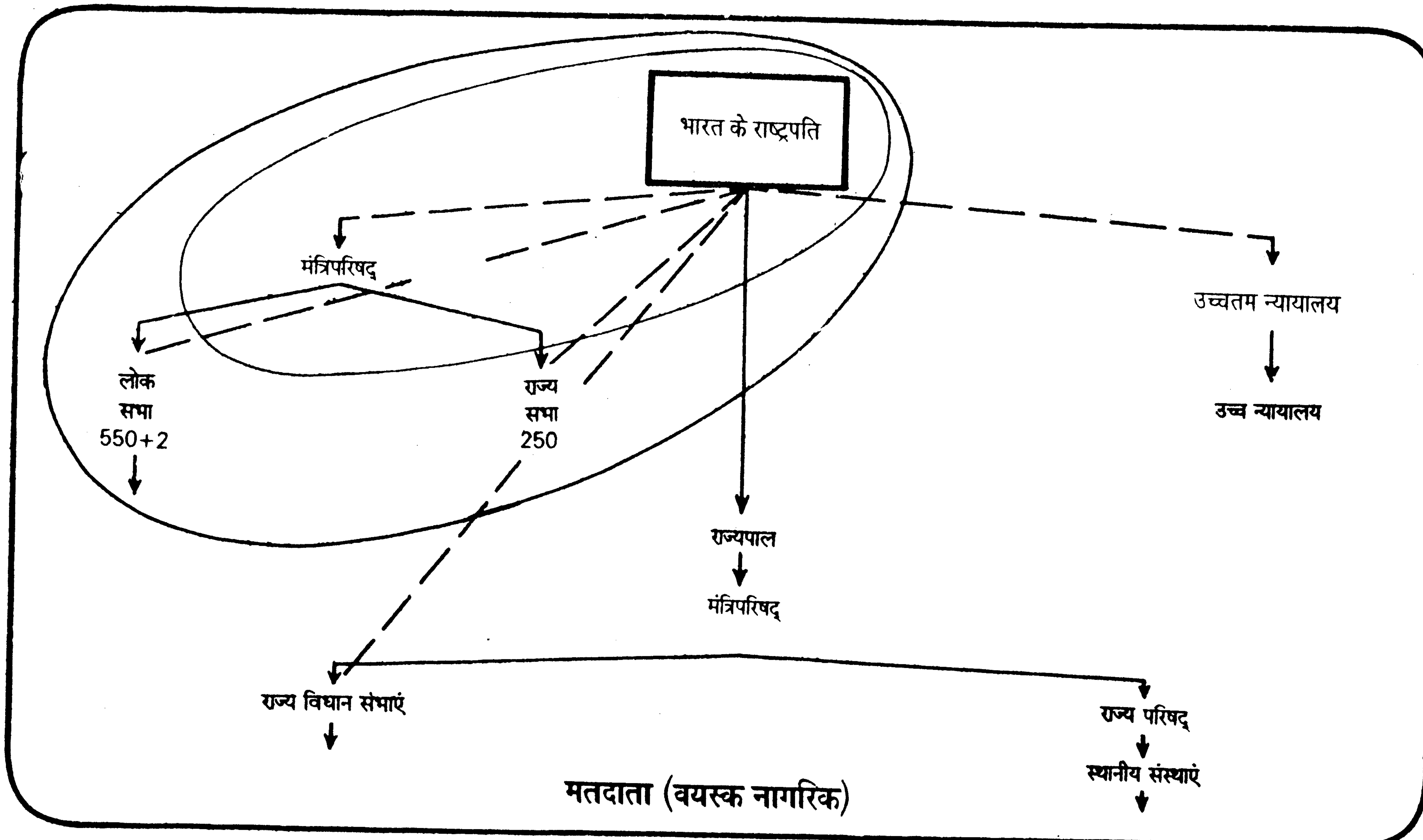
निष्कर्ष यह है कि हमारी व्यवस्था में, सभी वयस्क लोग, अर्थात जिन्होंने 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो, मतदाता हैं; वे अपने राज्यों में लोक सभा के और विधान सभाओं के सदस्य चुनते हैं। राज्यों की विधान सभाएं फिर राज्य सभा के सदस्य चुनती हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाता है जिसमें राज्य सभा, लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं। वह नाममात्र अथवा संवैधानिक कार्यपालिका है, वास्तविक अथवा राजनीतिक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद होती है। मंत्रिगण संसद सदस्य अवश्य होने चाहिए और वे सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

आदर्श रूप से हमारी राजनीतिक व्यवस्था में संसद और अन्य निकायों के बीच संघर्ष का प्रश्न कदापि उत्पन्न नहीं होना चाहिए क्योंकि यहां संबंध ऐसा है जैसे पूर्ण का उसके अंगों से होता है। जहां तक कार्यपालिका और विधानमंडल के संबंधों का प्रश्न है, उनकी स्थिति विरोधात्मक नहीं है। ये दोनों जनता की सेवा में भागीदार हैं।

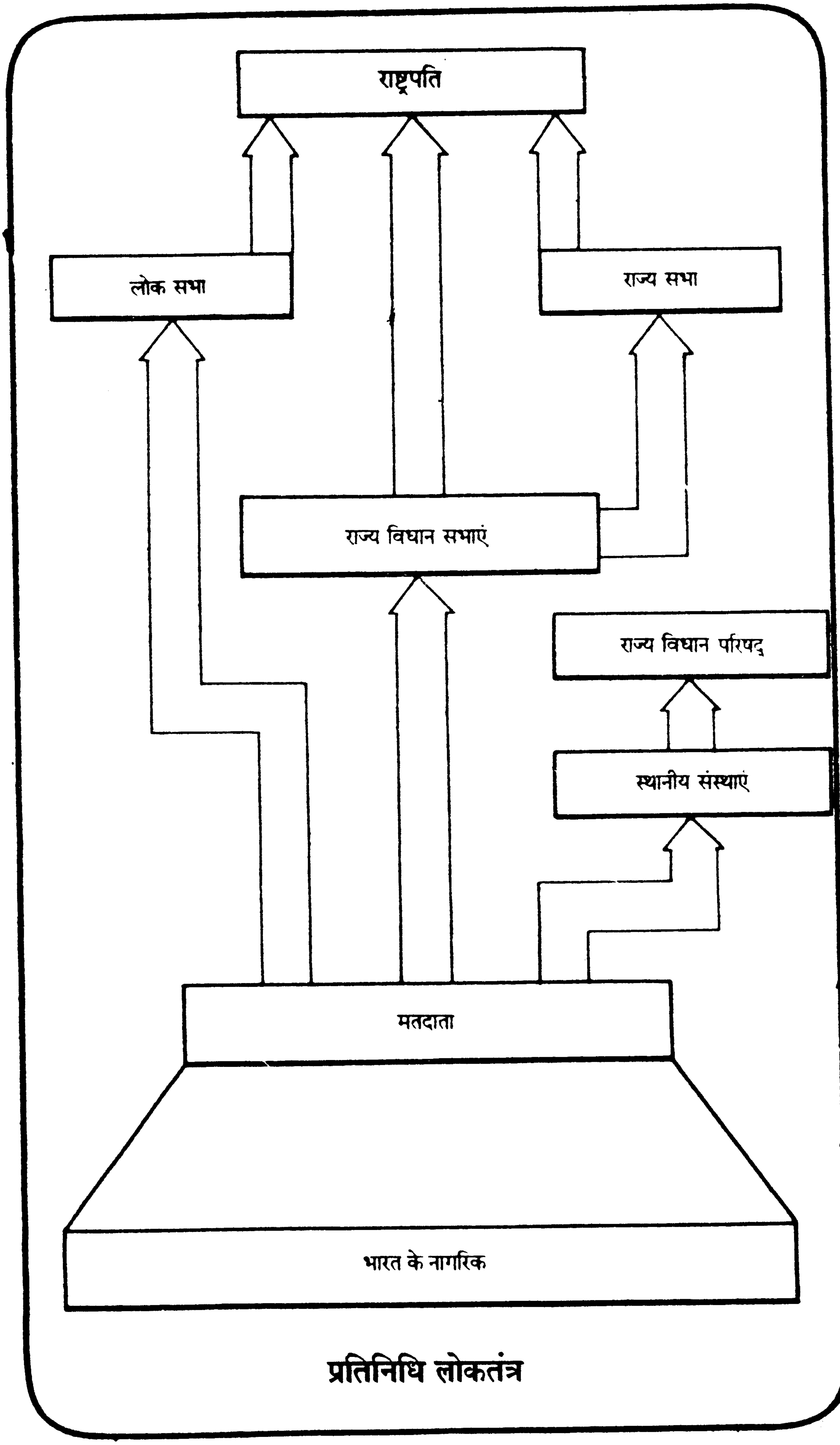
भारत की संसद, राष्ट्रीय स्तर पर संवैधानिक रूप से संगठित सभी लोगों के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है, उसका देश की राजनीतिक व्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें जनता की "प्रभुसत्ता" का समावेश एवं सार है; यह राष्ट्र की आवाज और उसका दर्पण है। संविधान की उद्देशिका में यह पूरी तरह स्पष्ट किया गया है कि संपूर्ण शक्ति का अंतिम स्रोत भारत के लोग हैं जिनमें प्रभुसत्ता निहित है।

संविधान जो इस देश की मूल विधि है उसे "हम, भारत के लोग अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं", ऐसा संविधान की उद्देशिका में कहा गया है। अतः संसद को सर्वोपरि यह देखना होता है कि लोगों की जिन इच्छाओं एवं आकांक्षाओं का प्रतिपादन इसके सदनों में किया जाता है उनकी यथासंभव उत्तम रीति से पूर्ति हो। लोगों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के रूप में संसद सदस्य लोगों की विभिन्न मामलों पर शिकायतों और विचारों को संसद के सदनों में व्यक्त करते हैं, सरकार के कार्यकरण की छानबीन करते हैं और विधान बनाते हैं। संसद "राष्ट्र की जांच पड़ताल करने वाली एवं प्रहरी महान संस्था" के रूप में कार्य करती है।

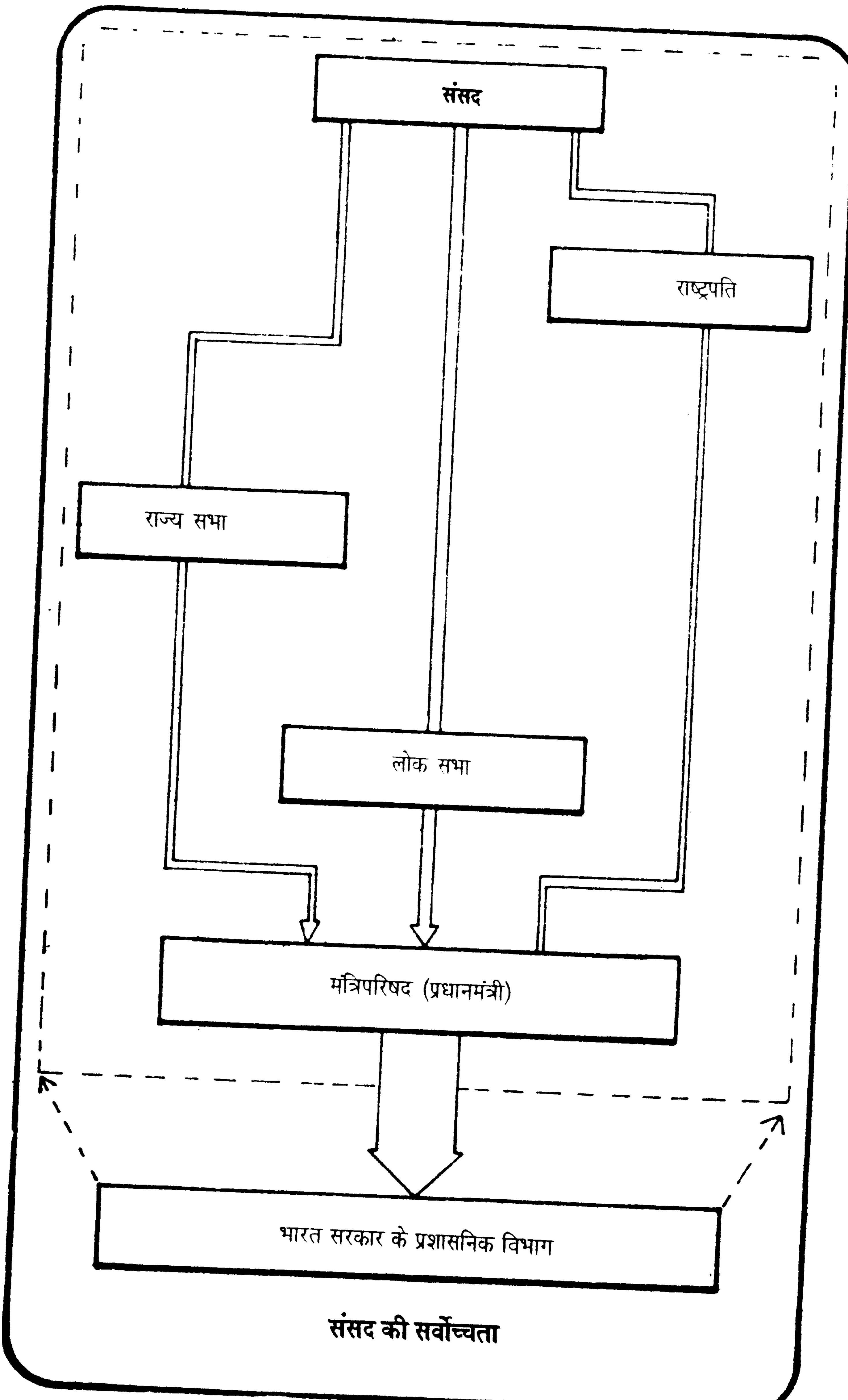
इसके विधायी अधिकार क्षेत्र की सीमा से, संविधान निर्माण की इसकी शक्तियों से, आपात की स्थितियों में इसकी भूमिका से और न्यायपालिका, कार्यपालिका, राज्य विधानमंडलों और संविधान के अधीन अन्य प्राधिकरणों के साथ इसके संबंधों से पता चलता है कि संसद की शक्ति एवं अधिकार क्षेत्र कितना अधिक और विस्तृत है। परंतु यहां यह जान लेना महत्वपूर्ण है कि भारतीय संसद को उस प्रकार प्रभुसत्ता संपन्न निकाय नहीं कहा जा सकता जिस प्रकार कि ब्रिटिश संसद को जाना जाता है। इसकी शक्ति बहुत अधिक है परंतु असीम नहीं है। हमारी संसद का प्राधिकार और अधिकार क्षेत्र अन्य निकायों की शक्तियों द्वारा, संघ और राज्यों में विधायी शक्तियों के विभाजन द्वारा, वादयोग्य मूल अधिकारियों द्वारा, न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए सामान्य उपबंध द्वारा और स्वतंत्र न्यायपालिका होने के कारण सीमित है। इसके प्राधिकार की इन सीमाओं के बावजूद, संविधान के अधीन जो शक्तियां इसे प्राप्त हैं वे इतनी पर्याप्त हैं कि जो भूमिका इसके लिए निहित है उसे वह भली-भांति निभा सकती है।


भारत के राष्ट्रपति
मंत्रिपरिषद्
लोक
सभा
550+2
राज्य
सभा
250
उच्चतम न्यायालय
उच्च न्यायालय
राज्यपाल
मंत्रिपरिषद्
राज्य विधान सभाएं
राज्य परिषद्
स्थानीय संस्थाएं
मतदाता (वयस्क नागरिक)

रेखाचित्र 2.1


राष्ट्रपति
लोक सभा
राज्य सभा
राज्य विधान सभाएं
राज्य विधान परिषद्
स्थानीय संस्थाएं
मतदाता
भारत के नागरिक
प्रतिनिधि लोकतंत्र

रेखाचित्र 2.2


संसद
राष्ट्रपति
राज्य सभा
लोक सभा
मंत्रिपरिषद (प्रधानमंत्री)
भारत सरकार के प्रशासनिक विभाग
संसद की सर्वोच्चता

रेखाचित्र 2.3

परिशिष्ट—2.1

विभिन्न राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों के लिए राज्य सभा में नियत किए गए स्थान

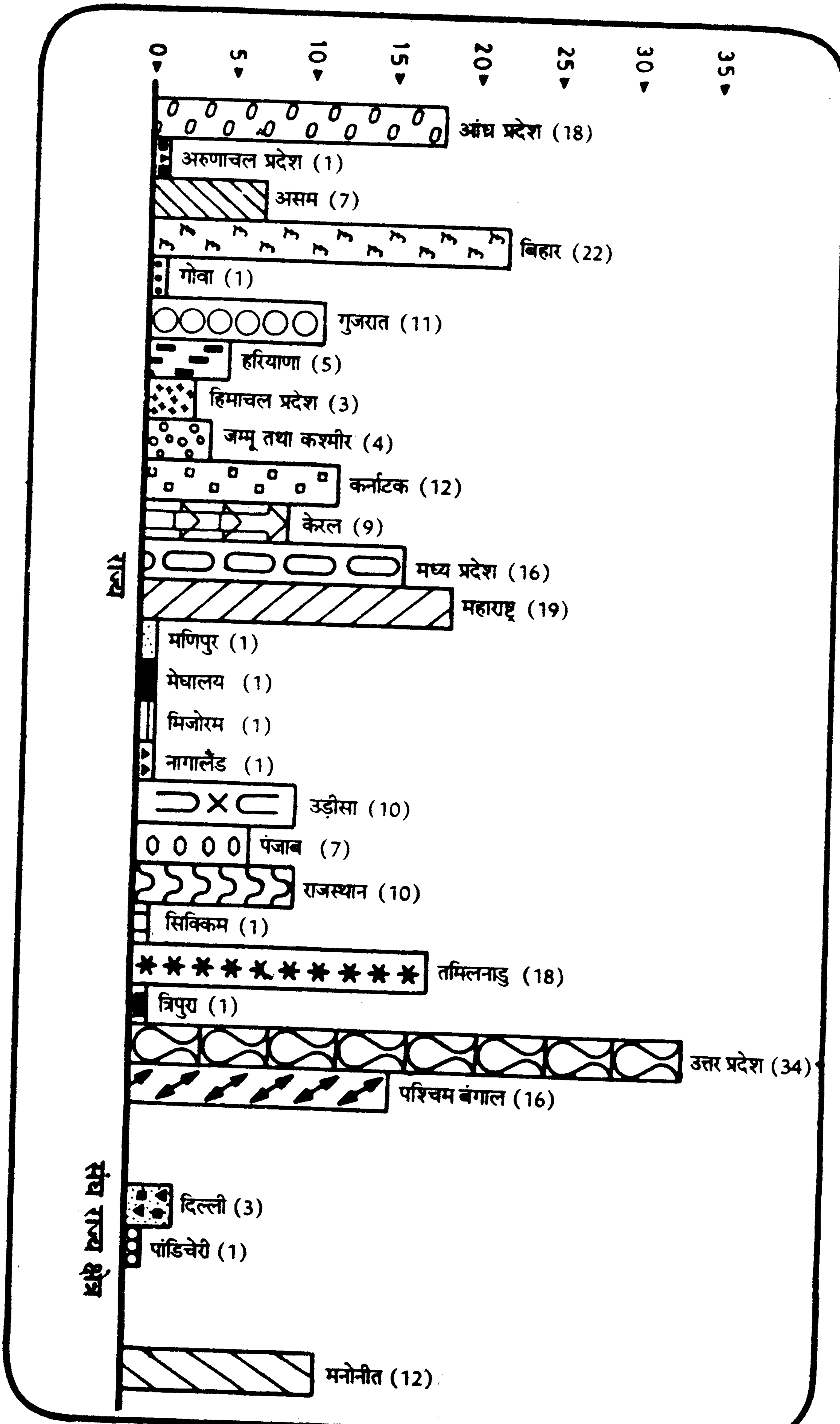
राज्य

		स्थान संख्या			स्थान संख्या
1.	आंध्र प्रदेश	18	14.	मणिपुर	1
2.	अरुणाचल प्रदेश	1	15.	मेघालय	1
3.	असम	7	16.	मिजोरम	1
4.	बिहार	22	17.	नागालैंड	1
5.	गोवा	1	18.	उड़ीसा	10
6.	गुजरात	11	19.	पंजाब	7
7.	हरियाणा	5	20.	राजस्थान	10
8.	हिमाचल प्रदेश	3	21.	सिक्किम	1
9.	जम्मू तथा कश्मीर	4	22.	तमिलनाडु	18
10.	कर्नाटक	12	23.	त्रिपुरा	1
11.	केरल	9	24.	उत्तर प्रदेश	34
12.	मध्य प्रदेश	16	25.	पश्चिम बंगाल	16
13.	महाराष्ट्र	19			

संघ-राज्य क्षेत्र

26.	दिल्ली (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)*	3	मनोनीत	12
27.	पांडिचेरी			

*पूर्ववर्ती दिल्ली संघ-राज्य क्षेत्र ने, जिसमें एक महानगर परिषद तथा कार्यकारी पार्षद थे, अब राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का रूप ले लिया है, जिसमें एक विधानमंडल तथा एक मंत्रिपरिषद है। (अनुच्छेद 239 क क तथा अनुच्छेद 239 क ख, 1991 में उनहत्तरवें संशोधन द्वारा निविष्ट किये गये।)



राज्य सभा में राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों के लिए स्थानों का नियतन

रेखाचित्र 2.4

परिशिष्ट—2.2

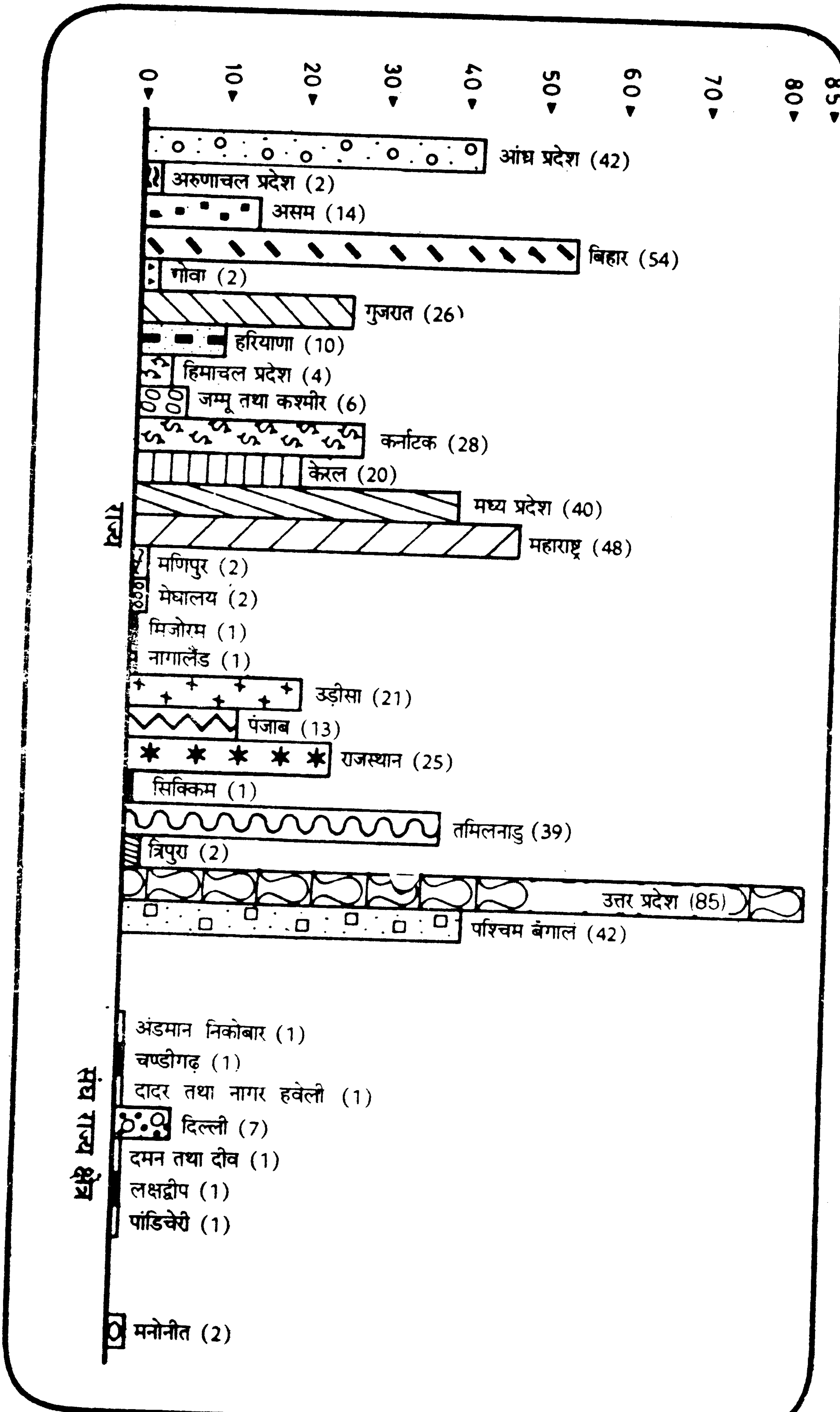
लोक सभा की वर्तमान सदस्य संख्या तथा राज्यों एवं संघ-राज्य क्षेत्रों के लिए उसमें नियत किए गए स्थान

राज्य

		स्थान संख्या			स्थान संख्या
1.	आंध्र प्रदेश	42	14.	मणिपुर	2
2.	अरुणाचल प्रदेश	2	15.	मेघालय	2
3.	असम	14	16.	मिजोरम	1
4.	बिहार	54	17.	नागालैंड	1
5.	गोवा	2	18.	उड़ीसा	21
6.	गुजरात	26	19.	पंजाब	13
7.	हरियाणा	10	20.	राजस्थान	25
8.	हिमाचल प्रदेश	4	21.	सिक्किम	1
9.	जम्मू तथा कश्मीर	6	22.	तमिलनाडु	39
10.	कर्नाटक	28	23.	त्रिपुरा	2
11.	केरल	20	24.	उत्तर प्रदेश	85
12.	मध्य प्रदेश	40	25.	पश्चिम बंगाल	42
13.	महाराष्ट्र	48			

संघ राज्य क्षेत्र

1.	अंडमान निकोबार द्वीप समूह	1
2.	चण्डीगढ़	1
3.	दादर तथा नागर हवेली	1
4.	दिल्ली (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)	7
5.	दमन तथा दीव	1
6.	लक्षद्वीप	1
7.	पांडिचेरी	1
	मनोनीत आंग्ल-भारतीय	2



लोक सभा में राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों का राज्यवार प्रतिनिधित्व

रेखाचित्र 2.5

3

संसद के काम

आजकल की संसद का काम केवल कानून अथवा विधान बनाना नहीं है। वर्तमान युग में इस संस्था के अब अनेक कृत्य हो गए हैं। यह विभिन्न भूमिकाएं निभाती है जिनमें से अनेक परस्पर संबद्ध हैं, यहां तक कि उनमें भेद करना कठिन हो जाता है। परंतु यह तथ्य प्रायः लोग समझते नहीं हैं और संसद के कार्यकरण के किसी एक या दो पहलुओं पर ही बल दिया जाता है। आधुनिक संसदीय राजनीति विज्ञान की भाषा में वर्तमान संसद की भूमिकाओं को पूरी तरह निश्चित करने और इसके कृत्यों का विश्लेषण करने का प्रयास बहुत भ्रामक सिद्ध हो सकता है। फिर भी, विचारों को स्पष्ट करने की दृष्टि से, संसद की कुछ मौलिक भूमिकाएं एवं कृत्य इस प्रकार कहे जा सकते हैं :

* राजनीतिक और वित्तीय नियंत्रण
  (या कार्यपालिका की जिम्मेदारी अथवा दायित्व)
* प्रशासन की निगरानी
  (या प्रशासनिक हिसाबदेही)
* जानकारी प्राप्त करने का अधिकार
* प्रतिनिधित्व करना, शिकायतें व्यक्त करना, शिक्षित करना और मंत्रणा देना
* संघर्षों का समाधान करना और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करना
* विधि-निर्माण, विकास, सामाजिक परियोजना और वैधीकरण
* संविधायी भूमिका (संविधान में संशोधन करना)
* नेतृत्व (भर्ती एवं प्रशिक्षण)

राजनीतिक और वित्तीय नियंत्रण (या कार्यपालिका की जिम्मेदारी अथवा दायित्व)

संसद के प्रति कार्यपालिका का या सरकार का दायित्व या जिसे प्रायः कार्यपालिका पर या सरकार पर संसदीय नियंत्रण कहा जाता है, वह निम्न बातों पर आधारित है :

(1) मंत्रिपरिषद का संसद के निर्वाचित सदन के प्रति सामूहिक दायित्व संबंधी संवैधानिक उपबंध; और

(2) बजट पर संसद का नियंत्रण।[1]

इन दोनों मामलों में, कार्यपालिका पर संसद का नियंत्रण राजनीतिक स्वरूप का है। कार्यपालिका का दायित्व प्रत्यक्ष, निरंतर, समवर्ती एवं दिन प्रतिदिन का है। जब संसद की बैठक चल रही हो तो सरकार का सत्ता में बने रहना हर समय लोक सभा के विश्वास को बनाए रखने पर निर्भर करता है। सदन किसी भी समय बहुमत द्वारा सरकार को अपदस्थ करने का फैसला कर सकता है, अर्थात यदि सत्ताधारी दल सदन के बहुमत का समर्थन खो देता है तो सरकार अपदस्थ हो जाती है। तब कोई आधार बताना, प्रमाण देना या औचित्य बताना आवश्यक नहीं होता।[2] जब सदन स्पष्ट रूप से और अंतिम रूप से कह देता है कि सरकार को बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है तो सरकार को सत्ता छोड़नी ही पड़ती है। सरकार में संसद के विश्वास के अभाव को लोक सभा द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

(क) मंत्रिपरिषद में अविश्वास का मूल (सबस्टेंटिव) प्रस्ताव पास करके,[3]

(ख) नीति संबंधी किसी बड़े मामले पर सरकार को पराजित करके;

(ग) कोई स्थगन प्रस्ताव पास करके;[4] और

(घ) आपूर्ति (सप्लाईज) की स्वीकृति देने से इंकार करके या किसी वित्तीय उपाय पर सरकार को पराजित करके।

कार्यपालिका को बजट तैयार करने का अधिकार प्राप्त है। संविधान में उपबंध है कि अनुमानित प्राप्तियों तथा व्यय का एक वार्षिक विवरण संसद के समक्ष रखा जाएगा। कार्यपालिका को यह सुझाव देने की पूरी स्वतंत्रता है कि उसके व्यय का स्तर क्या हो और विभिन्न राशियां किस किस प्रयोजनार्थ अपेक्षित हैं। उसे यह सुझाव देने की पूरी स्वतंत्रता है कि उसके व्यय को पूरा करने के लिए राजस्व किस प्रकार जुटाया जाए। इस प्रकार, वित्तीय मामलों में हर प्रकार से पहल सरकार ही कर सकती है। परंतु कार्यपालिका मनमाने ढंग से शक्ति धारण न कर ले इसके लिए सबसे बड़ी रोक सार्वजनिक वित्त पर संसद का नियंत्रण है, अर्थात कर लगाने या उनमें परिवर्तन करने और आपूर्ति तथा अनुदानों को स्वीकृति देने की संसद की शक्ति। विधि द्वारा विशिष्ट संसदीय अधिकार के बिना कानूनी तौर पर कोई कर नहीं लगाया जा सकता और न ही राजकोष से कोई खर्च किया जा सकता है।[5]

वास्तव में, बजट पर नियंत्रण या अविश्वास के प्रस्ताव की अंतिम स्वीकृति के सैद्धांतिक अर्थों के सिवाय, सरकार पर संसदीय नियंत्रण एक भ्रम है। कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण का 19वीं शताब्दी का ब्रिटिश विचार, "मदर आफ पार्लियामेंट्स" (ब्रिटिश संसद) में भी अब मान्य नहीं है। संसद का सरकार पर नियंत्रण नहीं रहता। व्यावहारिक तथ्य है कि लोक सभा अपने बहुमत के द्वारा और सदन को भंग कर देने और नये चुनाव कराने की अपनी शक्ति के द्वारा सरकार संसद पर नियंत्रण रखती है। जैसाकि एक अन्य स्थान पर कहा गया है :

> "आज राजनीति का व्यावहारिक तथ्य यह है कि वास्तविक शक्ति प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल को प्राप्त है न कि संसद को। प्रधानमंत्री लोक सभा में बहुमत का नेता होता है और सरकार का प्रमुख भी होता है। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद, सरकार

> और विधानमंडल, दोनों पर नियंत्रण रखती है क्योंकि इसे व्यापक मान्यता प्राप्त है और फैसले करने और उन्हें कार्यान्वित करने की शक्ति भी प्राप्त है।"[6]

और ऐसा होना भी चाहिए।

> "प्रधानमंत्री के प्राधिकार का खंडन नहीं होना चाहिए क्योंकि उस स्थिति में मंत्रिमंडलीय सरकार कार्य नहीं कर सकती। आखिर प्रधानमंत्री उसकी धुरि है। वह दो या तीन सहयोगियों से मंत्रणा करके कार्यवाही कर सकता है। यही कारण है कि मंत्रिमंडल समितियों की व्यवस्था है। अंततोगत्वा प्रधानमंत्री ही सरकार की नीतियों के लिए संसद और राष्ट्र के प्रति जिम्मेदार है।"[7]

प्रशासन की निगरानी (या प्रशासनिक हिसाबदेही) : प्रशासनिक हिसाबदेही का अर्थ है संसद के प्रति प्रशासन का दायित्व। प्रशासन का कार्य स्थायी सिविल सेवाओं द्वारा चलाया जाता है। संसद प्रशासन के दिन प्रतिदिन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती, न ही वह प्रशासन पर नियंत्रण रखती है। दायित्व तकनीकी और अप्रत्यक्ष रूप से, अर्थात मंत्रियों के द्वारा होता है और वह तब होता है जब कार्य किया जा चुका हो। इसके अतिरिक्त, दायित्व के विशिष्ट आधार होते हैं। हमारी व्यवस्था में, नीति निर्धारित किए जाने के पश्चात विधेयक पास किया जाता है या धन मंजूर किया जाता है और फिर उसे कार्यरूप देना प्रशासन का काम है। संसद स्वयं तो प्रशासन का काम नहीं कर सकती और न ही मंत्रिगण ऐसा कर सकते हैं। अतः यदि कार्यान्वयन में गलतियां हो जाएं तो मंत्रियों को नहीं बल्कि अधिकारियों को उसका स्पष्टीकरण करना होता है।

संसदीय राजनीतिक व्यवस्था में चूंकि संसद में लोगों की इच्छा निहित होती है अतः यह देखना उसी का काम होता है कि सार्वजनिक नीति को किस प्रकार कार्यरूप दिया जाए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि वह सामाजिक-आर्थिक प्रगति के उद्देश्यों, कुशल प्रशासन और समूचे तौर पर लोगों की आकांक्षाओं के अनुकूल हो। संक्षेप में, संसद द्वारा प्रशासन की निगरानी का यही उद्देश्य है। संसद को प्रशासन के कार्य-व्यवहार पर निगरानी रखनी ही होती है। वह विगत मामलों के बारे में पूछ सकती है और जांच कर सकती है कि प्रशासन ने स्वीकृत नीतियों के अधीन अपने दायित्वों के अनुकूल कार्य किया है और जिस प्रयोजन से उसे शक्तियां प्रदान की गई थीं उसी प्रयोजनार्थ उनका प्रयोग किया गया है और क्या धन संसदीय मंजूरी के अनुसार खर्च किया गया है। इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि अधिकारी इस बात का ध्यान रखकर ही काम करेंगे कि बाद में उनके काम की संसद द्वारा छानबीन होगी और जो कुछ वह करते हैं या नहीं करते हैं उसके लिए वे उत्तरदायी होंगे। परंतु सार्थक छानबीन करने और प्रशासनिक कृत्यों की निगरानी के लिए संसद के पास तकनीकी संसाधन एवं जानकारी अवश्य होनी चाहिए।[8]

संसदीय समिति प्रणाली, प्रश्नों, ध्यानकर्षण सूचनाओं, आधे घंटे की चर्चाओं आदि जैसे विभिन्न प्रक्रियागत साधन भी प्रशासनिक कार्यों पर संसदीय निगरानी रखने के लिए बहुत सशक्त माध्यम हैं जिनके द्वारा संसद को तरह तरह की जानकारी प्राप्त होती है। राष्ट्रपति

के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव, बजट की मांगों और सरकारी नीति और स्थितियों के विशिष्ट पहलुओं पर चर्चाओं के दौरान प्रशासनिक पुनर्विलोकन के महत्वपूर्ण अवसर मिले हैं। इसके अतिरिक्त अविलंबनीय लोक महत्व के विषयों संबंधी प्रस्तावों, गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों और अन्य मूल प्रस्तावों, के द्वारा भी विशिष्ट मामलों पर चर्चा हो सकती है।

जानकारी प्राप्त करने का अधिकार : जानकारी संसद के लिए बहुत महत्व रखती है। इसके किसी भी कृत्य के प्रभावी निर्वहन के लिए यह सबसे पहली आवश्यकता है। संसद को अनेक प्रकार से, विभिन्न स्रोतों से जानकारी प्राप्त होती है, परंतु सरकार क्योंकि जानकारी का सबसे बड़ा स्रोत है अतः संसद एवं इसके सदस्यों की जानकारी की अपनी आवश्यकताओं के लिए सरकारी विभागों पर काफी निर्भर रहना पड़ता है।[9] जानकारी प्राप्त करना संसद की शायद सबसे बड़ी शक्ति है। संसद का जानकारी प्राप्त करने का अधिकार असीम है, सिवाय इसके कि यदि किसी जानकारी को जाहिर करने से महत्वपूर्ण राष्ट्रीय हित पर या राज्य की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो तो उस पर जोर नहीं दिया जा सकता। जहां तक सरकार के क्रियाकलापों का संबंध है, वह स्वयं सरकार का ही कर्तव्य है कि वह समय पर पूरी, सही सही और स्पष्ट जानकारी संसद को उपलब्ध कराए। यह जानकारी मंत्रियों द्वारा सदन में वक्तव्य देकर, प्रतिवेदन और पत्र सभा पटल पर रखकर या दस्तावेज संसद ग्रंथालय में रखकर उपलब्ध कराई जाती है। उपर्युक्त सारी जानकारी महत्वपूर्ण होती है तो तुरंत ही प्रकाशित कर दी जाती है और उसका प्रयोग सदन में चर्चाएं उठाने के लिए किया जा सकता है।

सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं प्रभावी माध्यम जिसके द्वारा सदस्य स्वयं जानकारी प्राप्त करते हैं वह है संसद के सदनों में प्रश्न पूछा जाना। यह ठीक ही कहा गया है कि संसद में प्रश्नकाल के दौरान "विशाल प्रशासनिक व्यवस्था के प्रत्येक विभाग के प्रत्येक क्रियाकलाप की बारीकी से जांच होती है और कोई भी क्षेत्र संसद की छानबीन से अछूता नहीं रहता"। जानकारी मांगने वाले अनुपूरक प्रश्नों के माध्यम से, जो इस तरह पूछे जाते हैं कि प्रशासन की कमियां प्रकाश में आ जाएं, मंत्रियों का कड़ा परीक्षण होता है। कभी कभी तो मंत्री सदस्यों के प्रश्नों द्वारा जान पाते हैं कि उनके अधीन विभागों की स्थिति क्या है और उनमें कौन सी त्रुटियां हैं जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। किसी प्रश्न के अधूरे उत्तर की अनुवर्ती कार्यवाही के तौर पर कोई भी सदस्य आधे घंटे की चर्चा की मांग कर सकता है। सदस्य अविलंबनीय लोक महत्व के विषयों पर मौखिक उत्तर के लिए अल्प सूचना प्रश्न पूछ सकते हैं। इनके अलावा, एक अन्य प्रक्रियागत उपाय ध्यानाकर्षण सूचनाओं का है। कोई सदस्य, अध्यक्ष की पूर्व अनुमति से, अविलंबनीय लोक महत्व के किसी मामले की ओर मंत्री का ध्यान दिला सकता है और उससे अनुरोध कर सकता है कि वह उस मामले पर वक्तव्य दे। सदस्य संबंधित मंत्री को लिखकर भी ऐसी जानकारी मांग सकते हैं जिसकी कि उन्हें आवश्यकता हो और ऐसी जानकारी आमतौर पर दे दी जाती है।[10]

संस्थागत स्तर पर, जानकारी प्राप्त करने का एक अन्य माध्यम विभिन्न संसदीय समितियों के प्रतिवेदन हैं। अपनी छानबीन की प्रक्रिया में समितियां खोजी प्रश्न करके सरकार

के परीक्षणाधीन मंत्रालयों एवं विभागों, सरकारी उपक्रमों इत्यादि से विस्तृत एवं बहुमूल्य जानकारी एकत्र करती हैं यह प्रक्रियागत उपाय अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों पर जानकारी प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन बन गया है और इसका सदन के दोनों पक्षों के सदस्य बहुत प्रयोग करते हैं।

कुछ राजनीतिक दलों के शोध एवं संदर्भ के लिए अपने कर्मचारी हैं जो विशेषकर दल की स्थिति की दृष्टि से आवश्यक जानकारी अपने सदस्यों को देते रहते हैं। निर्वाचन क्षेत्रों में तथा अन्य स्थानों पर जाने, निर्वाचकों और अन्य लोगों से पत्र व्यवहार करने, सरकारी मंत्रणा या अन्य समितियों, बोर्डों आदि का सदस्य बनने, सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रकाशनों, सामयिक साहित्य तथा रेडियो, टेलीविजन, समाचारपत्रों जैसे जन-संचार माध्यमों से भी सदस्यों को नवीनतम घटनाओं की जानकारी रहती है और वे प्रशासन तथा सार्वजनिक नीतियों संबंधी मामलों से सुपरिचित रहते हैं।

प्रेस संसदीय जीवन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराने की भूमिका निभाता है। परंतु इससे प्रेस पर भारी दायित्व भी आ जाता है कि वह स्वयं अपनी आचरण संहिता का पालन करे, सनसनीखेज बातें लिखने के प्रलोभन में नहीं आए, पत्रकारिता से तुच्छ लाभों के लिए राष्ट्रीय हित का बलिदान न करने के अपने सर्वोच्च कर्तव्य को याद रखे, समाचारों का तथ्यात्मक आधार पर सही होना और विश्वसनीय होना सुनिश्चित करे और सर्वोपरि, ईमानदार और निष्पक्ष रहे तथा जनता की सेवा के लिए समर्पित रहे। प्रायः प्रेस प्रशासनिक त्रुटियों, घोटालों और कमियों का पता लगाने के लिए कठिन परिश्रम करता है, लोगों की शिकायतें और कठिनाइयां व्यक्त करता है और यह बताता है कि नीतियों को किस तरह कार्यरूप दिया जा रहा है। संसदीय प्रश्नों, प्रस्तावों और वाद विवाद के लिए अधिकांश जानकारी दैनिक समाचारपत्रों से प्राप्त होती है और यह एक महत्वपूर्ण माध्यम है जिस पर सदस्य निर्भर करते हैं। इसके साथ साथ, प्रेस लोगों को जानकारी देता रहता है कि संसद में क्या हो रहा है। इस आदान प्रदान से प्रेस लोगों और संसद के बीच महत्वपूर्ण तथा मजबूत संपर्क बनाए रखने में समर्थ होता है। इन मामलों को जितना स्थान दिया जाता है और जितनी जानकारी दी जाती है उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि हमारे देश में प्रेस उस आवश्यकता की पूर्ति करता है जो संसद सदस्यों तथा लोगों द्वारा समान रूप से महसूस की जाती है।

विभिन्न स्रोतों से संसद के लिए इतनी अधिक जानकारी उपलब्ध होने पर भी यह पर्याप्त नहीं है। सरकारी स्रोतों द्वारा उपलब्ध की जाने वाली जानकारी कुशल ढंग से एकत्रित की जाती है और तैयार की जाती है परंतु यह जानबूझकर या अनजाने में कभी कभी एकतरफा या पक्षपातपूर्ण हो सकती है और हो सकता है कि वह सदा पूर्ण, तथ्यात्मक और निष्पक्ष हो। जन संचार माध्यम, राजनीतिक दलों, निहित स्वार्थ वाले ग्रुपों या लॉबी खड़ी करने वालों जैसे अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी तो उससे भी कम तथ्यात्मक या निष्पक्ष होगी। अतः आवश्यकता इस बात की है कि संसद जानकारी के लिए स्वयं अपना संस्थागत स्रोत विकसित करे। जो

स्वतंत्र जानकारी का रक्षित भंडार हो, और विशिष्ट प्रसार प्रक्रियाओं का भी विकास करे। संसद ग्रंथालय और इसकी शोध, संदर्भ, प्रलेखन तथा सूचना सेवाओं का यही उद्देश्य होता है। ये सेवाएं सदस्यों के लिए उपलब्ध रहती हैं और जब भी वे चाहें, निष्पक्ष एवं बिल्कुल संगत जानकारी अल्प सूचना पर प्राप्त कर सकते हैं। उनकी भावी आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाता है। विधायकगण चूंकि बहुत व्यस्त रहते हैं और उनके पास समय बहुत कम होता है अतः जानकारी ठीक ठीक होनी चाहिए, संक्षिप्त, आसानी से समझी जा सकने वाली और तुरंत प्रयोग में लाए जा सकने योग्य होनी चाहिए।[11]

प्रतिनिधित्व करना, शिकायतें व्यक्त करना, शिक्षित करना तथा मंत्रणा देना : आधुनिक लोकतंत्र में संसद का मुख्य कृत्य लोगों का प्रतिनिधित्व करना है। पिछली कुछ दशाब्दियों में, संसद की प्रतिनिधित्व करने और शिकायतें व्यक्त करने की भूमिका पर अधिकाधिक बल दिया गया है। संसद लोगों की सर्वोत्कृष्ट संस्था है। यह सर्वोच्च मंच है जिसके द्वारा वे अपनी आशाओं, इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहते हैं, अपनी शिकायतों, कठिनाइयों और यहां तक कि अपनी भावनाओं, चिंताओं और निराशाओं को भी व्यक्त करना चाहते हैं। संसद लोगों की परिवर्तनशील भावनाओं एवं आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करती है। यह लोगों का दर्पण ही नहीं बल्कि उनकी दिलों की धड़कन का मापदंड भी है।

संसद सदस्यों की भूमिका के बारे में उनके अपने विचारों का अध्ययन करना, अथवा इस बात की जांच करना दिलचस्प बात होगी कि संसद सदस्य स्वयं क्या सोचते हैं कि उनकी उचित भूमिका क्या होनी चाहिए और यह भी कि क्या संसद के सदनों के बदलते हुए स्वरूप का कोई प्रतिबिंब संसद सदस्यों की अपनी भूमिका संबंधी विचारों में और सदनों के वास्तविक कार्यकरण में दिखाई देता है या नहीं। अनुभव पर आधारित सामग्री के विश्लेषण के अनुसार, स्वतंत्रता पूर्व का केंद्रीय विधानमंडल विशिष्ट वर्ग के लोगों का निकाय था। किंतु, प्रत्येक निर्वाचन के बाद लोक सभा अधिकाधिक प्रतिनिधि निकाय का रूप लेती रही। पहले एक अध्ययन में किए गए विश्लेषण के अनुसार :

> "... भारतीय संसद बहुमुखी भारतीय समाज का सच्चा दर्पण है। संसद में भारत के लोगों का, उनकी राजनीतिक जागृति के स्तर का, उनके सीधे सादे जीवन का और उनकी समस्याओं, आशाओं एवं आकांक्षाओं का अधिक प्रतिनिधि स्वरूप दिखाई देने लगा है। विशिष्ट वर्ग की राजनीति का स्थान धीरे धीरे ग्रामोन्मुख राजनीति ले रही है। नगरीय वकील जो कानून और संसदीय प्रक्रिया की बारीकियों को समझता था, उसका स्थान ग्रामीण किसान या राजनीतिक/सामाजिक कार्यकर्ता ले रहा है जिसकी अंतर्जात सहज बुद्धि है और जो यह पूरी तरह समझता है कि लोगों की आवश्यकता क्या है। अब विदेशी शिक्षा प्राप्त, पब्लिक या कान्वेंट स्कूलों में पढ़े उच्च-मध्यम श्रेणी के नगरीय विशिष्ट लोगों का स्थान गांवों के शिक्षित साधारण लोग ले रहे हैं"।[12]

इसके अतिरिक्त, एक औसत संसद सदस्य समझता है कि उसका प्रमुख कर्तव्य अपने लोगों का प्रतिनिधित्व करना और उनकी समस्याओं, कठिनाइयों तथा शिकायतों को व्यक्त करना और उन्हें दूर करने का प्रयास करना है। क्योंकि, यदि कार्यपालिका संसद के प्रति उन्हें उत्तरदायी है तो संसद और इसके सदस्य भी लोगों के प्रति उत्तरदायी हैं। सदस्य जिन लोगों का प्रतिनिधित्व करता है उनके और संसद एवं सरकार के बीच वह संचार की मुख्य कड़ी है। इसके अतिरिक्त, सदस्य की शैक्षिक भूमिका भी है। जो कुछ संसद में हो रहा हो सदस्य को उसे समझना और उसमें अंतर्ग्रस्त होना होता है ताकि वह संसद के बारे में लोगों को शिक्षित कर सके और उन्हें जानकारी दे सके। इसका कारण यह है कि यदि उसे संसद में लोगों का प्रतिनिधित्व करना है तो उसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह संसद की, इसके कार्यकरण की और इसकी समस्याओं की सही तस्वीर लोगों के सामने पेश करे। उसे अपने निर्वाचकों, उनकी समस्याओं और आवश्यकताओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए और उनके कल्याण के लिए सदस्य को अधिक से अधिक योगदान करना चाहिए। सदस्य उपलब्ध विभिन्न प्रक्रियागत उपायों का पूर्ण उपयोग करके और सदन में इस हेतु हर संभव अवसर का लाभ उठाकर और याचिका समिति तथा अन्य संसदीय समितियों के द्वारा ऐसा कर सकता है।

विधायी प्रस्तावों या वित्तीय विधेयकों पर, सरकार की नीतियों पर विचार करने और उन्हें स्वीकृति प्रदान करने के प्रस्ताव पर, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर, धन्यवाद प्रस्ताव पर, बजट इत्यादि पर वाद विवाद एवं चर्चा के दौरान सदस्य अपने विचार व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र हैं और वे कह सकते हैं कि देश की बेहतरी किस में है और वर्तमान नीति में क्या रूपभेद करना अपेक्षित है। सरकार संसद की राय के प्रति संवेदनशील रहती है; अधिकांश मामलों में वह पहले से सब कुछ जानती है; कुछ मामलों में वह झुक जाती है और कुछ मामलों में वह महसूस करती है कि वह अपने वचनों, दायित्वों और राजनीतिक विचारधारा के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। तथापि चर्चाओं के दौरान सदस्यों को प्रशासन के कार्य निष्पादन के लिए उसकी आलोचना करने और इस बारे में सुझाव देने की पूरी स्वतंत्रता है कि भविष्य में वह कैसे कार्य करे या किसी उपाय विशेष को किस प्रकार कार्यरूप दे। चर्चाएं महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि उनसे पता चलता है कि संसद का क्या दृष्टिकोण है। चर्चाओं से प्रशासनिक तंत्र पर लोगों के विचारों का प्रभाव पड़ता है और यदि ऐसा न हो तो प्रशासन लोगों की भावनाओं से अनभिज्ञ रहे। संसदीय वाद-विवाद प्रशासन को उसके कर्तव्यों एवं दायित्वों की याद दिलाते हैं। संसदीय वाद-विवाद विभिन्न प्रकार से प्रशासन की विचारधारा और कार्यों को प्रभावित करता है और ऐसा सूक्ष्म प्रभाव प्रशासन के उच्च एवं निम्न, सभी स्तरों पर रहता है जिसका स्पष्ट रूप से अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यद्यपि प्रशासकों के लिए संसद द्वारा स्वीकृत नीतियों को यथासंभव बेहतर से बेहतर तरीके से कार्यान्वित करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है, तथापि सदन में व्यक्त किए गए विभिन्न विचारों का उन पर गहरा प्रभाव रहता है और उनसे उनका मार्गदर्शन होता है। और इसी को संसद की मंत्रणादाता की भूमिका कहा जा सकता है।

संघर्षों का समाधान करना और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करना : व्यक्ति के जीवन में टकराव होना स्वभाविक है, विचारों एवं हितों का टकराव और विभिन्न स्पर्धी शक्तियों द्वारा शक्ति के लिए संघर्ष। राष्ट्रीय राजनीति में टकरावों के समाधान के सशक्त माध्यम और प्रमुख मध्यस्थता शक्ति के रूप में संसद का उद्भव भारतीय राजनीतिक जीवन का अब एक सर्वमान्य तथ्य है। संसदीय लोकतंत्र को बेहतर एवं अधिक सभ्य शासन प्रणाली माना जाता है क्योंकि इसमें गली गली में लड़ाईयां युद्ध क्षेत्रों में लड़ाई का स्थान विधानमंडलों में वाद विवाद तथा चर्चाएं ले लेती हैं। वाद विवाद और चर्चाओं से समाज के भीतर के तनाव और असंतोष प्रकाश में आ जाते हैं। संसद, शक्ति संघर्ष के लिए, राजनीतिक गतिविधि को स्पष्ट करने के लिए या परस्पर विरोधी भूमिकाएं अदा करने के लिए वैध रूप से मैदान बन जाता है और संसदीय नियम तथा प्रक्रियाओं के कारण अंत में समझौता करना संभव हो जाता है। एक-दूसरे को मिटाने हेतु लड़ाई करने के बजाय, दल कम से कम असहमति के लिए और एक-दूसरे को सहन करने के लिए सहमत हो जाते हैं। कुछ सूक्ष्म समस्याओं का समाधान संसद में ही हो जाता है। स्पर्धी शक्तियां अपनी बात मनवाने के लिए प्रयास करती हैं और अंत में मेल मिलाप कर लेती हैं। टकराव के समाधान की यह भूमिका निभाते हुए संसदीय संस्था राष्ट्रीय एकता लाने वाली और मध्यस्थता करने वाली महान संस्था का काम करती है। हमारे अनेक मतमतांतरों वाले समाज के प्रसंग में, टकरावों का समाधान करने और एकता लाने वाली संसद की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

औपचारिक संसदीय मंचों तथा संसदीय प्रक्रियाओं द्वारा अदा की जाने वाली भूमिका के अतिरिक्त, संसद भवन का सेंट्रल हाल अपने आप में एक संस्था है। यह बहुत बड़े क्लब की तरह है और अपने विचारों तथा भावनाओं को व्यक्त करने का महत्वपूर्ण स्थान है। यहां देश के सभी भागों के संसद सदस्य, चाहे उनकी जाति, मत, क्षेत्र या धर्म कोई भी हो, औपचारिक रूप से मिलते हैं और सारे देश को प्रभावित करने वाली समस्याओं पर व्यक्तिगत रूप से या ग्रुपों में विचार करते हैं। इससे राष्ट्रीय एकता की इतनी अधिक भावना पैदा हो जाती है जो अन्यत्र पैदा नहीं हो सकती। जो सदस्य यहां प्रवेश करने से पहले पृथकतावादी या क्षेत्रीय विचार रखते हों वे भी सेंट्रल हाल में आकर अपने को एक ही देश के नागरिक महसूस करने लगते हैं। विखंडनकारी प्रवृत्तियों का तीखापन छूट जाता है। जो बात किन्हीं राज्यों की राजधानियों में बिल्कुल ठीक प्रतीत होती है और बिल्कुल स्वीकार्य और यहां तक कि सराहनीय लगती है, वही बात सेंट्रल हाल में हंसी का विषय बन जाती है, वहां वातावरण ही ऐसा होता है जो वृहत राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के पक्ष में सभी को बाध्य कर देता है।

विधि निर्माण, विकास, सामाजिक परियोजन तथा वैधीकरण : विधि निर्माण विधानमंडल का परंपरागत कृत्य है। भारत के संविधान के अधीन राष्ट्रीय स्तर पर संसद सर्वोच्च विधायी निकाय है। संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ तथा समवर्ती सूचियों में इसके लिए आवंटित अनेक विषयों पर यह विधान बना सकती है।[13] अवशिष्ट शक्ति चूंकि संसद में निहित है अतः यह

उन विषयों पर भी विधान बना सकती है जो विशिष्टतया राज्यों को न सौंपे गए हों। राज्यों को राज्य सूची में विशेष रूप से सौंपे गए विषयों के संबंध में भी, कुछ परिस्थितियों में, संसद विधान बना सकती है।

विधान का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसके महत्वपूर्ण सामाजिक परिणाम होते हैं। कानून शांति और विधि तथा व्यवस्था बनाए रखने, विदेशी खतरों और आंतरिक उपद्रवों से देश की रक्षा करने और मजबूत तथा कुशल प्रशासन व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए ही आवश्यक नहीं होते बल्कि आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन द्वारा लोगों के कल्याण के लिए भी जरूरी हैं। समाज में, विशेषकर हमारे जैसे परिवर्तनशील समाज में, सामाजिक परिवर्तन के लिए आधार एवं माध्यम की व्यवस्था केवल संसद ही कर सकती है। अतः सामाजिक विधान विधि निर्माण का प्रमुख क्षेत्र है, ऐसा विधान जिसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन लाना तथा आर्थिक विकास करना हो। सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन को ठोस रूप देने के लिए वर्तमान संस्थाओं का पुनर्गठन करना होगा और विभिन्न सामाजिक शक्तियों और ग्रुपों के परस्पर विरोधी हितों के बीच एक नया संतुलन लाना होगा। ऐसा संसद द्वारा विधान बनाकर ही किया जा सकता है। वास्तव, में संसद सामाजिक सुधार लाने में सबसे आगे रही है। संविधान के प्रारंभ में संसद द्वारा समाज सुधार के अनेक विधान बनाए गए हैं अर्थात ऐसे विधान जिनमें समाज के पिछड़े, पद-दलित या परंपरागत रूप से दुर्व्यवहार के शिकार वर्गों के लिए आरक्षण, सामाजिक सुरक्षा, निर्योग्यताओं के निवारण, न्यूनतम मजदूरी, वृद्धावस्था पेंशन, आवास आदि के रूप में गारंटी और लाभों के विशेष उपबंध दिए गए हैं।[14]

विधि का निर्माण करने में संसद की भूमिका, अर्थात प्रस्तावित विधान का पुनरीक्षण, निरीक्षण और उस पर चर्चा करने और संभवतया अंतिम रूप में उसे प्रभावित करने का अवसर प्रदान करने की भूमिका यद्यपि बहुत महत्व रखती है तथापि तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। संसद विधियों का निर्माण नहीं करती। इस प्रयोजन के लिए न तो उसके पास समय है और न ही आवश्यक जानकारी। जैसाकि अन्य मामलों में होता है, विधान के मामले में भी पहल पूर्णतया कार्यपालिका और प्रशासनिक विभागों द्वारा की जाती है।

> "विधायी प्रस्ताव सूत्रबद्ध करने का अर्थ है तकनीकी स्तर पर तैयारी करना और विभिन्न स्पर्धी दावों तथा आधारों में तालमेल बैठाना। यह कार्य, इसके स्वरूप को देखते हुए, विधानमंडल में नहीं किया जा सकता क्योंकि तकनीकी सामग्री तथा आंकड़े, लंबा प्रशासनिक अनुभव एवं विशेषज्ञता जैसे विधान के लिए महत्वपूर्ण संसाधन केवल कार्यपालिका को ही उपलब्ध होते हैं।"[15]

कार्यपालिका द्वारा सूत्रबद्ध विधायी प्रस्तावों, अर्थात विधेयकों, नियमों तथा विनियमों आदि पर संसद केवल विचार करती है, छानबीन करती है और उन पर स्वीकृति की अपनी मुहर लगाकर उन्हे वैध बनाती है। अतः संसद की भूमिका विधि निर्माण की भूमिका न होकर ज्यादा वैधीकरण की है।

एक ओर संसद बहुत-सा ऐसा कार्य करती है जो विधि निर्माण का कार्य नहीं है, संसद

के समय का केवल 1/5वां भाग विधान कार्य पर लगता है, तो दूसरी ओर विधि निर्माण के कार्य में अकेले संसद की भूमिका नहीं निभाती। संसद ऐसे बहुत से निकायों में से एक है जो उस भूमिका में भागीदार हैं। विधि के बारे में आधुनिक विचार यह नहीं है कि यह सामान्य रूप से लागू किए जाने वाले नियमों का समूह है इत्यादि। विधि एक प्रक्रिया है, एक लंबी और जटिल प्रक्रिया, जो प्रारंभिक सामाजिक प्रवृत्तियों से आरंभ होती है, फिर महसूस की जाने वाली पहली आवश्यकता और कार्यवाही ही मांग, फिर नीति निर्माताओं की धारणा और राजनीतिक शक्तियों और विभिन्न हितों वाले ग्रुपों की भूमिका, फिर विधेयक का प्रारूप तैयार करने वाले विधि एवं अन्य विभागों की भूमिका, फिर सत्ताधारी दल, संबद्ध मंत्रिमंडल, संसद के दोनों सदनों और उसकी समितियों और फिर राष्ट्रपति की भूमिका, और फिर नियम तथा विनियम बनाया जाना; फिर प्रशासन द्वारा वास्तविक क्रियान्वयन और विवाद की स्थिति में/ न्यायालयों द्वारा व्याख्या और न्यायिक पुनर्विलोकन। प्रत्येक अवस्था में वास्तव में विधि का निर्माण हो रहा है और उसमें रूपभेद हो रहा है। इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि विधि निर्माण का कार्य व्यक्तियों का कोई एक निकाय या राज्य का कोई अंग करता है, राज्य के तीन अंग, कार्यपालिका, विधानमंडल और न्यायपालिका, मिलकर विधान निर्माण की भूमिका निभाते हैं।[16]

इस अध्याय के अंत में परिशिष्ट 3.1 में दिखाया गया है कि लोक सभा ने विभिन्न प्रकार के कार्यों पर कितना समय (प्रतिशत) खर्च किया।

संविधायी भूमिका (संविधान में संशोधन करना) : संविधान के अनुच्छेद 368 के अधीन, जिसमें संविधान में संशोधन संबंधी विशिष्ट उपबंध किया गया है, संघ की संविधायी शक्ति संसद को प्राप्त है। संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया के कुछ विशेष तत्व हैं जिनसे संसद की एक विधानमंडल के रूप में साधारण भूमिका से उसकी संविधायी क्षमता का स्पष्ट भेद किया गया है। प्रथम, संविधान में संशोधन की शुरुआत "केवल" संसद के किसी एक सदन में विधेयक पेश करके की जा सकती है, क्योंकि संविधान में संशोधन करने की पहल केवल संसद के लिए रक्षित है। दूसरे, अधिकांशतया संसद द्वारा संविधान के उपबंध में संशोधन विशेष बहुमत से किया जा सकता है, अर्थात प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा। केवल सीमित श्रेणी के संवैधानिक उपबंधों के मामले में ही (अर्थात सातवीं अनुसूची की सूचियों, संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व, अनुच्छेद 368 आदि से संबंधित उपबंध) संसद के प्रत्येक सदन द्वारा निर्धारित विशेष बहुमत से संशोधन विधेयक पास किए जाने के पश्चात कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा उनके अनुसमर्थन की आवश्यकता होती है। तीसरे, संविधान संशोधन विधेयक को विधिवत रूप से पास/अनुसमर्थित किए जाने के पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष पेश किए जाने पर उसे उस पर अपनी अनुमति प्रदान करनी पड़ती है और राष्ट्रपति के पास अनुमति रोकने या विधेयक पर पुनर्विचार के लिए उसे सदन को लौटाने का कोई

विकल्प नहीं है, जैसाकि साधारण विधेयकों के मामले में होता है।[17] अंततः, यह महत्व की बात है कि संविधान का ऐसा कोई भी उपबंध नहीं है जिसमें संशोधन न किया जा सके क्योंकि संसद संविधान के किसी भी उपबंध का किसी भी प्रकार का संशोधन, परिवर्तन या निरसन कर सकती है और ऐसे संशोधन को किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती, यदि उससे संविधान के मूल तत्वों में परिवर्तन या उनका हनन नहीं होता।

1950 से 1972 तक की अवधि के दौरान, मूल अधिकारों में संशोधन कर सकने का प्रश्न तीन अलग अलग मामलों में उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया, अर्थात **शंकरी प्रसाद बनाम भारतीय संघ**[18], **सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य**[19] और **गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य**[20] में। **गोलक नाथ के मामले में** उच्चतम न्यायालय का फैसला होने तक, विधि इस प्रकार थी :

(1) संविधान संशोधन अधिनियम साधारण विधि नहीं होता और उसे संसद द्वारा साधारण विधायी शक्तियों के बजाय अपनी संविधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए पास किया जाता है। संविधायी शक्ति "संसद" में ही निहित होने के कारण संविधान में संशोधन के प्रयोजनार्थ कोई पृथक संविधायी निकाय नहीं है।

(2) संशोधन करने की शक्ति पर कोई निर्बंध नहीं है, अर्थात संविधान का कोई ऐसा उपबंध नहीं है जिसमें संशोधन न किया जा सकता हो। अनुच्छेद 368 पूर्णतया सामान्य है और उसके द्वारा संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है और ऐसी शक्ति बिना किसी अपवाद के है।

(3) संविधान (भाग 3) के अधीन जिन मूल अधिकारों की गारंटी दी गई है, वे संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति के अध्यधीन हैं।

गोलक नाथ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने 6 : 5 के बहुमत से अपने पहले के फैसलों को उलट दिया और यह फैसला सुनाया कि सम्मिलित मूल अधिकार अपरिवर्तनीय हैं, कि संविधान के अनुच्छेद 368 में केवल संशोधन करने की प्रक्रिया ही निर्धारित है और उसके द्वारा संविधान में संशोधन करने की कोई मूल शक्ति अथवा साधारण विधायी शक्ति से अलग कोई संविधायी शक्ति संसद को प्रदान नहीं की गई है, कि संविधान संशोधन अधिनियम भी अनुच्छेद 13 के अर्थों में एक विधि है और इस प्रकार संसद अनुच्छेद 368 के अधीन पास किए गए किसी संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा भी मूल अधिकार समाप्त नहीं कर सकती या इनमें कोई कमी नहीं कर सकती।

1973 में, **केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में**[21] उच्चतम न्यायालय ने **गोलक नाथ के मामले में** अपने फैसले का पुनर्विलोकन किया। 13 न्यायाधीशों में से 10 ने यह फैसला दिया कि स्वयं अनुच्छेद 368 में ही संविधान में संशोधन करने की शक्ति अंतर्निष्ट है और अनुच्छेद 13 (2) में "विधि" का अभिप्राय अनुच्छेद 368 के अधीन संवैधानिक संशोधन से नहीं है। तदनुसार **गोलक नाथ के मामले में** घोषित विधि रद्द कर दी गई। इस प्रश्न पर कि क्या अनुच्छेद 368 के अधीन संशोधन शक्ति पूर्ण है और असीम है, सात

न्यायाधीशों ने, जिनका बहुमत था, यह फैसला दिया कि अनुच्छेद 368 के अधीन संशोधन शक्ति एक अंतर्निहित सीमा के अध्यधीन है; ऐसी सीमा जो इसके "संविधान में संशोधन" करने की शक्ति होने के कारण आवश्यक अंतर्निहीत अर्थों द्वारा उत्पन्न हुई। 7 : 6 के बहुमत से न्यायालय ने निर्णय दिया कि "अनुच्छेद 368 से संसद को संविधान के 'मूल ढांचे' को बदलने की शक्ति प्राप्त नहीं होती" परंतु मूल ढांचा क्या है इसकी स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई और यह एक खुला प्रश्न रहा।[22]

केशवानन्द के मामले में इस फैसले के बाद संसद की संशोधन की शक्तियों के "मूल तत्व" की सीमा का प्रभाव कम करने के लिए संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम 1976 द्वारा अनुच्छेद 368 में खंड (4) तथा (5) सम्मिलित कर दिए गए। उपरोक्त खंडों में कहा गया है कि (क) अनुच्छेद 368 (1) के अधीन संविधान की संशोधन शक्ति, जो एक "संविधायी शक्ति" है, की स्पष्ट अथवा अंतनिर्हित कोई सीमाएं नहीं हैं और कि (ख) इसलिए किसी भी संविधान संशोधन अधिनियम का किसी भी आधार पर न्यायिक पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता। परंतु उच्चतम न्यायालय द्वारा खंड (4) तथा (5) को शून्य करार देकर **मिनर्वा मिल्स बनाम भारतीय संघ के मामले में** मूल ढांचे के सिद्धांत के लागू होने की बात की फिर पुष्टि की गई और उसका आधार यह था कि इस संशोधन द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन को पूर्णतया समाप्त किया जा रहा था, जो संविधान का "मूल तत्व" है।

मूल तत्व के सिद्धांत की वर्तमान स्थिति यह है कि जब तक केशवानन्द के मामले के फैसले को उच्चतम न्यायालय की एक अन्य पूर्ण पीठ द्वारा रद्द नहीं कर दिया जाता तब तक संविधान के किसी भी संशोधन में न्यायालय इस आधार पर हस्तक्षेप कर सकता है कि उससे संविधान के एक या दूसरे मूल तत्व पर प्रभाव पड़ता है।

केशवानन्द के मामले में न्यायाधीश सीकरी ने संविधान के मूल तत्वों को इस प्रकार सारणीबद्ध करने का प्रयास किया था :[23]

(1) संविधान की सर्वोच्चता;
(2) गणतंत्रात्मक और लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली;
(3) संविधान का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप;
(4) शक्तियों का पृथक्करण; और
(5) संविधान का संघीय स्वरूप

उसी मामले में, न्यायाधीश हेगड़े और न्यायाधीश मुखर्जी ने भारत की प्रभुसत्ता एवं एकता, हमारी राजनीतिक व्यवस्था के लोकतंत्रात्मक स्वरूप और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को संविधान के मूल ढांचे के तत्वों में जोड़ दिया। उनका विश्वास था कि कल्याणकारी राज्य और समतावादी समाज का निर्माण करने के लिए जनादेश को समाप्त करने की शक्ति संसद को प्राप्त नहीं है।[24] न्यायाधीश खन्ना ने भी कहा कि संसद हमारी लोकतंत्रात्मक सरकार को तानाशाही सरकार में या वंशागत राजतंत्र में नहीं बदल सकती, न ही लोक सभा और राज्य

सभा का उत्सादन करने की अनुमति है। इसी प्रकार राज्य का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप समाप्त नहीं किया जा सकता।[25]

इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण के मामले में न्यायाधीश चन्द्रचूड़ ने निम्न तत्वों को संविधान के मूल ढांचे का मूल तत्व पाया :[26]

(1) प्रभुसत्ता संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के रूप में भारत;
(2) दर्जे और अवसर की समानता;
(3) धर्मनिरपेक्षता और अन्तःकरण की स्वतंत्रता; और
(4) विधि द्वारा शासन

उसी न्यायाधीश ने **मिनर्वा मिल्स के मामले में** "संसद की संशोधी शक्तियों", "न्यायिक पुनर्विलोकन" और "मूल अधिकारों तथा निदेशक सिद्धांतों के बीच संतुलन" को संविधान के मूल तत्वों की सूची में जोड़ दिया।[27]

कुछ मामलों में न्यायाधीशों में मतभेद है कि कोई तत्व विशेष मूल तत्व है या नहीं। उदाहरणार्थ, मुख्य न्यायाधीश राय ने निर्बाध एवं निष्पक्ष निर्वाचन के सिद्धांत को मूल ढांचे का तत्व नहीं माना, जबकि न्यायाधीश खन्ना ने उस मामले में इस सिद्धांत को संविधान का मूल तत्व माना।[28] न्यायाधीश चन्द्रचूड़ इस विचार पर सहमत नहीं हुए कि संविधान की उद्देशिका मूल ढांचे की कुंजी है।[29] दूसरी ओर, न्यायाधीश बेग ने कहा कि न्यायालय संवैधानिक वैधता का परीक्षण मुख्यतया संविधान की उद्देशिका से कर सकता है। उनका विश्वास था कि उद्देशिका एक ऐसा मापदंड है जिसे संवैधानिक संशोधनों पर भी लागू किया जा सकता है।[30]

मध्य प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश के भारतीय जनता पार्टी की तीन सरकारों की बर्खास्तगी के संबंध में एस. आर. बोम्मई के मामले में न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी तथा न्यायमूर्ति रामास्वामी ने दोहराया कि अन्य बातों के साथ साथ संघवाद संविधान का मूल तत्व है। न्यायमूर्ति रामास्वामी ने कहा :

"संविधान की उद्देशिका संविधान का एक अभिन्न अंग है। लोकतांत्रिक स्वरूप की सरकार, संघीय ढांचा, राष्ट्र की एकता तथा अखंडता, धर्म निरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक न्याय और न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान के मूल तत्व हैं।"

यह स्पष्ट है कि अब तक इस बारे में न्यायाधीशों में मतैक्य नहीं रहा है और बहुमत का कोई ऐसा फैसला उपलब्ध नहीं है जिसमें निर्धारित किया गया हो कि संविधान के कौन कौन से तत्वों को "मूल तत्व" माना जाए। न्यायालय द्वारा ऐसा कुछ नहीं किया गया है कि मूल तत्वों की सूची में और तत्व नहीं जोड़े जाएं, जैसाकि विभिन्न मामलों में विभिन्न न्यायाधीशों ने कहा भी है। **इंदिरा गांधी के मामले में** न्यायाधीश चन्द्रचूड़ ने कहा है कि "मूल ढांचे के सिद्धांत पर प्रत्येक मामले के प्रसंग में विचार किया जाना चाहिए; इस पर विचार अमूर्त रूप से नहीं बल्कि ठोस समस्या के प्रसंग में किया जाना चाहिए।[31]

1950 में संविधान के प्रारंभ के पश्चात संविधान में 77 संशोधन किए जा चुके हैं। और ये कुछ संसद की संविधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए और प्रायः न्यायालयों के फैसलों

और उनकी संवैधानिक उपबंधों की व्याख्याओं के परिणामस्वरूप पैदा हुई अप्रत्याशित कठिनाइयों और स्थितियों का सामना करने के लिए किया गया है। कभी कभी संविधान के विशेष उपबंधों के पीछे संविधान के निर्माताओं के आशय को स्पष्ट करने के लिए और संविधान के पाठ को स्वीकृति राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के निकट लाने के लिए उसमें संशोधन करना आवश्यक हो जाता है।

नेतृत्व (भर्ती और प्रशिक्षण) : संसद का अंतिम और महत्वपूर्ण कृत्य है कि वह प्रतिभा के राष्ट्रीय रक्षित भंडार के रूप में कार्य करती है जहां से कि राजनीतिक नेता उभरते हैं। संसद एक ऐसा मंच है जहां मंत्रीगण कार्य क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और प्रशिक्षण पाते हैं। दोनों सदनों में और उनकी समितियों में सदस्यों के कार्य निष्पादन को देखकर प्रधानमंत्री को अधिकतम योग्यता रखने वालों का चयन करने में सहायता मिलती है। विभिन्न संसदीय समितियों में काम करते हुए सदस्यगण विशिष्ट क्षेत्रों में काफी जानकारी और विशेषज्ञता प्राप्त कर लेते हैं और वे आमतौर पर योग्य मंत्री सिद्ध होते हैं।

संदर्भ

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75, 114-116 तथा 265
2. देखिए अंतर्संसदीय संघ (संपा.), **पार्लियामेंट आफ द वर्ल्ड**, लंदन, 1976, पृ. 801-802 और 825-827
3. लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम, नियम 198
4. नियम 56
5. अनु. 114-116 और 265
6. सुभाष काश्यप, "कमेटीज इन द इंडियन लोक सभा" इन जॉन डी. लीज़ और मालकम शॉ. **कमेटीज इन लेजिस्लेचर्स**, ड्यूक, यूनिवर्सिटी प्रेस, दरहम, 1979, पृ. 291
7. एम.एन. कौल, **पार्लियामेंटरी इंस्टीच्यूशंज एंड प्रोसीज्योर्ज**, नेशनल, नयी दिल्ली, 1978, पृ. 14
8. एस.एल. शकधर, **ग्लिम्पसिज आफ द वर्किंग आफ पार्लियामेंट**, मेट्रोपोलिटन, नयी दिल्ली, 1977, पृ. 160-184
9. सुभाष काश्यप, इन्फारमेशन मेनेजमेंट फार पार्लियामेंटेरियंस, **मंथली पब्लिक ओपीनियन सर्वेज**, 18, 6, 1973; और मींस आफ इन्फारमेशन एट द डिस्पोजल आफ द एम. पी. पर उनकी रिपोर्ट **इन द मेंबर आफ पार्लियामेंटः हिज रिक्वायरमेंट्स फार इन्फारमेशन इन द माडर्न वर्ल्ड**, खंड 1 और 2 अंतर्संसदीय संघ, जेनेवा 1973 (अंतर्राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी के शोध-पत्र और कार्यवाही वृत्तांत)
10. शकधर, **ग्लिम्पसिज**, ऊपर उद्धृत, पृ. 186-187
11. काश्यप, इन्फारमेशन मनेजमेंट, ऊपर उद्धृत
12. काश्यप, **कमेटीज**, ऊपर उद्धृत, पृ. 296
13. अनु. 245-246 और सातवीं अनुसूची
14. सुभाष काश्यप, **ह्यूमन राईट्स एंड पार्लियामेंट**, मेट्रोपोलिटन, नयी दिल्ली, 1978, अध्याय 9, "संसद और सामाजिक-आर्थिक विधान", पृ. 124-133
15. सुभाष काश्यप, अंतर्संसदीय संघ में (सम्प.), **हू लेजिस्लेट्स इन द माडर्न वर्ल्ड**, जेनेवा, 1976, पृ. 68

16. वही, पृ. 65-69
17. काश्यप, **ह्यूमन राईट्स**, ऊपर उद्धृत, अध्याय 10, संसद की संविधायी शक्ति और न्यायिक पुनर्विलोकन, पृ. 134-143
18. ए.आई.आर. 1951, उच्चतम न्यायालय, 458
19. ए.आई.आर. 1965, उच्चतम न्यायालय, 845
20. ए. आई. आर. 1967, उच्चतम न्यायालय, 1643
21. ए. आई. आर. 1973, उच्चतम न्यायालय, 1461
22. सुभाष काश्यप, पार्लियामेंट एंड रीसेंट कांस्टीट्यूशनल डवेलपमेंट्स इन इंडिया, **द टेबल**, (लंदन), खंड 24, 1976, पृ. 15-18
23. केशवानन्द बनाम केरल राज्य, ए. आई. आर. 1973, न्यायालय, 1461, पैरा 302
24. वही, पैरा 682
25. वही, पैरा 1437
26. इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण, ए. आई. आर. 1975, उच्चतम न्यायालय, 2299, पैरा 665
27. मिनर्वा मिल्स लि. बनाम भारतीय संघ, ए. आई. आर. 1980, उच्चतम न्यायालय, 1789
28. इंदिरा गांधी का मामला, ऊपर उद्धृत, पैरा 55 और 213
29. वही, पैरा 665
30. वही, पैरा 623
31. वही, पैरा 2465

परिशिष्ट 3.1

लोक सभा में प्रक्रिया संबंधी विभिन्न युक्तियों पर खर्च किया गया समय (कुल का प्रतिशत)

लोक सभा	I	II	IIII	IV	V	VI	VII	VIII	IX
प्रक्रिया संबंधी विभिन्न युक्तियां									
कुल समयावधि (घंटे)	3784	3651	3733	3029	4071	1753	3224	3324	754
कुल का प्रतिशत									
1. विधायी कार्य	48.80	28.20	23.00	22.08	27.55	23.51	23.99	25.00	16.23
2. बजट	18.50	20.90	25.00	19.30	21.64	23.26	30.84	21.74	16.00
3. प्रश्न	14.60	15.10	15.10	15.94	12.81	13.70	12.20	12.60	10.14
4. संकल्प	6.30	5.50	5.90	6.45	5.17	3.72	3.96	5.47	5.77
5. प्रस्ताव	7.00	13.70	13.20	9.22	6.55	10.71	6.35	3.66	4.34
6. अन्य चर्चाएं नियम 193 के अधीन (अल्पावधि चर्चा) तथा नियम 55 के अधीन (आधे घंटे की चर्चा) आदि	4.80	16.60	17.80	27.01	25.48	25.10	32.66	31.33	47.52

4

निर्वाचन प्रणाली

प्रतिनिधि संसदीय लोकतंत्र में जन प्रतिनिधियों के निर्वाचन की और इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त तंत्र की आवश्यकता होती है। संविधान में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के लिए उपबंध किया गया है। ऐसे प्रत्येक नागरिक को मतदान करने का पूरा अधिकार है जिसने 18 वर्ष या इससेअधिक की आयु प्राप्त कर ली हो, चाहे उसका धर्म, लिंग या जन्म स्थान कोई भी हो। सबसे महत्व की बात यह है कि निर्वाचन निर्बाध एवं निष्पक्ष हों और ऐसे प्रतीत भी हों। इसीलिए ये एक स्वतंत्र प्राधिकरण के अधीक्षण और निदेश के अधीन कराए जाते हैं। और यह प्राधिकरण निर्वाचन आयोग कहलाता है। भारत जैसे विशाल आकार वाले (लगभग 33 लाख वर्ग किलोमीटर), भारी जनसंख्या वाले (लगभग 90 करोड़) और इतने अधिक मतदाताओं वाले (लगभग 55 करोड़) देश में निर्वाचन कराना एक बहुत बड़ा काम है।[1] संसद के दोनों सदनों के लिए और राज्यों के विधानमंडलों के लिए निर्वाचनों के अतिरिक्त, निर्वाचन आयोग भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के उच्च पदों के लिए भी निर्वाचन करता है।

निर्वाचन आयोग

निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त और ऐसे अन्य निर्वाचन आयुक्तों से बनता है जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाएं। अक्तूबर,1993 में एक अध्यादेश के द्वारा दो निर्वाचन आयुक्त नियुक्त किये गये थे, जिन्हें वही स्थिति तथा हैसियत प्रदान की गई थी, जो मुख्य निर्वाचन आयुक्त को प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त, आयोग से अपेक्षा की गई थी कि वह एक निकाय के रूप में कार्य करे तथा जो भी निर्णय ले सर्वसम्मति से ले या यदि ऐसा न हो पाए तो बहुमत के आधार पर ले। इस अध्यादेश को बाद में जिसका स्थान अधिनियम ने ले लिया था, मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा चुनौती दी गई। किंतु उच्चतम न्यायालय ने कानून की मर्यादा बनाये रखी है।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त के कर्तव्यों के महत्व को देखते हुए ऐसे विशिष्ट व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त किया जाता है जिसे पर्याप्त प्रशासनिक अनुभव हो, विधि का ज्ञान हो और जिसे समाज में भी उच्च स्थान प्राप्त हो। आयोग के सदस्यों की सेवा की शर्तों में और पदावधि में उनकी नियुक्ति के पश्चात उनके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किए जा सकते।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की तरह प्रक्रिया द्वारा ही हटाया जा सकता है, अन्यथा नहीं। अन्य निर्वाचन आयुक्तों को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के बिना उसके पद से नहीं हटाया जा सकता। केंद्रीय तथा राज्य सरकारों को आयोग को उतने अधिकारी और कर्मचारीवृंद उपलब्ध कराने होते हैं जितने उसके कर्तव्यों तथा दायित्वों के उचित निर्वहन के लिए आवश्यक हों और निर्वाचन संबंधी कृत्यों का निर्वहन करते हुए ऐसे सब अधिकारी तथा कर्मचारीवृंद निर्वाचन आयोग के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी होते हैं।[2]

प्रत्येक राज्य के लिए एक मुख्य निर्वाचन अधिकारी होता है जिसे निर्वाचन आयोग द्वारा निर्वाचक-नामावलियां तैयार करने, उनका पुनरीक्षण करने और उनमें शुद्धियां करने के काम के अधीक्षण के लिए और राज्य में सभी निर्वाचनों का संचालन करने के लिए मनोनीत किया जाता है। इसी प्रकार जिले के लिए एक जिला निर्वाचन अधिकारी होता है जो मुख्य निर्वाचन अधिकारी के निर्देश के अधीन अपने जिले में निर्वाचनों से संबंधित सारे कार्य का समन्वय तथा अधीक्षण करता है।[3] आमतौर पर जिला कलेक्टरों या उपायुक्तों को जिला निर्वाचन अधिकारी नामजद किया जाता है। वे मतदान केंद्रों के लिए प्रेजाइडिंग अधिकारी तथा मतदान अधिकारी नियुक्त करते हैं। प्रेजाइडिंग अधिकारी निर्वाचन के दिन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मतदान केंद्र पर उसका सामान्य कर्तव्य वहां व्यवस्था बनाए रखना और यह देखना होता है कि मतदान निर्बाध और निष्पक्ष हों।[4] मतदान केंद्र पर मतदान अधिकारी का यह कर्तव्य होता है कि वह प्रेजाइडिंग अधिकारी की उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करे।[5]

निर्वाचन आयोग, राज्य सरकार के परामर्श से, प्रत्येक संसदीय तथा विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिए और राज्य सभा में किसी स्थान या किन्हीं स्थानों को भरने के लिए एक रिटर्निंग अधिकारी नियुक्त करता है। रिटर्निंग अधिकारी को ऐसे सब कार्य करने का अधिकार प्राप्त है जो निर्वाचन विधियों के अनुसार निर्वाचन कराने के लिए आवश्यक हों।[6]

सदस्यों का निर्वाचन

लोक सभा के लिए सामान्य निर्वाचन उसकी कार्यावधि समाप्त होने वाली हो या उसके भंग किए जाने पर कराए जाते हैं।[7]

संविधान के अधीन संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचनों के संबंध में, निर्वाचन नामावलियां तैयार करने, निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करने और ऐसे सदन या सदनों के सम्यक गठन के लिए अन्य सभी आवश्यक विषयों हेतु विधान बना सकती है।[8] लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 इस उपबंध के अनुसरण में अधिनियमित सबसे अधिक महत्वपूर्ण विधान हैं। निर्वाचनों का रजिस्ट्रीकरण नियम, 1960 और निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 उन विधानों के उपबंधों के पूरक हैं। नयी उत्पन्न होने वाली स्थितियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिनियमों और नियमों में समय समय पर संशोधन किया जाता है और उन्हें अद्यतन बनाया जाता है।

सदस्यता के लिए अर्हताएं और अनर्हताएं

कोई व्यक्ति संसद का सदस्य बनने के लिए अर्ह तभी होता है जब—

(क) वह भारत का नागरिक हो;

(ख) वह राज्य सभा के स्थान के लिए कम से कम 30 वर्ष की आयु का और लोक सभा के स्थान के लिए कम से कम 25 वर्ष का हो; और

(ग) वह भारत के किसी संसदीय निर्वाचन क्षेत्र के लिए निर्वाचक हो, परंतु राज्य सभा के मामले में जिस राज्य से या संघ-राज्य क्षेत्र से वह चुना जाना हो उसमें निर्वाचक के रूप में पंजीकृत हो।

इसके अतिरिक्त, अन्य अर्हताएं संसद, विधि द्वारा, निर्धारित कर सकेगी।[9]

सदस्य बनने के लिए कुछ अनर्हताएं भी हैं। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति संसद के किसी भी सदन का सदस्य बनने के लिए अनर्ह होगा यदि—

(क) वह सरकार के अधीन ऐसे पद को छोड़कर जिसको धारण करने वाले का अनर्ह न होना संसद ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है;

(ख) वह विकृतचित्त हो;

(ग) वह अनुन्मोचित दिवालिया हो;

(घ) वह भारत का नागरिक न हो;

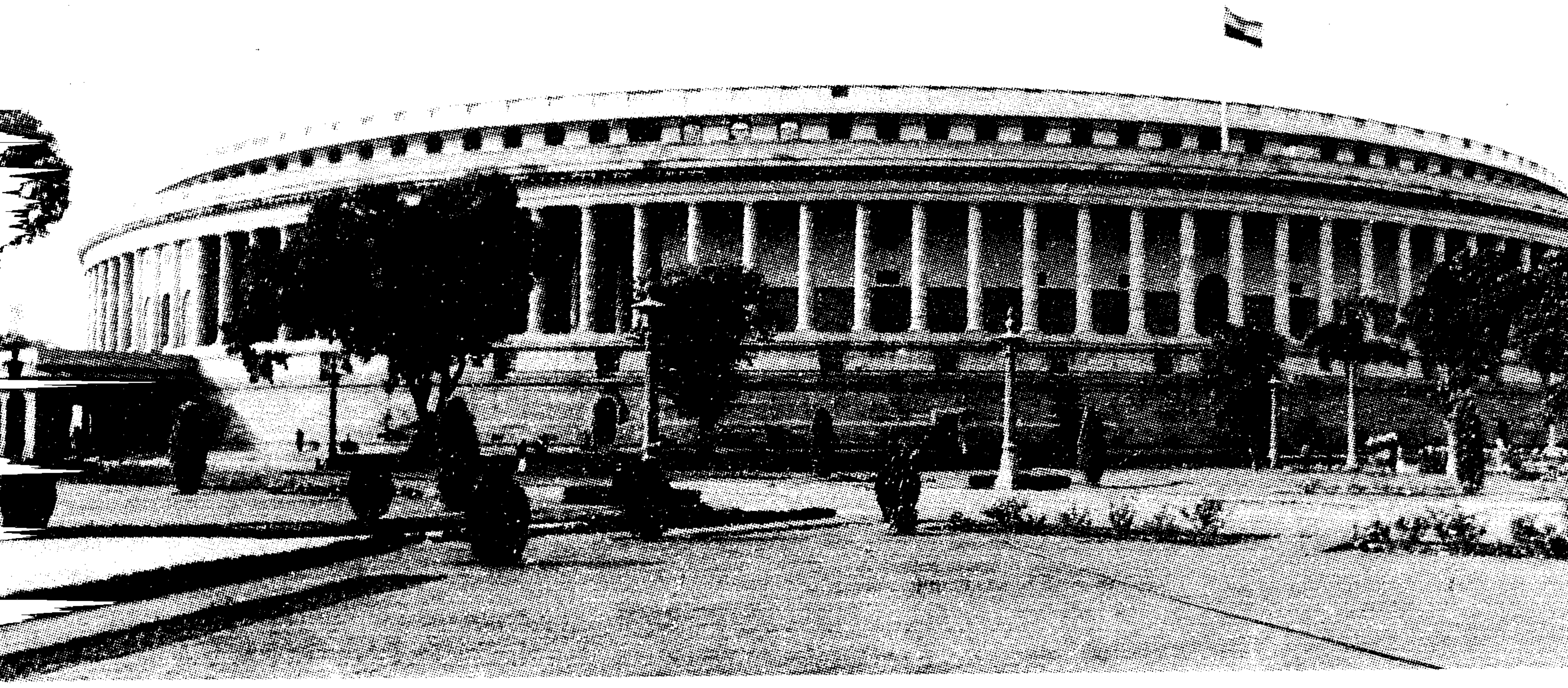
(ङ) वह संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा अनर्ह कर दिया गया हो;

(च) वह दल बदलने के आधार पर अनर्ह करार दिया गया हो।[10]

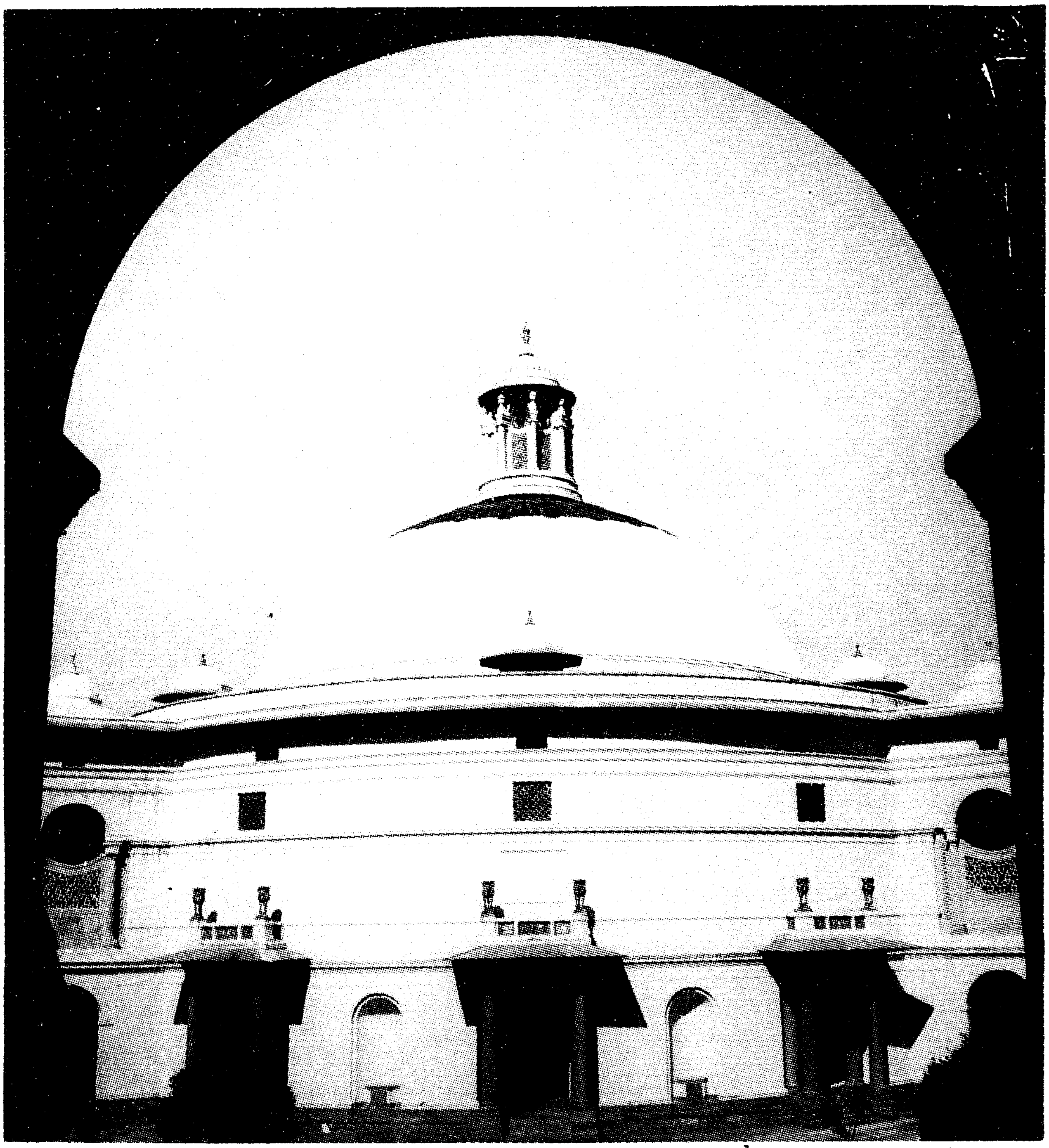
मंत्री का पद लाभ का पद नहीं माना जाता।[11] उपरोक्त अपेक्षाओं के अतिरिक्त, निर्वाचन विधियों में कुछ अन्य अनर्हताएं भी निर्धारित की गई हैं। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन यदि कोई व्यक्ति अन्य बातों के साथ साथ विभिन्न संप्रदायों के बीच शत्रुता को बढ़ावा देने के लिए कारण दोषसिद्ध किया गया हो या घूस के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया हो, या अस्पृश्यता का प्रचार करने और उसका पालन करने के कारण दंडित किया गया हो तो वह सदस्य के रूप में चुने जाने से अनर्ह होता है। इसके अतिरिक्त, किसी अपराध के कारण दोषसिद्ध किया गया कोई व्यक्ति जिसे कम से कम दो वर्षों के लिए कारावास का दंड दिया गया हो, वह व्यक्ति अपनी रिहाई के पश्चात पांच वर्षों की अवधि के लिए अनर्ह रहता है। भ्रष्टाचार या राज्य के प्रति गैर वफादारी के लिए बर्खास्त किया गया सरकारी कर्मचारी अपनी बर्खास्तगी की तिथि से पांच वर्षों की अवधि के लिए अनर्ह रहता है।

निर्वाचन रीति

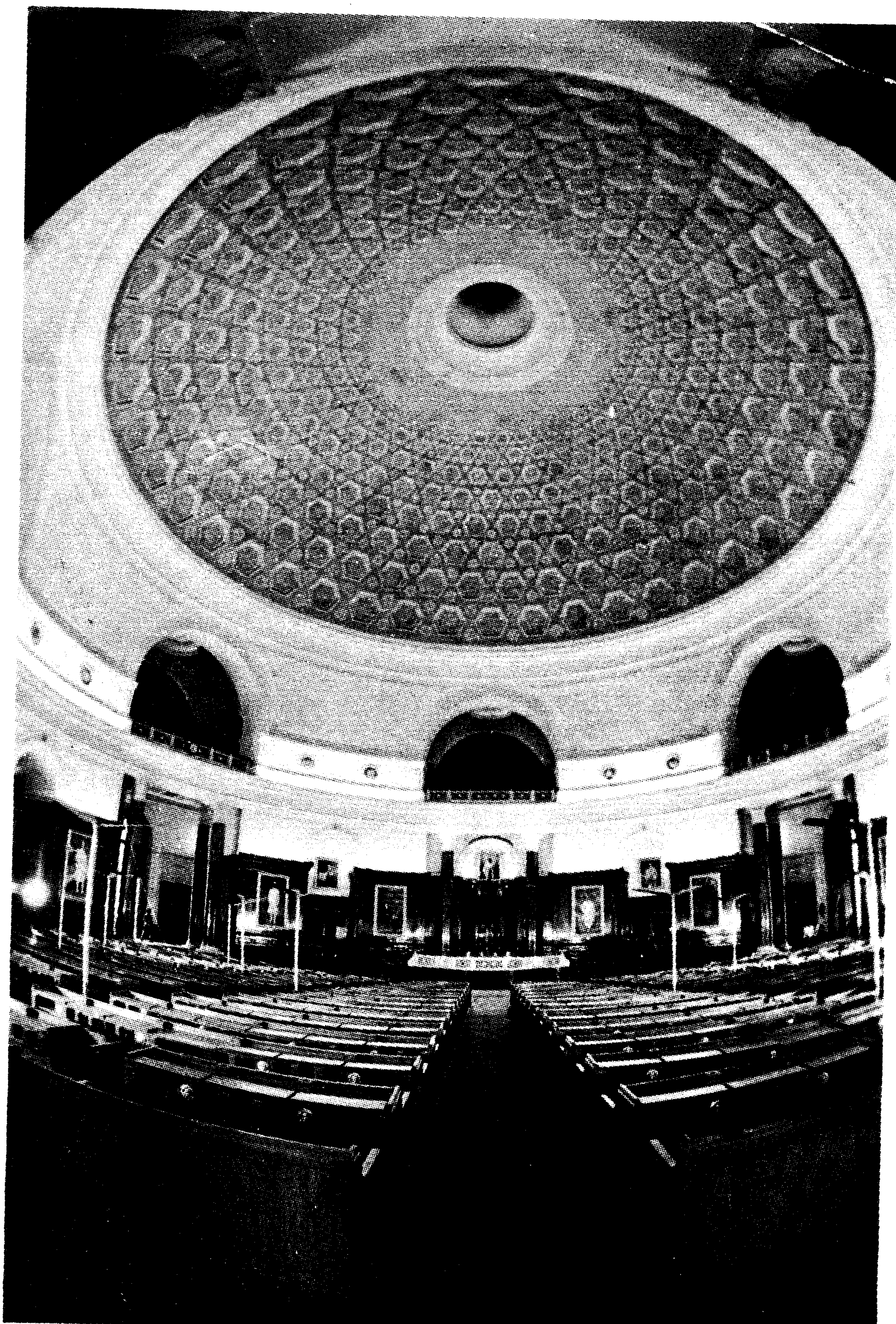
राज्य सभा : राज्य सभा के सदस्य राज्यों तथा संघ-राज्य क्षेत्रों के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे किसी राज्य के मामले में उस राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं और संघ-राज्य क्षेत्र के मामले में एक निर्वाचक मंडल द्वारा। उनका निर्वाचन अप्रत्यक्ष



संसद भवन का एक दृश्य



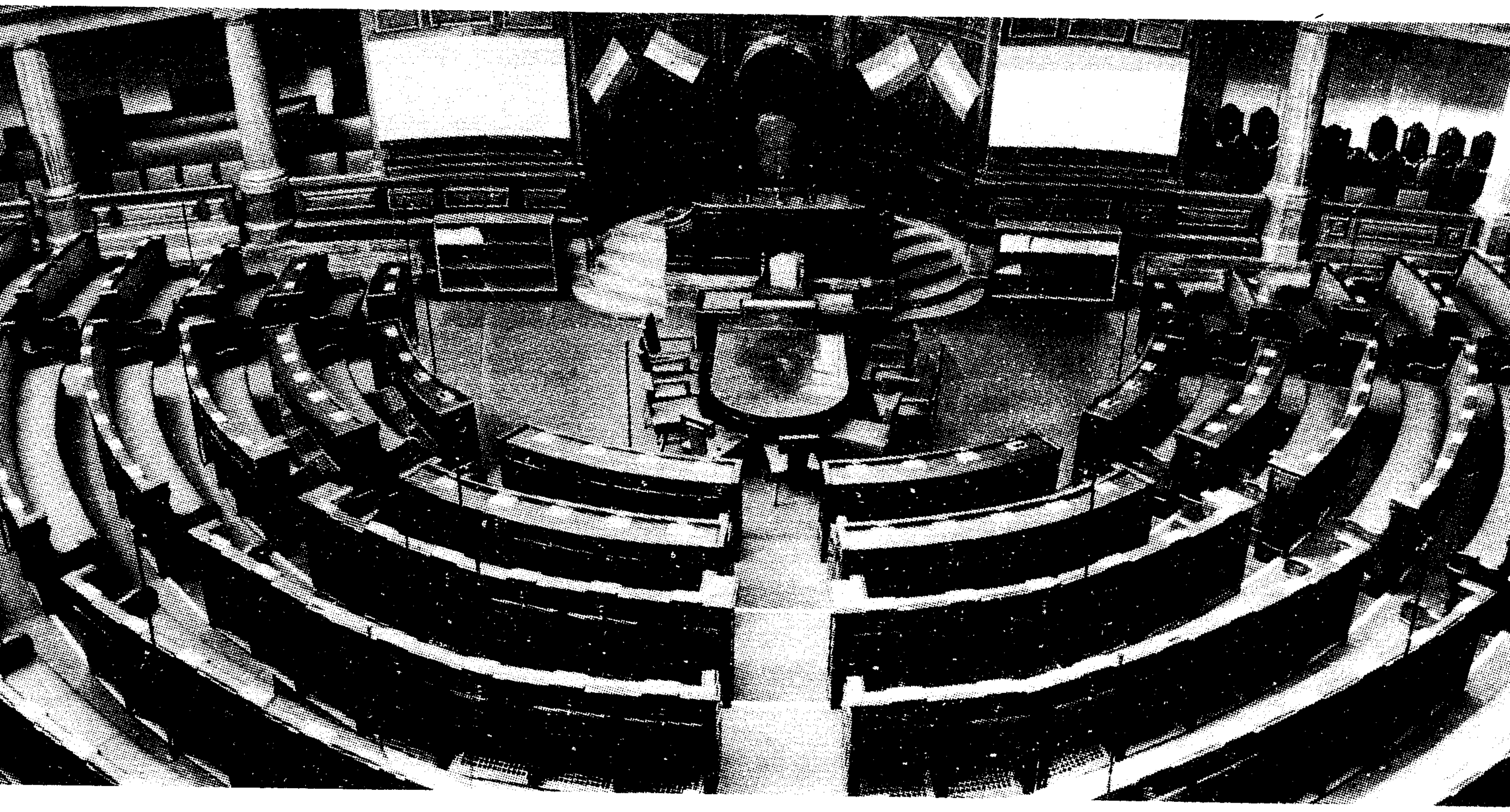
केन्द्रीय कक्ष का आंतरिक दृश्य



केन्द्रीय कक्ष का आंतरिक गुम्बद   एक झांकी



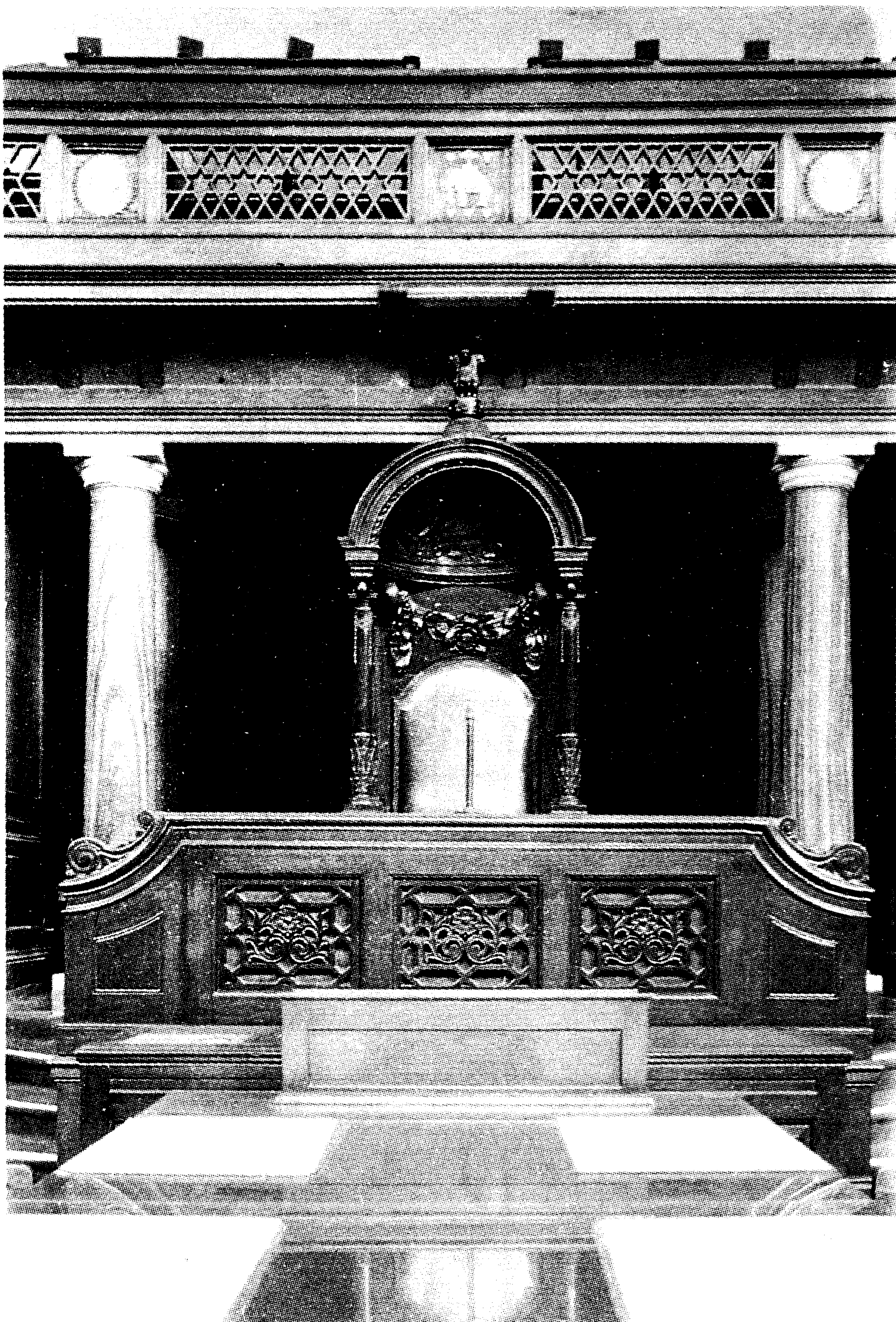
दिनांक 22.2.1988 को संसद में उभय सदनों को संबोधित करने के लिए आते हुए राष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरमन



राज्य सभा सदन का एक दृश्य



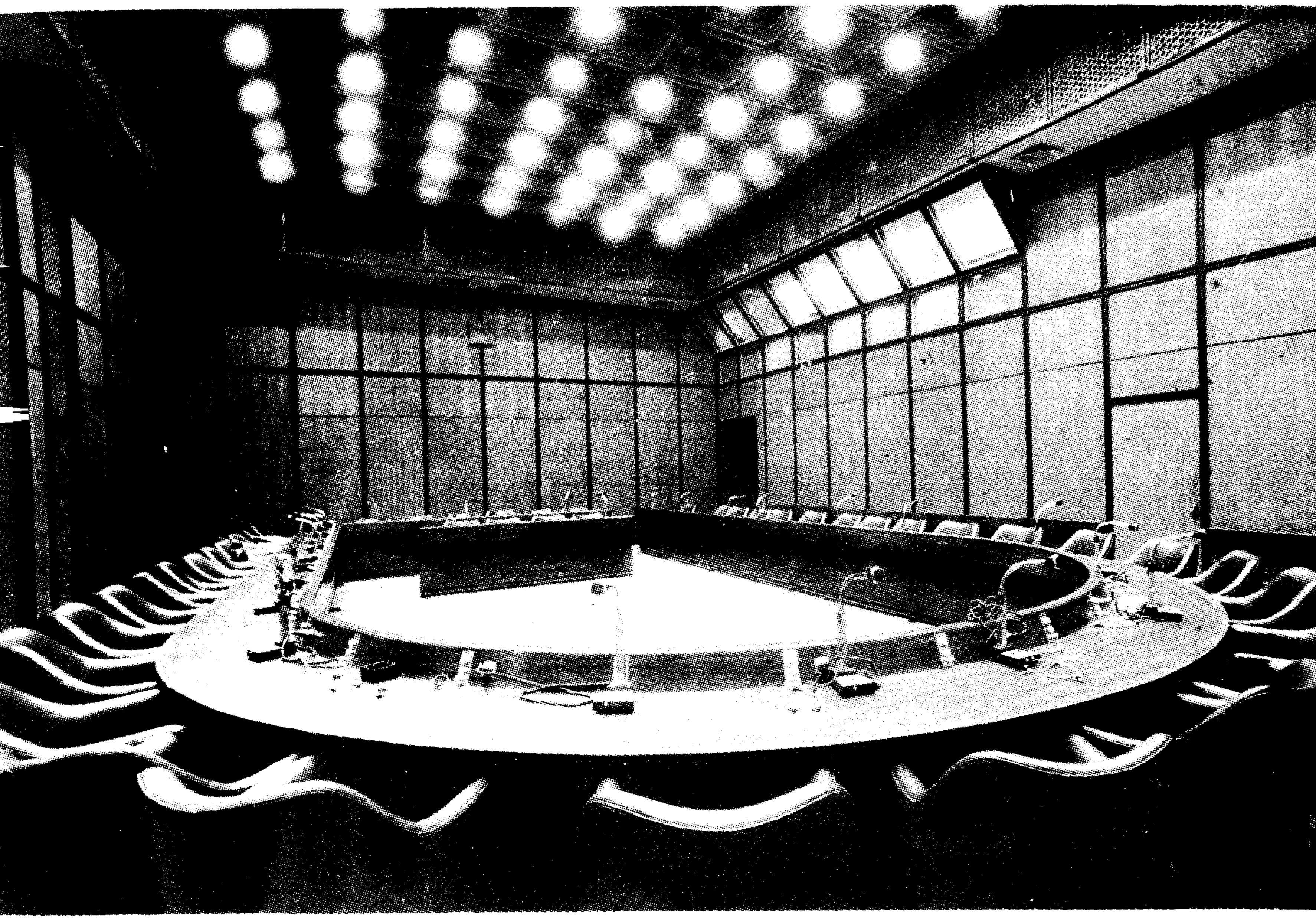
लोक सभा सदन की एक झलक



लोक सभा में अध्यक्ष की पीठ



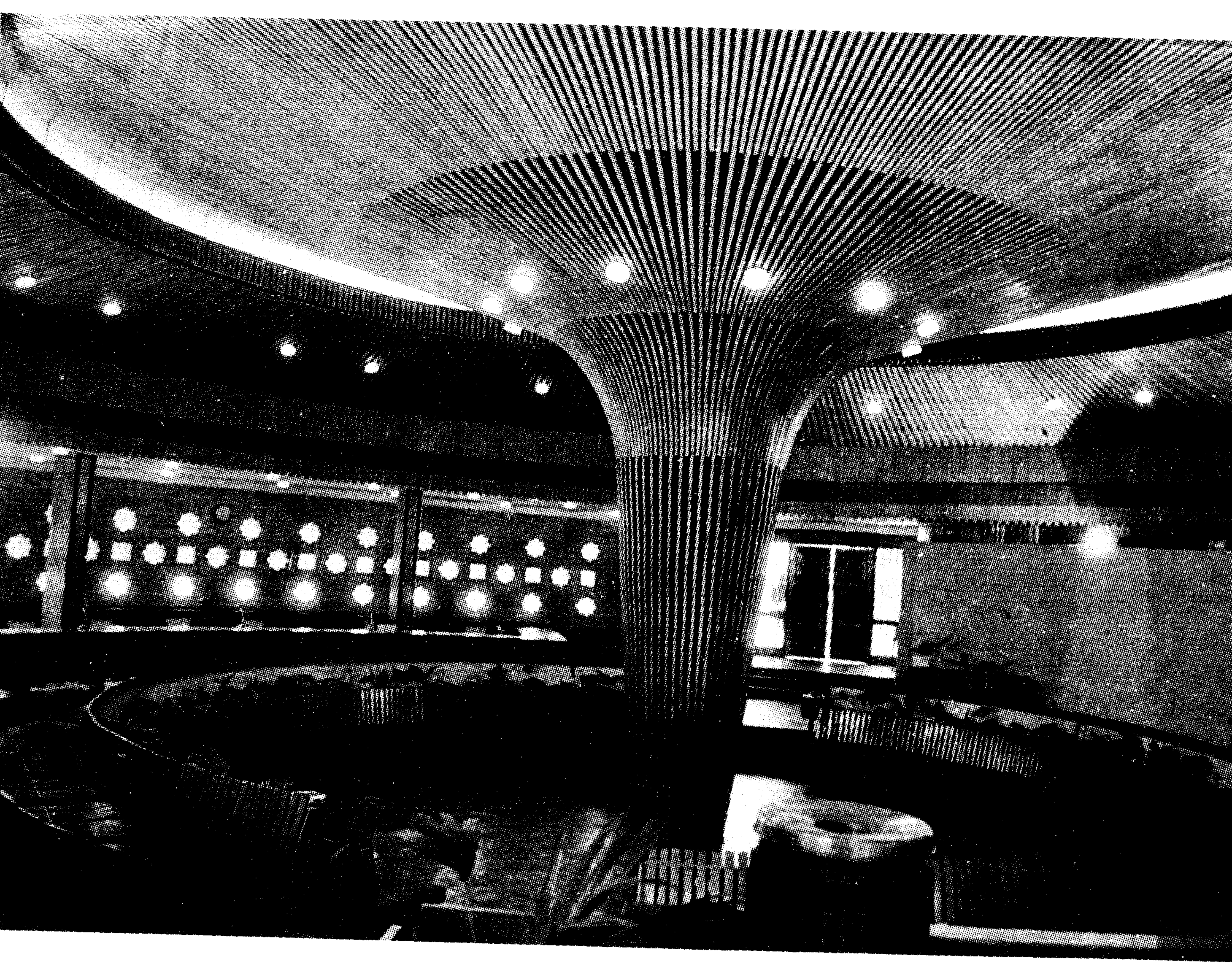
लोक सभा दीर्घा के रास्ते में लगी जालियों का एक दृश्य



समिति के कक्षों में से एक कक्ष का दृश्य



संसद भवन एनेक्सी का मुख्य समिति कक्ष



संसद भवन का आंतरिक दृश्य (स्वागत कार्यालय)

निर्वाचन प्रणाली के द्वारा और आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है। इसका उद्देश्य अल्पसंख्यक समुदायों तथा दलों के लिए प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करना है।[12]

राज्य सभा में स्थान भरने के प्रयोजन के लिए, राष्ट्रपति, निर्वाचन आयोग द्वारा सुझायी गई तारीख को, अधिसूचना जारी करके, निर्वाचकों से राज्य सभा के सदस्यों को चुनने के लिए कहता है। जिस तिथि को सेवानिवृत्त होने वाले सदस्यों की पदावधि समाप्त होनी हो उससे तीन मास से अधिक समय से पूर्व ऐसी अधिसूचना जारी नहीं की जाती।[13] रिटर्निंग अधिकारी, निर्वाचन आयोग के अनुमोदन से मतदान का स्थान निर्धारित और अधिसूचित करता है।

लोक सभा : नयी लोक सभा के लिए निर्वाचन के प्रयोजन से, राष्ट्रपति, राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा, निर्वाचन आयोग द्वारा सुझाई गई तिथि को, सब संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों से कहता है कि वे लोक सभा के लिए सदस्य निर्वाचित करें। अधिसूचना जारी किए जाने के पश्चात निर्वाचन आयोग नामांकनपत्र दायर करने, उनकी छानबीन करने, उन्हें वापस लेने और मतदान के लिए तिथियां निर्धारित करता है।[14] निर्वाचन के लिए प्रत्येक उम्मीदवार को 500 रुपए, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य होने की स्थिति में 250 रुपए उसके नामांकन के विधिमान्यकरण के लिए जमा कराने पड़ते हैं। यदि वह उम्मीदवार अपने निर्वाचित-क्षेत्र में न्यूनतम निर्धारित प्रतिशत मत प्राप्त करने में असफल रहता है तो वह राशि जब्त कर ली जाती है।[15] निर्वाचन के लिए उम्मीदवार व्यक्ति को संविधान की तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुसार संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा की शपथ लेनी होती है या प्रतिज्ञान करना होता है। रिटर्निंग अधिकारी, नामांकन पत्र की वैधता की जांच करने के पश्चात वैध रूप से नामांकित उम्मीदवारों की एक सूची प्रकाशित करता है।

लोक सभा के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन होने के कारण भारत के राज्य क्षेत्र को उपयुक्त प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित करना आवश्यक है। इस प्रकार प्रत्येक राज्य को ऐसी रीति से विभिन्न संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों में बांटा जाता है कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या और उसके लिए आवंटित स्थानों की संख्या का अनुपात, जहां तक व्यवहार्य हो, सारे राज्य में बराबर हो। प्रत्येक संसदीय निर्वाचन क्षेत्र एक सदस्य का निर्वाचन क्षेत्र होता है।[16]

मतदान पूरा हो जाने के पश्चात मतों की गणना ऐसी तिथि को और ऐसे समय पर होती है, जो रिटर्निंग अधिकारी निर्धारित करे। वही परिणाम की घोषणा करता है और निर्वाचन आयोग को और संबद्ध सदन के महासचिव को उसकी सूचना देता है।

यदि यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि क्या संसद के किसी सदन का कोई सदस्य संविधान में वर्णित किसी अनर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं तो इस बारे में राष्ट्रपति का फैसला अंतिम होगा। परंतु ऐसे किसी प्रश्न पर फैसला करने से पूर्व उसे इस बारे में निर्वाचन आयोग की राय प्राप्त करनी होती है।[17]

स्थान रिक्त हो जाना

यदि एक सदन का कोई सदस्य दूसरे सदन के लिए भी निर्वाचित हो जाता है तो पहले सदन में उसका स्थान उस तिथि से रिक्त हो जाता है जब वह अन्य सदन के लिए निर्वाचित हुआ हो।[18] इसी प्रकार, यदि वह किसी राज्य विधानमंडल के सदस्य के रूप में भी चुन लिया जाता है तो, यदि वह राज्य विधानमंडल में अपने स्थान से, राज्य के राजपत्र में घोषणा के प्रकाशन से 14 दिनों के भीतर, त्यागपत्र नहीं दे देता तो, संसद का सदस्य नहीं रहता। कोई सदस्य राज्य सभा के सभापति को या लोक सभा के अध्यक्ष को, जैसी भी स्थिति हो, त्यागपत्र देकर अपना स्थान रिक्त कर सकता है। यदि कोई सदस्य, सदन की अनुमति के बिना 60 दिन की अवधि तक सदन की किसी भी बैठक में उपस्थित नहीं होता तो वह सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है।[19] इसके अतिरिक्त, किसी सदस्य को सदन में अपना स्थान रिक्त करना पड़ता है यदि (1) वह लाभ का कोई पद धारण करता है; (2) उसे विकृत चित्त वाला व्यक्ति घोषित कर दिया जाता है या अनुन्मोचित दिवालिया घोषित कर दिया जाता है; (3) वह स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर लेता है; (4) उसका निर्वाचन न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कर दिया जाता है; (5) वह सदन द्वारा निष्कासन का प्रस्ताव स्वीकृत किए जाने पर निष्कासित कर दिया जाता है; या (6) वह राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल चुन लिया जाता है।[20]

यदि किसी सदस्य को संविधान की दशम अनुसूची के उपबंधों के अंतर्गत दल-बदल के आधार पर अनर्ह कर दिया गया हो, तो उस स्थिति में भी उसकी सदस्यता समाप्त हो सकती है।

निर्वाचन संबंधी विवाद

निर्वाचनों से विवाद भी उत्पन्न हो जाते हैं। यह उपबंध किया गया है कि संसद के या किसी राज्य विधानमंडल के किसी सदन के लिए हुए किसी निर्वाचन को चुनौती उच्च न्यायालय में पेश की जाने वाली निर्वाचन याचिका के द्वारा ही दी जा सकती है।[22] ऐसी याचिका निर्वाचन में किसी उम्मीदवार द्वारा, या किसी मतदाता द्वारा, पेश की जा सकती है। याचिका ऐसे स्थान भरने के लिए या निर्वाचन के दौरान कोई भ्रष्ट प्रक्रिया अपनाने के कारण जिस पर विधि द्वारा रोक हो, अनर्हता के आधार पर पेश की जा सकती है। यदि सिद्ध हो जाए तो उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह उपरोक्त किसी एक आधार पर सफल उम्मीदवार का निर्वाचन शून्य घोषित कर दे।[23]

यदि किसी याचिका में, याचिकादाता द्वारा इस बात का दावा किया जाता है कि वैध मतों में से अधिकांश मत उसे मिले थे और यदि सफल उम्मीदवार ऐसी भ्रष्ट प्रक्रियाएं न अपनाता जो उसने अपनाईं तो वह निर्वाचन जीत नहीं सकता था तो यदि न्यायालय का समाधान हो जाए तो वह निर्वाचित उम्मीदवार का निर्वाचन शून्य घोषित कर सकता है और याचिकादाता को विधिवत निर्वाचित घोषित कर सकता है।[24]

प्रभावित पक्ष को उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार है।

निर्वाचन सुधार

हाल के वर्षों के दौरान निर्वाचन प्रक्रियाओं में धन, लठैत और माफिया शक्ति के प्रभाव के बारे में व्यापक चिंता व्यक्त की गई है। प्राप्त समाचारों के अनुसार 1991 का दसवां सामान्य निर्वाचन विशेष रूप से क्रूर तथा हिंसापूर्ण था और इस दौरान सभी तरह के अपराध तथा दंगे हुए, हत्याएं हुईं और मार-काट हुई। प्रधानमंत्री ने स्वयं "राजनीति के अपराधीकरण तथा अपराधियों के राजनीतिकरण" की वर्तमान प्रवृत्ति की निंदा की है। चुनावों की वीडियो तथा अन्य मीडिया कवरेज और बूथों पर कब्जा करने, मतदान में हेराफेरी करने, जाली मतदान करने, किसी अन्य व्यक्ति का रूप लेकर मतदान करने, धार्मिक तथा जातीय पहचानों का दुरुपयोग करने और विभिन्न अन्य भ्रष्ट आचरणों के प्रकरणों ने निर्वाचन सुधारों की आवश्यकता को अनिवार्य बना दिया है। समय समय पर निर्वाचन आयोग, शिक्षाविदों, आयोगों और समितियों द्वारा विभिन्न सुझाव दिये गये हैं। इनमें से नवीनतम सुझाव गोस्वामी समिति की रिपोर्ट में दिए गए हैं। पिछले कुछ समय से निर्वाचन आयोग निर्वाचन प्रक्रिया को स्वच्छ तथा सुप्रवाही बनाने के विचार से आचार संहिता, विभिन्न नियमों आदि को लागू करने का प्रयास कर रहा है। सरकार भी इस प्रयोजन के लिए एक व्यापक कानून लाने के बारे में विचार करती रही है किंतु सारी की सारी कसरत राजनीतिक विवादों तथा दलगत मतभेदों में उलझकर रह गई है।

संदर्भ

1. अनु. 324 (1), 325 और 326
2. अनु. 324
3. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950, धारा 13 क और 13 कक
4. वही, धारा 27
5. वही, धारा 28
6. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 21 और 24
7. अनु. 326, *देखिए* लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 16
8. अनु. 327
9. अनु. 84 और प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 3 और 4
10. दसवीं अनुसूची और अनु. 102 (2) और 191 (2)
11. अनु. 102
12. अनु. 80 (4) (5) और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 27 क और 27 ख
13. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 12

14. वही, धारा 14
15. वही, धारा 34 और 158
16. अनु. 81 (2) और (3) और 82
17. अनु. 103
18. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 69
19. अनु. 101 (3) और (4)
20. अनु. 59(1), 66(1), 102(1), 158(1) और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 100(1)
21. संविधान (52वां) संशोधन अधिनियम, 1985 और लोक सभा (दल-बदल के आधार पर अनर्हता) नियम, 1985
22. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 80 और 80 क
23. वही, धारा 100
24. वही, धारा 101

5

अधिवेशन और बैठकें

संसद के दो सदन हैं, राज्य सभा और लोक सभा। इनमें से राज्य सभा स्थायी सदन है जिसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष की अवधि के पश्चात सेवानिवृत्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित किए जाते हैं। लोक सभा प्रत्येक आम चुनाव के बाद निर्वाचन आयोग द्वारा अधिसूचना जारी किए जाने पर गठित होती है।[1] लोक सभा की प्रथम बैठक तब होती है जब इसके नव निर्वाचित सदस्य "भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखने के लिए", "भारत की प्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखने के लिए" और "संसद सदस्य के कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करने के लिए" निर्धारित शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के प्रयोजन से प्रथम बार समवेत होते हैं। संसद के प्रत्येक सदस्य के लिए यह आवश्यक है कि वह "अपना स्थान ग्रहण करने से पहले" उक्त शपथ ले या प्रतिज्ञान करे।[2] जब तक वह शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के पश्चात सदन में अपना स्थान ग्रहण नहीं कर लेता तब तक संसद सदस्य के रूप में निर्वाचित कोई व्यक्ति उन उन्मुक्तियों तथा विशेषाधिकारों का अधिकारी नहीं होता जो सदस्यों के लिए उपलब्ध होते हैं, न ही मतदान करने और कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार उसे प्राप्त होता है।

सदनों को बैठक के लिए आमंत्रित करना

राष्ट्रपति समय समय पर संसद के प्रत्येक सदन को बैठक के लिए आमंत्रित करता है। प्रत्येक अधिवेशन की अंतिम तिथि के बाद राष्ट्रपति को छह मास के भीतर आगामी अधिवेशन के लिए सदनों को बैठक के लिए आमंत्रित करना होता है।[3] यद्यपि सदनों को बैठक के लिए आमंत्रित करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है तथापि व्यवहार में इस आशय के प्रस्ताव की पहल सरकार द्वारा की जाती है। संसदीय कार्य विभाग अधिवेशन के प्रारंभ की प्रस्तावित तिथि की और उसकी अवधि की सूचना राज्य सभा और लोक सभा के महासचिवों को देता है।

राज्य सभा का सभापति और लोक सभा का अध्यक्ष जब उस प्रस्ताव पर सहमत हो जाते हैं तो दोनों सदनों के महासचिव उल्लिखित तिथि और समय पर सदनों को बैठक के लिए आमंत्रित करने के लिए राष्ट्रपति के आदेश प्राप्त करते हैं। वे राष्ट्रपति के आदेश को

असाधारण राजपत्र में अधिसूचित करते हैं और उस बारे में विज्ञप्ति जारी करते हैं। तत्पश्चात, महासचिव "आमंत्रण" प्रत्येक सदन को भेजते हैं।[4]

संसद के अधिवेशन

सामान्यतया प्रतिवर्ष संसद के तीन अधिवेशन होते हैं यथा बजट अधिवेशन (फरवरी-मई), वर्षाकालीन अधिवेशन (जुलाई-सितंबर) और शीतकालीन अधिवेशन (नवंबर-दिसंबर)। किंतु, राज्य सभा के मामले में, बजट अधिवेशन को दो अधिवेशनों में विभाजित कर दिया जाता है। इन दो अधिवेशनों के बीच तीन से चार सप्ताह का अवकाश होता है। इस प्रकार राज्य सभा के एक वर्ष के चार अधिवेशन होते हैं।

अस्थायी (प्रोटम) अध्यक्ष

आम चुनाव के पश्चात जब लोक सभा पहली बार बैठक के लिए आमंत्रित की जाती है तो राष्ट्रपति लोक सभा के किसी सदस्य को अस्थायी अध्यक्ष नियुक्त करता है। सामान्यतया, वरिष्ठतम सदस्य को इस हेतु चुना जाता है। अस्थायी अध्यक्ष सदन की अध्यक्षता करता है जिससे कि नये सदस्य शपथ आदि ले सकें और अपना अध्यक्ष चुन सकें।

राष्ट्रपति का अभिभाषण

नव निर्वाचित सदस्यों द्वारा शपथ लिए जाने या प्रतिज्ञान किए जाने और अध्यक्ष के चुन लिए जाने के पश्चात, राष्ट्रपति संसद भवन के सेंट्रल हाल में एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण करता है। राष्ट्रपति प्रत्येक वर्ष के प्रथम अधिवेशन के प्रारंभ में भी एक साथ समवेत दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण करता है।

राष्ट्रपति का अभिभाषण बहुत महत्वपूर्ण अवसर होता है जो राज्याध्यक्ष की गरिमा के अनुकूल बड़ा भव्य होता है। राष्ट्रपति राजकीय बग्घी अथवा कार में संसद भवन पहुंचते हैं, जहां द्वार पर राज्य सभा के सभापति, लोक सभा के अध्यक्ष, संसदीय कार्य मंत्री और दोनों सदनों के महासचिव उनका स्वागत करते हैं। उसके बाद उन्हें समारोहपूर्ण जुलूस में लाल कालीन से सुसज्जित मार्ग द्वारा ऊंचे गुंबद वाले संसद भवन के सेंट्रल हाल में ले जाया जाता है। राष्ट्रगान के पश्चात, राष्ट्रपति अभिभाषण पढ़ते हैं। उस अभिभाषण में ऐसी नीतियों एवं कार्यक्रमों का विवरण होता है जिन्हें आगामी वर्ष में कार्यरूप देने का सरकार का विचार हो। साथ ही, पहले वर्ष की उसकी गतिविधियों और सफलताओं की समीक्षा भी दी जाती है। वह अभिभाषण चूंकि सरकार की नीति का विवरण होता है अतः वह सरकार द्वारा तैयार किया जाता है।

राष्ट्रपति के अभिभाषण के आधा घंटा पश्चात दोनों सदन अपने अपने चैंबर में समवेत होते हैं जहां राष्ट्रपति के अभिभाषण की प्रतियां सदन के महासचिव द्वारा सभा पटल पर रखी जाती हैं। प्रत्येक सदन में किसी एक सदस्य द्वारा प्रस्तावित और दूसरे सदस्य द्वारा समर्थित धन्यवाद प्रस्ताव पर दोनों सदनों में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा होती है।[5] अभिभाषण

पर चर्चा बहुत व्यापक रूप से होती है और प्रशासन के किसी एक या सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता है। सदस्य राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सब प्रकार की समस्याओं पर बोल सकते हैं। धन्यवाद प्रस्ताव के संशोधनों के द्वारा उन मामलों पर भी चर्चा हो सकती है जिन का अभिभाषण में विशेष रूप से उल्लेख न हो।[6] चर्चा के दौरान सीमा केवल यही है कि सदस्य ऐसे मामलों का उल्लेख नहीं कर सकते जिनके लिए भारत सरकार प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी न हो और वाद विवाद के दौरान राष्ट्रपति के नाम का उल्लेख नहीं किया जा सकता। बाद वाले प्रतिबंध के पीछे विचार यह है कि अभिभाषण में जो कुछ कहा जाता है और जो नीति की बात होती है उसके लिए सरकार उत्तरदायी होती है न कि राष्ट्रपति।

चर्चा के अंत में, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर वाद विवाद का उत्तर सामान्यतया प्रधानमंत्री द्वारा दिया जाता है।[7] प्रधानमंत्री के उत्तर के पश्चात, संशोधनों को निबटाया जाता है और धन्यवाद का प्रस्ताव सदन के मतदान के लिए रखा जाता है। प्रस्ताव पास हो जाने पर, उसकी सूचना अध्यक्ष द्वारा एक पत्र के माध्यम से राष्ट्रपति को दे दी जाती है।[8]

अध्यक्ष/उपाध्यक्ष का निर्वाचन

संविधान के अनुसार यह अपेक्षित है कि लोक सभा प्रथम बैठक के पश्चात, जितनी जल्दी हो सके, सदन के दो सदस्यों को अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के रूप में चुनेगी। राष्ट्रपति, लोक सभा के महासचिव के द्वारा प्रधानमंत्री का सुझाव प्राप्त होने के पश्चात अध्यक्ष के निर्वाचन के लिए तिथि का अनुमोदन करता है। तत्पश्चात महासचिव उस तिथि की सूचना उसके प्रत्येक सदस्य को भेजता है।[9]

अध्यक्ष के निर्वाचन के लिए निर्धारित तिथि से एक दिन पूर्व, किसी समय, कोई भी सदस्य इस आशय के प्रस्ताव की सूचना दे सकता है कि किसी अन्य सदस्य को (अर्थात इस प्रकार सूचना देने वाले से भिन्न सदस्य को) सदन का अध्यक्ष चुना जाए। उस सूचना में जिस सदस्य के नाम का प्रस्ताव किया गया हो उस सदस्य का बयान सूचना के साथ भेजा जाना आवश्यक है कि निर्वाचित किए जाने पर वह अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए तैयार है।[10] सामान्यतया, सत्ताधारी दल द्वारा चुने गये उम्मीदवार के निर्वाचन के लिए प्रस्ताव की सूचना प्रधानमंत्री द्वारा या संसदीय कार्य मंत्री द्वारा दी जाती है।

प्रस्ताव की नियमानुकूल पायी जाने वाली सभी सूचनाएं कार्यसूची में उसी क्रम में दर्ज कर दी जाती हैं जिसमें वे समयानुसार प्राप्त हुई हों।

निर्वाचन के लिए निर्धारित दिन को, जिस सदस्य के नाम में कार्यसूची में वह प्रस्ताव होता है उसे प्रस्ताव पेश करने के लिए कहा जाता है। वह चाहे तो प्रस्ताव को वापस भी ले सकता है। जो प्रस्ताव पेश किए जाते हैं और विधिवत समर्थित किए जाते हैं उन्हें उसी क्रम में जिसमें वे पेश किए गए हों, एक एक करके सदन के मतदान के लिए रखा जाता है। जैसे ही कोई प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है, पीठासीन अधिकारी, अन्य प्रस्ताव मतदान के लिए

रखे बिना, घोषणा करता है कि स्वीकृत प्रस्ताव में जिस सदस्य के नाम का प्रस्ताव किया गया है, उसे सदन का अध्यक्ष चुना गया है।[11]

अध्यक्ष अपना पद रिक्त कर देगा : (क) यदि वह लोक सभा का सदस्य नहीं रहे; (ख) यदि वह अपना त्यागपत्र उपाध्यक्ष को भेज दे; और (ग) यदि लोक-सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत द्वारा उसे पद से हटाने के लिए संकल्प पास कर दिया जाए।[12]

अध्यक्ष सदन के भंग हो जाने के पश्चात भी, नये "सदन की प्रथम बैठक होने के ठीक पहले" तक अपने पद पर बना रहता है।

सदनों की बैठकें

किसी अधिवेशन के लिए 'आमंत्रण" के साथ सदस्यों को "बैठकों का अस्थायी तिथि पत्र" भेजा जाता है जिसमें दर्शाया जाता है कि बैठकें किस किस तिथि को होंगी, कौन कौन-सा कार्य किया जाएगा। प्रश्नों का चार्ट भी भेजा जाता है जिसमें यह जानकारी दी जाती है कि प्रश्नों के उत्तर के लिए विभिन्न मंत्रालयों के लिए कौन कौन-सी तिथियां नियत की गई हैं। अधिवेशन के प्रारंभ होने संबंधी विभिन्न मामलों पर अन्य जानकारी के साथ यह सूचना बुलेटिन में भी प्रकाशित की जाती है।

सदन की बैठकें, यदि अध्यक्ष अन्यथा निर्देश नहीं देता तो, सामान्यतया 11.00 बजे म.पू. आरंभ होती हैं और बैठकों का सामान्य समय 11.00 बजे म. पू. से 13.00 बजे म. प. और 14.00 बजे म.प. से 18.00 बजे म. प. तक होता है और 13.00 बजे म. प. से 14.00 बजे म.प. तक का समय मध्याह्न भोजन के लिए छोड़ दिया जाता है।[13] परंतु ऐसे अनेक अवसर आते हैं जबकि सदन मध्याह्न भोजन के समय में भी कार्य करता है और देर तक भी बैठता है।

पहली से नवीं लोक सभा के कार्यकाल में लोक सभा की बैठकों की वर्षवार संख्या तथा समयावधि इस अध्याय के अंत में परिशिष्ट 5.1 में दी गई है।

कार्य का क्रम और कार्यसूची

संसदीय कार्य दो मुख्य शीर्षों में बांटा जा सकता है, अर्थात सरकारी कार्य और गैर-सरकारी कार्य।[14] सरकारी कार्य को फिर दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है, अर्थात (क) ऐसे कार्य जिनकी शुरुआत सरकार द्वारा की जाती है और (ख) ऐसे कार्य जिनकी शुरुआत गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा की जाती है परंतु जिन्हें सरकारी कार्य के समय में लिया जाता है।

दैनिक कार्य अध्यक्ष द्वारा दिए गए निर्देशों के निर्देश 2 में निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुसार इस क्रम में किया जाता है: शपथ या प्रतिज्ञान, निधन संबंधी उल्लेख, प्रश्न, स्थगन प्रस्ताव पेश करने की अनुमति, विशेषाधिकार भंग के प्रश्न, सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र, राष्ट्रपति से प्राप्त संदेशों की सूचना, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, वक्तव्य और वैयक्तिक स्पष्टीकरण, समितियों के लिए निर्वाचन संबंधी प्रस्ताव, पेश किए जाने वाले विधेयक, नियम

377 के अधीन मामले, इत्यादि।

गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य, अर्थात विधेयकों और संकल्पों पर प्रत्येक शुक्रवार के दिन या किसी ऐसे दिन जो अध्यक्ष निर्धारित करे ढाई घंटे तक चर्चा की जाती है,[15] उनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिनकी शुरुआत यद्यपि गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा की जाती है परंतु उनको सरकारी कार्य निबटाने के लिए नियत समय में निबटाया जाता है। किसी मंत्री द्वारा या अन्य सदस्य द्वारा दिए गए वक्तव्यों में गलतियां बताने वाले वक्तव्यों और सदस्यों द्वारा वैयक्तिक स्पष्टीकरणों के अतिरिक्त, इस श्रेणी में कुछ अन्य कार्य भी आते हैं जैसे: प्रश्न, स्थगन प्रस्ताव, अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों की ओर ध्यान दिलाना, विशेषाधिकार के प्रश्न, अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों पर अल्पावधि चर्चा, मंत्रिपरिषद में अविश्वास का प्रस्ताव, प्रश्नों के उत्तरों से उत्पन्न होने वाले मामलों पर आधे घंटे की चर्चाएं, नियम 377 के अधीन मामने, इत्यादि। सदन में किए जाने वाले विभिन्न कार्यों के लिए समय की सिफारिश सामान्यतया कार्य मंत्रणा समिति द्वारा की जाती है, जिसकी सामान्यतया सप्ताह में एक बैठक होती है।

कार्य-संचालन तथा सामान्य प्रक्रिया

प्रत्येक सदन अपनी प्रक्रिया का स्वामी है और वह संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए अपनी प्रक्रिया तथा अपने कार्य-संचालन के विनियमन के लिए नियम बना सकता है (अनुच्छेद 118)। संसद की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को प्रक्रिया की किसी अभिकथित अनियमितता के आधार पर न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता और संसद का कोई अधिकारी या सदस्य संसद में प्रक्रिया या कार्य-संचालन के विनियमन के मामले में किन्हीं शक्तियों के प्रयोग के संबंध में न्यायालयों की अधिकारिता के अधीन नहीं है (अनुच्छेद 122)।

प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन के कुछ आधारभूत नियम संविधान में ही अधिकथित हैं। अतः, अनुच्छेद 100 में उपबंध है (1) कि इस संविधान में यथा अन्यथा उपबंधित के सिवाय (यथा संवैधानिक संशोधन, राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग, पीठासीन अधिकारियों, न्यायाधीशों को हटाया जाना आदि) प्रत्येक सदन की बैठक में या सदनों की संयुक्त बैठक में सभी प्रश्नों का अवधारण पीठासीन अधिकारी को छोड़कर, जो केवल मत बराबर होने की दशा में निर्णायक मत का प्रयोग करेगा, उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जाएगा और (2) प्रत्येक सदन की सारी कार्यवाही सदस्यता में कोई रिक्तियां अथवा वाद विवाद या मतदान में किसी अनधिकृत सहभागिता के होने पर भी विधिमान्य होंगी।

सदन में गणपूर्ति

सदन की किसी बैठक के लिए कोरम अथवा गणपूर्ति, अध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे व्यक्ति सहित कुल सदस्य संख्या का दसवां भाग अथवा 55 सदस्यों से होती है। प्रत्येक दिन बैठक के आरंभ में, अध्यक्ष के पीठासीन होने से पहले, यह सुनिश्चित किया जाता है

कि सदन में गणपूर्ति है। यदि किसी दिन 11.00 बजे म. पू. पर यह देखा जाए कि सदन में गणपूर्ति नहीं है तो गणपूर्ति घंटी बजायी जाती है और अध्यक्ष भी पीठासीन होता है जब गणपूर्ति हो गई हो। मध्याह्न भोजन के पश्चात या स्थगित होने के पश्चात जब सदन पुनः समवेत होता है तब भी इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। बैठक के शेष समय के दौरान एक प्रथा-सी है कि किसी सदस्य द्वारा गणपूर्ति का प्रश्न सामान्य तौर पर नहीं उठाया जाता। विशेष रूप से बैठकों के बढ़े हुए समय में, मध्याह्न भोजन के दौरान या 5.00 बजे म.प. के बाद, यह प्रश्न नहीं उठाया जाता। परंतु यदि एक भी सदस्य किसी समय गणपूर्ति के अभाव का प्रश्न उठा देता है तो कार्यवाही रोकनी पड़ती है और गणपूर्ति घंटी बजानी पड़ती है और सदन की कार्यवाही गणपूर्ति हो जाने पर ही पुनः शुरू की जा सकती है।

मतदान की प्रक्रिया : किसी प्रश्न पर सदन का निर्णय किसी सदस्य द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव के द्वारा लिया जा सकता है। अधिकांश मामलों में निर्णय ध्वनि मत द्वारा किया जाता है। यदि किसी प्रश्न के संबंध में ध्वनि मत को चुनौती दी जाती है तो अध्यक्ष आदेश देता है कि लाबी को खाली कर दिया जाये। लगभग साढ़े तीन मिनट बीतने के बाद, अध्यक्ष प्रश्न पर दूसरी बार मत लेता है तथा घोषणा करता है कि क्या उस की राय में 'हां' पक्ष वालों की जीत हुई या 'ना' पक्ष वालों की जीत हुई है। यदि इस प्रकार घोषित राय को पुनः चुनौती दी जाती है तो अध्यक्ष आदेश देता है कि या तो स्वचालित मत अभिलेखन उपकरण को चालू करके या सदन में 'हां' या 'ना' की पर्चियों का प्रयोग करके या सदस्यों द्वारा लाबियों में जाकर मत अभिलिखित किए जाएं। मत अभिलिखित करने के प्रयोजन के लिए लाबियों में जाने का व्यवहार अब कई वर्षों से चलन में नहीं है।

अब अध्यक्ष द्वारा मतविभाजन का आदेश दिया जाता है तब विभाजन घंटियां सामान्यतया साढ़े तीन मिनट के लिए बजती हैं। घंटियों का बजना बंद होने के ठीक बाद, चैंबर की भीतरी लाबी के सभी बाहरी दरवाजे बंद कर दिए जाते हैं ताकि मतविभाजन संपन्न होने तक कोई भी अंदर प्रवेश न कर सके।

स्वचालित मत अभिलेखक प्रणाली के अंतर्गत, प्रत्येक सदस्य उसे आवंटित स्थान से इस प्रयोजन के लिए लगाए गए अपेक्षित बटन को दबाकर अपना मत देता है। प्रत्येक सदस्य की सीट पर एक ही पुश बटन सेट लगाया गया है जिसमें एक मार्गदर्शी बत्ती तथा तीन पुश बटन हैं। हरे रंग का बटन 'हां' पक्ष के लिए, लाल रंग का बटन 'ना' पक्ष के लिए और काले रंग का बटन 'मतदान के अप्रयोग' का है। इनके साथ तार के साथ लटकता हुआ एक पुश स्विच भी लगाया गया है। मतदान का परिणाम संसूचक पट पर आने के बाद, अध्यक्ष द्वारा मतविभाजन के परिणाम की घोषणा की जाती है। जब स्वचालित मत अभिलेखक खराब होता है या जब स्थान या विभाजन संख्याएं वंटित न की गई हों तब पर्चियों के वितरण की विधि को प्रयोग में लाया जाता है। सदस्यों को अपने मत अभिलिखित करने के लिए उनकी सीटों पर हां पक्ष/ना पक्ष की छपी हुई पर्चियां सप्लाई की जाती हैं। पर्ची एक ओर 'हां पक्ष'

के लिए अंग्रेजी तथा हिंदी दोनों में हरे रंग में और दूसरी ओर 'ना पक्ष' के लिए लाल रंग में छपी होती है। सदस्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे समुचित स्थानों पर अपने हस्ताक्षर करके तथा अपने नाम, विभाजन संख्याएं और तारीखें साफ साफ लिखकर अपनी पसंद के अनुसार मत अभिलिखित करें। जो सदस्य मतदान का प्रयोग नहीं करना चाहते वे अंग्रेजी तथा हिंदी दोनों में पीले रंग में छपी 'मतदान अप्रयोग' की पर्ची भरें। यदि किसी सदस्य को सीट/विभाजन संख्या आवंटित न की गई हो तो वह अपने हस्ताक्षर के नीचे अपना नाम, निर्वाचन क्षेत्र, राज्य और तारीख साफ साफ लिख दे। सभा पटल पर तैनात अधिकारी हां पक्ष/ना पक्ष और 'मतदान अप्रयोग' की पर्चियों की छानबीन करता है तथा उन पर अभिलिखित मतों की गिनती करता है तथा परिणाम का संकलन करता है। इस प्रकार संकलित परिणाम की सभापीठ द्वारा घोषणा की जाती है। पीठासीन अधिकारी को पहली बार में मतदान करने का अधिकार नहीं है किंतु मतों की संख्या बराबर होने पर वह मत दे सकता है जो निर्णायक होता है।

कार्यवाही का अभिलेख : संसद के दोनों सदनों की कार्यवाही का एक पूर्ण शब्दशः अभिलेख तैयार तथा प्रकाशित किया जाता है। जबकि वाद विवाद की असंशोधित तथा साइक्लोस्टाइल्ड प्रतियां सदस्यों को अगले दिन उपलब्ध करा दी जाती हैं। वाद विवाद की छपी हुई प्रतियां सामान्यतया बैठक के बाद एक मास के अंदर उपलब्ध करा दी जाती हैं। कतिपय ऐसे शब्दों या वाक्यों को, जिन्हें पीठासीन अधिकारी द्वारा असंसदीय घोषित कर वाद विवाद में से निकाल दिया जाता है तथा उसके आदेशों के अंतर्गत अभिलिखित न किये गये भागों को कार्यवाही के आधिकारिक अभिलेख में सम्मिलित नहीं किया जाता।

कार्यवाही को टेप रिकार्ड किया जाता है। इसके अलावा संसदीय रिपोर्टर कार्यवाही को पांच पांच या दस दस मिनट की बारी से शार्टहैंड में भी लिख लेते हैं। रिपोर्टर अपने अपने हिस्सों का लिप्यंतरण करने के बाद अपनी शंकाओं का टेप रिकार्ड किये गये पाठ से समाधान करते हैं। वाद विवाद के अधिवेशनवार छपे हुए खंड हिंदी तथा अंग्रेजी पाठ में उपलब्ध होते हैं।

संसद की भाषा

संविधान द्वारा की गई घोषणा के अनुसार संसद के कार्य का संचालन करने की भाषाएं हिंदी तथा अंग्रेजी हैं। किंतु पीठासीन अधिकारी किसी ऐसे सदस्य को, जो हिंदी में या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता हो, अपनी मातृ-भाषा में संसद को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकते हैं (अनुच्छेद 120)। दोनों सदनों में 12 भाषाओं का सदन की भाषाओं अर्थात हिंदी तथा अंग्रेजी में साथ साथ भाषांतर करने की सुविधाएं विद्यमान हैं।

संसद तथा प्रचार माध्यम (मीडिया)

संविधान में प्रेस की स्वतंत्रता के लिए अभिव्यक्त रूप से कोई उपबंध नहीं किया गया है, किंतु न्यायिक निर्णयों द्वारा यह तय पाया गया है कि बोलने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है।

संसद के किसी भी सदन की कार्यवाही के प्रकाशन से संबद्ध सभी व्यक्तियों को संविधान के अंतर्गत किसी भी न्यायालय में कार्यवाही से पूर्ण उन्मुक्ति प्रदान की गई है, किंतु शर्त यह है कि इस तरह का प्रकाशन सदन के प्राधिकार द्वारा या उसके प्राधिकार के अंतर्गत किया जाये (अनुच्छेद 105 (2))। संसद के किसी सदन की किन्हीं कार्यवाहियों के सारतया सही विवरण के किसी समाचारपत्र में प्रकाशन या बेतार तारयांत्रिकी द्वारा प्रसारण के संबंध में भी सांविधिक संरक्षण प्रदान किया गया है बशर्ते कि रिपोर्टें जनहित के लिए हों तथा विद्वेष रहित हों (संविधान का अनुच्छेद 361 क)। यह संरक्षण इस समग्र परिसीमा के अंतर्गत प्रदान किया गया है। सदन को अपने वाद विवाद या अपनी कार्यवाहियों पर नियंत्रण करने तथा यदि आवश्यक हो तो, उनके प्रकाशन का प्रतिषेध करने और अपने वाद विवादों तथा अपनी कार्यवाहियों के उल्लंघन के लिए दंड देने तथा अपने आदेशों के उल्लंघन लिए दंड देने की शक्ति प्राप्त है। सामान्यतया सदन की कार्यवाहियों को रिपोर्ट करने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाए जाते।

संसद को इसके कार्यकरण पर या इसके सदस्यों या इसकी समितियों के कार्यकरण पर आक्षेप करने या लांछन लगाने वाले किसी विद्वेषपूर्ण लेखन, भाषण आदि के लिए कार्यवाही करने का हक है। किंतु, यदि आलोचना निष्पक्ष तथा निष्कपट है तो कोई कार्यवाही नहीं की जाती।

संसद में प्रेस को प्रदान की गई सुविधाओं में प्रेस दीर्घा, प्रेस कक्षों, संसदीय पत्रों तथा जारी की गई प्रेस विज्ञप्तियों की सप्लाई, लाबियों तथा केंद्रीय कक्ष में आने जाने, ग्रंथालय तथा संदर्भ सेवाओं आदि का उपयोग करने की सुविधाएं सम्मिलित हैं।

कार्यवाहियों का प्रसारण : संसद को लोगों के निकट लाने के विचार से, दोनों सदनों के सदस्यों के समक्ष राष्ट्रपति के अभिभाषण का सीधा प्रसारण करके 1989 में एक शुरुआत की गई थी। दिसंबर, 1991 से, दोनों सदनों में प्रश्नकाल का, आवश्यक संपादन करने के बाद, अगले दिन दूरदर्शन पर प्रसारण किया जा रहा है। आकाशवाणी पर प्रश्न-काल का प्रसारण 1992 में शुरू किया गया। 1992 से रेल बजट तथा सामान्य बजट की प्रस्तुति जैसे महत्वपूर्ण अवसरों का भी दूरदर्शन पर सीधा प्रसारण किया जा रहा है। समय समय पर महत्वपूर्ण भाषणों को भी दूरदर्शन पर प्रसारित किया जाता है तथा संग्रहालय के प्रयोजनों तथा भावी उपयोग के लिए समूची कार्यवाही की टेलीफिल्में भी बनाई जा रही हैं। तथापि, दिसंबर, 1994 से संसद के दोनों सदनों की कार्यवाही का दूरदर्शन तथा आकाशवाणी पर सीधा प्रसारण किया जा रहा है। किंतु, जबकि लोक सभा तथा राज्य सभा में प्रश्न-काल का एक सप्ताह छोड़कर बारी बारी—एक सप्ताह लोक सभा तथा दूसरे सप्ताह राज्य सभा—दूरदर्शन के प्राथमिक चैनल पर प्रसारण किया जाता है, दोनों सदनों की अन्य कार्यवाहियों का दो अलग अलग कम शक्ति के चैनलों पर प्रतिदिन प्रसारण किया जाता है, जिसे केवल 15 किलोमीटर की परिधि के भीतर देखा जा सकता है।

अनिश्चित काल के लिए स्थगन या विघटन

राष्ट्रपति समय समय पर दोनों सदनों का या किसी एक सदन का सत्रावसान कर सकता है और लोक सभा को भंग कर सकता है।

अध्यक्ष को सदन को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने की शक्ति प्राप्त है। सदन को एक बार अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने के पश्चात उसे फिर से बुलाने की शक्ति भी अध्यक्ष को प्राप्त है।[16] परंतु सत्रावसान हो जाने पर केवल राष्ट्रपति ही सदनों की बैठक आमंत्रित कर सकता है।

सामान्यतया, सदन के अनिश्चित काल के लिए स्थगित किए जाने के पश्चात उसका राष्ट्रपति द्वारा आगामी कुछ दिनों के भीतर सत्रावसान कर दिया जाता है। सदन के अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने पर उसके समक्ष लंबित किसी कार्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, परंतु लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन संबंधी नियमों के नियम 335 के अनुसार, सदन का सत्रावसान हो जाने पर, विधेयक पेश करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव की सूचनाओं के सिवाय अन्य सब लंबित सूचनाएं व्ययगत हो जाती हैं और आगामी अधिवेशन के लिए नये सिरे से सूचनाएं देनी पड़ती हैं।

लोक सभा अपनी प्रथम बैठक के लिए निर्धारित तिथि से पांच वर्षों तक चलती रहती है। यदि उसे कार्यावधि पूरी होने से पूर्व भंग नहीं कर दिया जाता या उसकी कार्यावधि बढ़ाई नहीं जाती है तो राष्ट्रपति द्वारा उसे भंग करने का औपचारिक आदेश जारी न किए जाने पर भी सदन पांच वर्षों की अवधि की समाप्ति पर अपने आप भंग हो जाती है।[17]

विघटन के परिणाम

सदन को विघटित किए जाने से वर्तमान सदन का जीवन समाप्त हो जाता है और उसके बाद नये सदन का गठन किया जाता है। एक बार जब सदन को विघटित कर दिया जाता है तो वह विघटन अपरिवर्तनीय होता है। संविधान के अधीन केवल लोक सभा को ही विघटित किया जा सकता है, और इसके विघटित हो जाने पर इसके समक्ष या इसकी किसी समिति के समक्ष लंबित सब कार्य व्ययगत हो जाता है। विघटित सदन के रिकार्ड का कोई भी भाग आगे नहीं ले जाया जा सकता और नये सदन के रिकार्ड में या रजिस्टर में समाविष्ट नहीं किया जा सकता।

संक्षेप में, विघटन के समय लोक सभा में लंबित कार्य की विभिन्न मदों की स्थिति इस प्रकार होती है :

(1) विघटन के समय लोक सभा में लंबित सब विधेयक, चाहे वह इस सदन में पेश हुए हों या राज्य सभा द्वारा इसके पास भेजे गए हों, व्ययगत हो जाते हैं; और

(2) लोक सभा द्वारा पास किए गए विधेयक, परंतु जो राज्य सभा द्वारा निबटाये न गए हों और विघटन की तिथि को वहां लंबित हों व्ययगत हो जाते हैं;

(3) राज्य सभा में पेश किए गए विधेयक, जो लोक सभा द्वारा पास न किए गए हों परंतु अभी राज्य सभा में लंबित हों, व्ययगत नहीं होते।

(4) जिस विधेयक पर दोनों सदनों में असहमति हुई हो और विघटन से पूर्व उस पर विचार करने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने के अपने इरादे को राष्ट्रपति ने अधिसूचित कर दिया हो वह विधेयक व्ययगत नहीं होता और दोनों

सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने के अपने इरादे को राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचित किए जाने के बाद विघटन हो जाने के बावजूद, दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में उसे पास किया जा सकता है।[18]

(5) दोनों सदनों द्वारा पास किए गए और राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके पास भेजे गए विधेयक लोक सभा के विघटित हो जाने पर व्ययगत नहीं होते।

(6) राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस भेजे गए विधेयक व्ययगत नहीं होते और नये सदन द्वारा उन पर पुनर्विचार किया जा सकता है।

(7) लोक सभा में लंबित अन्य सब कार्य, अर्थात, प्रस्ताव, संकल्प, संशोधन, अनुदानों की अनुपूरक मांगें, इत्यादि चाहे वे किसी भी अवस्था में हों, विघटन हो जाने पर व्ययगत हो जाते हैं।

(8) सभा के समक्ष पेश की गई याचिकाएं जो याचिका समिति को निर्दिष्ट की गई हों, वे भी विघटन हो जाने पर व्ययगत हो जाती हैं।

(9) लोक सभा द्वारा पास किए गए सांविधिक नियमों के अनुमोदन या रूपभेद के लिए प्रस्ताव जो राज्य सभा की सम्मति के लिए उसके पास भेजे गए हों या इसी प्रकार राज्य सभा से लोक सभा के पास भेजे गए हों, वे भी लोक सभा के विघटित हो जाने पर व्ययगत हो जाते हैं।

(10) लंबित आश्वासन व्ययगत नहीं होते और नयी लोक सभा की सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति उन पर विचार करती है।

संदर्भ

1. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 73
2. अनु. 99 और तीसरी अनुसूची; निर्देश
3. अनु. 85
4. नियम 3
5. नियम 17
6. नियम 18
7. नियम 20
8. नियम 247
9. नियम 7(1)
10. नियम 7(2)
11. नियम 7(3) और (4)
12. अनु. 94
13. नियम 12
14. मंत्री के अलावा अन्य प्रत्येक सदस्य गैर-सरकारी सदस्य कहा जाता है, चाहे वह किसी भी दल का हो। मंत्री सरकारी सदस्य कहलाता है।
15. नियम 26
16. नियम 15
17. सुभाष काश्यप, डिजोल्यूशन आफ **द लोक** सभा, **द पार्लियामेंटेरियन**, 57, जनवरी 1, 1977
18. अनु. 108

परिशिष्ट 5.1

लोक सभा की बैठकें

पहली से नौवीं लोक सभा

(1952-1991)

वर्ष	बैठकों की संख्या	बैठकों की समयावधि (घंटों में)
1952	123	880.00
1953	137	749.00
1954	137	716.00
1955	139	859.00
1956	151	1026.00
1957	106	668.00
1958	125	781.00
1959	123	792.00
1960	121	798.00
1961	102	668.00
1962	116	730.00
1963	122	787.00
1964	122	753.00
1965	113	730.00
1966	119	810.00
1967	110	699.00
1968	120	801.00
1969	120	747.00
1970	119	782.00
1971	102	616.20
1972	111	699.35
1973	120	814.25
1974	119	853.10
1975	63	441.45
1976	98	645.04
1977	86	568.10
1978	115	767.50

1	2	3
1979	68	417.06
1980	98	678.32
1981	105	721.13
1982	92	640.28
1983	93	709.10
1984	77	574.38
1985	109	728.31
1986	98	692.34
1987	102	645.45
1988	102	676.49
1989	83	545.32
1990	81	584.28
1991	19	104.13

6

अध्यक्ष तथा अन्य अधिकारी

किसी सदन को यदि व्यवस्थित और कुशल ढंग से कोई कार्य करना हो तो उसके लिए किसी प्राधिकारी का होना आवश्यक है जो उसकी कार्यवाहियों को और कार्यकरण को नियमित करे। संविधान में लोक सभा के लिए अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का और राज्य सभा के लिए सभापति और उपसभापति को इसी उद्देश्य से उपबंध किया गया है। भारत का उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होता है। सदन द्वारा अपने सदस्यों में से एक उपसभापति चुना जाता है। लोक सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष लोक सभा द्वारा अपने सदस्यों में से चुने जाते हैं। लोक सभा में अध्यक्ष जब उपस्थित न हो तो सदन में उसके कृत्यों का निर्वहन उपाध्यक्ष करता है। इसी तरह, सभापति जब अनुपस्थित हो तो राज्य सभा में उपसभापति पीठासीन अधिकारी के रूप में कार्य करता है। प्रत्येक सदन में सभापति-तालिका भी बनाई जाती है। उस तालिका के सदस्य अपने अपने सदन की उस समय अध्यक्षता करते हैं जब वहां दोनों पीठासीन अधिकारियों में से कोई भी उपस्थित न हो।[1] दो पीठासीन अधिकारियों के बाद, प्रत्येक सदन में महत्वपूर्ण अधिकारी महासचिव होता है जो सदन का गैर-निर्वाचित स्थायी अधिकारी होता है।

अध्यक्ष

अध्यक्ष का पद ब्रिटेन के सवैधानिक इतिहास में विकास के लंबे और गहन संघर्ष के परिणामस्वरूप बना। पुराने दिनों में जब हाउस आफ कामंस विधि का निर्माण करने वाला निकाय न होकर याचिका प्रस्तुत करने वाला निकाय हुआ करता था तो अध्यक्ष का मुख्य कृत्य वाद-विवाद के अंत में दोनों पक्षों के तर्कों का निष्कर्ष निकालना और सदन के विचार "क्राउन" के समक्ष प्रस्तुत करना हुआ करता था। इस प्रकार वह सम्राट के समक्ष कामंस का प्रवक्ता या "स्पीकर" हुआ करता था। उसके विपरीत आज का अध्यक्ष कभी कभार ही बोलता है और जब कभी बोलता है तो सदन से नहीं बल्कि सदन के लिए बोलता है। वह सदन की कार्यवाही में भाग नहीं लेता; वह केवल सदन की बैठकों की अध्यक्षता करता है।

सामान्य रूप से, भारत में अध्यक्ष की स्थिति लगभग वैसी ही है जैसी कि हाउस आफ कामंस के अध्यक्ष की है। उसका पद प्रतिष्ठा, गौरव और प्राधिकार का पद है। वह लोक

सभा का प्रमुख है। उसका मुख्य उत्तरदायित्व सदन का कार्य शांत एवं व्यवस्थित ढंग से चलाना है। सदन के भीतर और सदन से संबंध रखने वाले सब मामलों में अंतिम प्राधिकार उसी का है।

स्वतंत्रता और निष्पक्षता अध्यक्ष पद के दो महत्वपूर्ण गुण हैं। यह उद्देश्य कई प्रकार से सुनिश्चित होता है। वरीयता के क्रम में अध्यक्ष को बहुत उच्च स्थान दिया गया है। इस क्रम में उसका स्थान राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बाद आता है। उसका स्थान, सिवाय प्रधानमंत्री के, मंत्रिमंडल के अन्य सब मंत्रियों से ऊंचा है। उसके वेतन और भत्ते भारत की संचित निधि पर प्रभारित हैं, अर्थात उनके लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक नहीं होती। उसके आचरण पर सिवाय मूल (सबस्टेंटिव) प्रस्ताव के, अन्यथा चर्चा नहीं की जा सकती। वह सदन में, सिवाय उस स्थिति के जब किसी प्रस्ताव पर दोनों पक्षों के समान मत हों अन्यथा मतदान नहीं करता।[2] और जब समान मत होने की ऐसी स्थिति में वह अपना निर्णायक मत देता है तो ऐसा सदा सुस्थापित संसदीय सिद्धांतों और प्रथाओं के अनुसार ही किया जाता है। यह संयोग की बात है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में ऐसा एक भी अवसर नहीं आया जबकि अध्यक्ष को अपने निर्णायक मत का प्रयोग करना पड़ा हो। अध्यक्ष राजनीतिक रूप से तटस्थ होता है। अध्यक्ष चुने जाने पर, वह अपने दल की सब गतिविधियों से अपने को अलग कर लेता है। वह किसी दल का बेशक होकर रहे परंतु दल की किसी राजनीति में उसका दखल नहीं होता।[3] वह किसी दल का पद धारण नहीं करता, किसी दल की बैठकों में या क्रियाकलापों में भाग नहीं लेता और राजनीतिक विवादों से और दल के अभियानों से दूर रहता है।[4]

अध्यक्ष सदन के कार्य का संचालन करता है और उसकी कार्यवाहियों को नियमित करता है। वह संविधान के उपबंधों और "लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों" के अनुसार ही इन कृत्यों का निर्वहन करता है। सदन के भीतर संविधान के उपबंधों और प्रक्रिया नियमों की जो व्याख्या वह करे वही अंतिम होती है। सब संसदीय मामलों में उसका फैसला अंतिम फैसला होता है। जिन मामलों के बारे में नियमों में विशेष रूप से उपबंध न किया गया हो, उनके संबंध में निर्देश देने की अवशिष्ट शक्तियां अध्यक्ष को प्राप्त हैं।[5] ऐसा करते समय, वह किसी सदस्य से या सरकार से कह सकता है कि ऐसे तथ्य, साक्ष्य एवं सूचना उसे उपलब्ध की जाए जो वह किसी फैसले पर पहुंचने के लिए आवश्यक समझता हो। परंतु सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद जब एक बार वह विनिर्णय दे देता है तो उसे अंतिम ही माना जाना चाहिए। किसी मामले पर पुनर्विचार करने के लिए तो उससे निवेदन किया जा सकता है परंतु उसके फैसले को न तो चुनौती दी जा सकती है और न ही उसकी आलोचना की जा सकती है।

सदन के कार्य का संचालन शांत एवं व्यवस्थित ढंग से सुनिश्चित करने के लिए अध्यक्ष को बहुत शक्तियां प्राप्त हैं।[6] कोई सदस्य सदन में तब तक नहीं बोल सकता जब तक पीठासीन अधिकारी द्वारा उसे बोलने के लिए कहा नहीं जाता या बोलने की अनुमति

नहीं दी जाती। इस बात का फैसला अध्यक्ष करता है कि सदस्य किस क्रम से बोलेंगे[7] और किसी सदस्य को कितने समय तक बोलने दिया जाए। वह किसी भी सदस्य को अपना भाषण वहीं समाप्त करने के लिए आदेश दे सकता है और यह आदेश भी दे सकता है कि वह सदस्य ऐसे शब्द या अभिव्यक्ति को वापस ले ले जो अध्यक्ष के विचार में असंसदीय या अभद्र हों। वह यह आदेश भी दे सकता है कि उसकी अनुमति के बिना किसी सदस्य द्वारा कही गई कोई बात कार्यवाही-वृत्तांत में सम्मिलित नहीं की जाएगी और असंसदीय पाई गई किसी बात को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिया जाए।[8] जिन शब्दों या भाषण के अंशों के बारे में यह आदेश दिया गया हो कि वे "रिकार्ड न किए जाएं" या असंसदीय होने के कारण कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिए जाएं, उन्हें समाचारपत्रों द्वारा अन्य लोगों द्वारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता क्योंकि संसद के सदनों के कार्यवाही-वृत्तांतों को प्रकाशित करने का अधिकार असीमित अधिकार नहीं है।

सदन में अव्यवस्था पैदा करने के कारण अध्यक्ष किसी सदस्य से किसी एक दिन के लिए या दिन के किसी भी भाग के लिए सदन से चले जाने के लिए कह सकता है या भारी अव्यवस्था फैलाने के कारण उचित प्रस्ताव पेश किए जाने पर किसी सदस्य को सदन से निलंबित भी कर सकता है। सब सदस्यों को अनुशासन में रखना अध्यक्ष का ही काम है और उसके साथ उचित सम्मान से पेश आने में और उसके विनिर्णयों एवं फैसलों को मानने में सदस्यों को बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। जब कभी वह बीच में बोलता है या प्रश्नों का प्रस्ताव करने या प्रश्न मतदान के लिए रखने के उद्देश्य से खड़ा होता है, कुछ टिप्पणियां करता है या अपने विनिर्णय देता है तो शांति से उसे सुनना अनिवार्य है। इस बात का फैसला भी अध्यक्ष करता है कि क्या विशेषाधिकार भंग या सदन की अवमानना से संबंधित किसी विषय में प्रथम दृष्टया मामला बनता है[9], या किसी सदस्य के आचरण का मामला जांच पड़ताल के लिए किसी समिति को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए। यदि वह अपनी सम्मति प्रदान नहीं करता तो उस मामले पर आगे कार्यवाही नहीं की जाती। सदन में आरोपात्मक, मानहानिकारक या दोषारोपण करने वाले वक्तव्यों से व्यक्तियों के सम्मान की रक्षा भी अध्यक्ष करता है और वह किसी सदस्य को ऐसा वक्तव्य देने से रोक सकता है, यदि ऐसे वक्तव्य के स्वरूप के बारे में या जिस साक्ष्य पर वे आधारित हैं उसकी पूर्व सूचना उसे न दे दी गई हो।

अध्यक्ष को सदन के वातावरण के प्रति संवदेनशील होना पड़ता है। कभी कभी जब सदन में उत्तेजना होती है, कोलाहल होता है या लगातार अंतर्बाधा होती है तब उसे स्थिति को संभालने, तनाव दूर करने और ऐसा वातावरण पैदा करने के लिए जिसमें व्यवस्थित एवं शांत ढंग से वाद-विवाद हो सके, बड़ी होशियारी, सूक्ष्म बुद्धि एवं स्वस्थ हास्यप्रियता से काम लेना पड़ता है। ऐसा गुण स्वाभाविक भी हो सकता है और पैदा भी किया जा सकता है, परंतु एक बुद्धिमान एवं योग्य अध्यक्ष में यह निश्चित रूप से बहुत प्रभावी उपाय होता है।

प्राप्त होने वाली विभिन्न प्रस्तावों की सूचनाओं, प्रश्नों आदि को गृहीत करने या न करने के बारे में विचार करते समय अध्यक्ष अपने मूल कर्तव्य को सदा ध्यान में रखता है कि

उसे इस तरह कार्य करना है जिससे कि समय समय पर उत्पन्न होने वाले लोक महत्व के विभिन्न मामलों पर सदन विचार कर सके और उनके बारे में फैसला कर सके। जब कभी अध्यक्ष को संदेह हो तो वह आमतौर पर सदन को अपने विचार व्यक्त करने का अवसर प्रदान करता है। वह अपने कर्तव्यों को या अपनी शक्तियों को इस रूप में नहीं लेता कि जैसे वह सदन से अलग हो या सदन के प्राधिकार से उसकी शक्ति अधिक हो, या कि वह सदन के निर्णयों को रद्द कर सकता हो। वह सदन का अंग होता है और सदन के बेहतर कार्यकरण के लिए सदन से ही शक्तियां प्राप्त करता है। अंततोगत्वा वह सदन का सेवक होता है, उसका स्वामी नहीं।

सदन की ओर से संदेश अध्यक्ष के प्राधिकार से भेजे जाते हैं और उसी के प्राधिकार से प्राप्त होते हैं।[10] कोई विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने से पूर्व अध्यक्ष ही अपने हस्ताक्षर द्वारा प्रमाणित करता है कि वह विधेयक सदन द्वारा पास कर दिया गया है। वह कोई विधेयक सदन द्वारा पास कर दिए जाने के पश्चात उसमें स्पष्ट त्रुटियों में शुद्धि कर सकता है और उसमें ऐसे अन्य परिवर्तन कर सकता है जो सदन द्वारा स्वीकृत संशोधनों के परिणामी परिवर्तन हों। सदन को भेजे गए दस्तावेज, याचिकाएं और संदेश वही प्राप्त करता है और सदन के सब आदेश उसी के द्वारा कार्यान्वित किए जाते हैं। वह सदन के फैसलों की सूचना संबद्ध प्राधिकारियों को देता है और उनसे कहता है कि ऐसे फैसलों का पालन किया जाए।

लोक सभा की सब संसदीय समितियां उसके द्वारा या सदन द्वारा गठित की जाती हैं। वे उसी के नियंत्रण में और निदेशाधीन कार्य करती हैं। सब समितियों के सभापति अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। वह समितियों के कार्यकरण संबंधी मामलों में निर्देश जारी करता है और यह भी निर्देश देता है कि वे क्या प्रक्रिया अपनाएं।[11] सब विवादास्पद मामले अध्यक्ष के मार्गदर्शन के लिए उसके पास भेजे जाते हैं और उसके फैसलों का पालन किया जाता है। कार्य मंत्रणा समिति, सामान्य प्रयोजन समिति और नियम समिति सीधे उसी की अध्यक्षता में कार्य करती हैं।[12]

जहां तक कुछ मामलों में दोनों सदनों के आपसी संबंधों का प्रश्न है, संविधान के अनुसार अध्यक्ष को एक विशेष स्थान दिया गया है। यह वही निर्धारित करता है कि वित्तीय मामले कौन कौन-से हैं जो लोक सभा के संपूर्ण अधिकार क्षेत्र में आते हैं। यदि वह प्रमाणित कर देता है कि अमुक विधेयक "धन विधेयक" है, तो उसका फैसला अंतिम होता है।[13] किसी विधेयक पर दोनों सदनों में असहमति की स्थिति में जब कभी दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई जाती है तो ऐसी संयुक्त बैठक की अध्यक्षता वही करता है और ऐसी बैठक में सब प्रक्रिया नियम उसके निर्देशों और आदेशों से लागू होते हैं।[14]

सदस्यों के लिए ग्रंथालय, आवास, टेलीफोन, वेतन तथा भत्तों की अदायगी, संसद भवन में जलपान और विश्राम-कक्षों, संसदीय पत्रों के मुद्रण और उनकी सप्लाई आदि जैसी विभिन्न प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व अध्यक्ष का होता है। अध्यक्ष गैलरियों

में दर्शकों[15] और प्रेस संवाददाताओं के प्रवेश को नियमित करता है और इस संबंध में सुरक्षा प्रबंधों के लिए उत्तरदायी है। उसके आदेशों के उल्लंघन की स्थिति में, वह सदन के आदेश के अनुसार दर्शकों को आवश्यक दंड दे सकता है। यदि किसी व्यक्ति की, सदन का विशेषाधिकार भंग करने या उसकी अवमानना करने के आरोप में, सदन के समक्ष उपस्थिति अपेक्षित हो तो वह उसे "समन" जारी कर सकता है। यदि सदन के किसी सदस्य या बाहर के किसी व्यक्ति को कारावास का दंड देने के लिए प्रस्ताव सदन द्वारा स्वीकृत किया जाता है तो उसके विरुद्ध गिरफ्तारी के वारंट भी अध्यक्ष जारी कर सकता है।

संसदीय दलों को मान्यता प्रदान करने के लिए मार्गदर्शी सिद्धांत अध्यक्ष निर्धारित करता है और लोक सभा में विपक्ष के किसी दल के नेता को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता उसी के द्वारा दी जाती है। किसी सदस्य का त्यागपत्र स्वीकार करने से पूर्व अध्यक्ष का समाधान हो जाना आवश्यक है कि वह त्यागपत्र सही है और स्वेच्छा से दिया गया है। यदि जांच के पश्चात अध्यक्ष का समाधान हो जाता है कि वह त्यागपत्र स्वेच्छा से नहीं दिया गया या सही नहीं है तो वह त्यागपत्र स्वीकार करने से इंकार कर सकता है।[16]

कोई भी सदस्य अध्यक्ष से उसके कक्ष में मिल सकता है। दल बदलने के कारण लोक सभा के किसी सदस्य की अनर्हता संबधी सब प्रश्नों का फैसला करने की पूर्ण शक्ति अध्यक्ष को प्राप्त है। वह सदस्यों के विचार, उनकी शिकायतें और सुझाव सुनता है और आवश्यक कार्यवाही करता है। कोई भी सदस्य या मंत्री पहले समय निश्चित करके, अध्यक्ष के कक्ष में उसे मिल सकता है। उसकी निष्पक्षता, योग्यता, चरित्र या आचरण या अपेक्षा करना विशेषाधिकार भंग करना है। उसके फैसलों की सदन के भीतर या बाहर आलोचना नहीं की जा सकती। उसका उल्लेख सम्मानपूर्वक किया जाना चाहिए और उसे उच्च स्थान दिया जाना चाहिए। सदन की गरिमा की रक्षा और उसको बनाए रखने के लिए ऐसा करना आवश्यक है।

यदि लोक सभा का कोई सदस्य किसी अपराध में गिरफ्तार किया जाता है, या उसे कारावास का दंड दिया जाता है, या कार्यपालिका के किसी आदेश से नजरबंद किया जाता है तो ऐसे तथ्य की सूचना दंडाधिकारी या कार्यपालिका प्राधिकारी के द्वारा तुरंत अध्यक्ष को दी जानी अनिवार्य है। किसी सदस्य की रिहाई की स्थिति में भी ऐसी सूचना का दिया जाना अनिवार्य है। अध्यक्ष की अनुमति प्राप्त किए बिना सदन के परिसर में किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता और न ही उसके विरुद्ध किसी दीवानी या आपराधिक, कानूनी आदेशिका की तामील की जा सकती है।[17]

अध्यक्ष सदन में निधन संबधी उल्लेख करता है, सदन की कार्यावधि समाप्त होने पर विदाई भाषण देता है और महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का औपचारिक रूप से उल्लेख भी करता है।

अध्यक्ष भारतीय संसदीय ग्रुप का, जो भारत में अंतर्संसदीय संघ के राष्ट्रीय ग्रुप के रूप में और राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की मुख्य शाखा के रूप में कार्य करता है, पदेन प्रेजिडेंट होता है। वह, राज्य सभा के सभापति के परामर्श से, विदेशों में जाने वाले विभिन्न संसदीय

प्रतिनिधिमंडलों के सदस्य मनोनीत करता है। वह प्रायः ऐसे प्रतिनिधिमंडलों का नेतृत्व स्वयं करता है। अध्यक्ष भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन का सभापति भी होता है।

लोक सभा सचिवालय अध्यक्ष के निदेश और नियंत्रण में कार्य करता है। उसे सचिवालय के कर्मचारियों पर, सदन के परिसर पर और संसद भवन संपदा पर सर्वोच्च प्राधिकार प्राप्त है। वह अपने इस प्राधिकार का प्रयोग लोक सभा के महासचिव की सहायता से करता है।[18]

अध्यक्ष के इतने महत्वपूर्ण और वृहत उत्तरदायित्वों को देखते हुए, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 8 मार्च, 1958 को अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल के चित्र का अनावरण करते हुए कहा था :

> "अध्यक्ष सदन का प्रतिनिधित्व करता है। वह सदन की गरिमा, सदन की स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व करता है और सदन क्योंकि राष्ट्र की स्वतंत्रता का प्रतीक बन जाता है इसलिए, यही उचित है कि यह पद सम्मान का पद हो, स्वतंत्र हो और यह सदा ऐसे व्यक्तियों से सुशोभित हो जो असाधारण योग्यता रखते हों और असाधारण रूप से निष्पक्ष हों।"

वर्ष 1921 से पहले, भारत के गवर्नर-जनरल विधान परिषद की बैठकों की अध्यक्षता किया करते थे। भारत में अध्यक्ष की संस्था[19] का उद्भव 1921 में तब हुआ जब मांटेगु-चेम्सफोर्ड सुधारों के अधीन केंद्रीय विधान सभा पहली बार गठित हुई। गवर्नर-जनरल द्वारा सर फ्रेडरिक व्हाईट को 3 फरवरी, 1921 को चार वर्षों की अवधि के लिए सभा का प्रथम अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

श्री विट्ठलभाई पटेल प्रथम गैर-सरकारी व्यक्ति थे जो 24 अगस्त, 1925 को सभा के अध्यक्ष चुने गए। 20 जनवरी, 1927 को वह पुनः निर्वाचित हुए और अपने पद पर 28 अप्रैल, 1930 तक बने रहे, जिस तिथि को उन्होंने अपने पद का त्याग कर दिया। श्री पटेल को केंद्रीय विधानमंडल का प्रथम भारतीय और प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष होने का श्रेय प्राप्त था। श्री गणेश वासुदेव मावलंकर को स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रथम आम चुनावों के परिणामस्वरूप गठित प्रथम संसद के प्रथम अध्यक्ष के रूप में चुना गया। परंतु वह संविधान सभा (विधायी) में इसी पद पर आसीन रह चुके थे और संविधान के प्रारंभ होने पर अस्थायी संसद के अध्यक्ष बने रहे थे।

जो प्रतिष्ठित व्यक्ति अध्यक्ष पद पर, या प्रेजीडेंट पद पर, जिस पदनाम से वे 1947 तक जाने जाते थे, रह चुके हैं, उनके नाम और पदावधियां इस प्रकार हैं :

स्वतंत्रता-पूर्व की अवधि

सर फ्रेडरिक व्हाईट	3 फरवरी, 1921—अगस्त, 1925
विट्ठलभाई जे. पटेल	24 अगस्त, 1925—28 अप्रैल, 1930
मोहम्मद याकूब	9 जुलाई, 1930—31 जुलाई, 1930
इब्राहीम रहीमतुल्ला	17 जनवरी, 1931—7 मार्च, 1933

सर शनमुखम चेट्टी	14 मार्च, 1933—31 दिसंबर, 1934
अब्दुल रहीम	24 जनवरी, 1935—1 अक्तूबर, 1945[20]
गणेश वासुदेव मावलंकर	24 जनवरी, 1946—14 अगस्त, 1947[21]

स्वतंत्रता-पश्चात की अवधि

गणेश वासुदेव मावलंकर	17 नवंबर,1947—25 जनवरी, 1950 [संविधान सभा (विधायी)]
	26 जनवरी, 1950—17 अप्रैल, 1952 (अस्थाई संसद)
	17 अप्रैल, 1952—15 मई, 1952[22]
	15 मई, 1952—27 फरवरी, 1956
अनन्तशयनम अय्यंगर	8 मार्च, 1956—16 अप्रैल, 1962
हुकम सिंह	17 अप्रैल, 1962—16 मार्च, 1967
डा. नीलम संजीव रेड्डी	17 मार्च, 1967—19 जुलाई, 1969
डा. गुरदयाल सिंह ढिल्लन	9 अगस्त, 1969—1 दिसंबर, 1975
बलिराम भगत	5 जनवरी, 1976—25 मार्च, 1977
डा. नीलम संजीव रेड्डी	5 जनवरी, 1976—25 मार्च, 1977
के. एस. हेगड़े	21 जुलाई, 1977—21 जनवरी, 1980
डा. बलराम जाखड़	22 जनवरी, 1980—18 दिसंबर, 1989
रविराव	19 दिसंबर, 1989—9 जुलाई, 1991
शिवराज पाटिल	10 जुलाई, 1991—

उपाध्यक्ष

जब कभी अध्यक्ष अनुपस्थित हो तो उसके स्थान पर उपाध्यक्ष सदन की अध्यक्षता करता है और इस प्रकार अध्यक्षता करते हुए वह प्रक्रिया नियमों के अधीन सदन में अध्यक्ष की सब शक्तियों का प्रयोग करता है।[23] उपाध्यक्ष उस बजट समिति का सभापति होता है जो सचिवालय के बजट प्रस्ताव सामान्य बजट में सम्मिलित करने के लिए वित्त मंत्रालय को भेजे जाने से पूर्व उनका अनुमोदन करती है। इसके अतिरिक्त, अध्यक्ष के समान, लोक सभा सचिवालय, उसके अधिकारियों और कर्मचारियों के संबंध में उपाध्यक्ष के न तो कोई कृत्य होते हैं, न कोई उत्तरदायित्व। इस प्रकार, उपाध्यक्ष पीठासीन उप अधिकारी होता है परंतु सचिवालय के या सदन के सर्वोच्च अधिकारी या प्रशासनिक प्रमुख के रूप में अध्यक्ष का कनिष्ठ अधिकारी नहीं होता।

सदन की बैठकों में अधिकांश समय सदन की अध्यक्षता उपाध्यक्ष करता है जबकि अध्यक्ष अपने कक्ष में अन्य संसदीय मामलों में व्यस्त रहता है। आमतौर पर, अध्यक्ष मध्याह्न पूर्व, विशेष रूप से प्रश्नकाल के दौरान और प्रश्नकाल के तुरंत बाद के अति कठिनाई के समय

पीठासीन रहता है। वह दिन में किसी समय जब यह देखे कि किसी विशेष महत्व वाले विषय पर चर्चा हो रही है या सदन में ऐसी विशेष स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उसकी उपस्थिति आवश्यक है तो सदन में आकर उसकी अध्यक्षता कर सकता है। जिन विचाराधीन मामलों के संबंध में उपाध्यक्ष विनिर्णय देता है वह उन मामलों में तो अंतिम होता है परंतु अध्यक्ष प्रक्रिया की निश्चितता एवं प्रथा की समरूपता की दृष्टि से, भविष्य में वैसी ही परिस्थितियों में पालन के लिए सामान्य मार्गदर्शन कर सकता है। कभी कभी उपाध्यक्ष अध्यक्ष के विनिर्णय के लिए कोई मामला रक्षित रख सकता है या निर्णय देने से पूर्व उससे परामर्श कर सकता है।

उपाध्यक्ष को सदन में बोलने का, उसके विचार विमर्शों में भाग लेने का और सदन के समक्ष किसी प्रस्ताव पर सदस्य के रूप में मतदान करने का अधिकार होता है परंतु ऐसा वह तभी कर सकता है जब पीठासीन न हो। जब उपाध्यक्ष स्वयं पीठासीन हो तो वह केवल ऐसी स्थिति में अपना मत दे सकता है जब किसी मामले के पक्ष और विपक्ष में बराबर मत दिये गये हों। दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में यदि अध्यक्ष अनुपस्थित हों तो ऐसी बैठक की उपाध्यक्ष अध्यक्षता करता है और उसमें अध्यक्ष की शक्तियों का वैसे ही प्रयोग करता है जैसे कि वह सदन के विचार विमर्श के दौरान करता है।

उपाध्यक्ष अपने दल की राजनीति में भाग तो ले सकता है परंतु व्यवहार में वह सदन में अपनी निष्पक्षता बनाए रखने के लिए जहां तक हो सके विवादास्पद मामलों से अपने को अलग रखता है।

उपाध्यक्ष के पद के साथ जो प्रथाएं और परंपराएं विकसित हुई हैं उनके अनुसार यदि वह किसी संसदीय समिति का सदस्य मनोनीत या नियुक्त किया जाए तो वह उसका सभापति भी नियुक्त हो जाता है। उपाध्यक्ष के पद के लिए सामान्यतया विपक्ष के किसी सदस्य को चुना जाता है।

उपाध्यक्ष के पद का, जिसे 1947 तक डिप्टी प्रेजीडेंट कहा जाता था, उद्भव केंद्रीय विधानमंडल के साथ ही हुआ। जो व्यक्ति उपाध्यक्ष के पद पर रहे हैं उनके नाम और निर्वाचन की तिथियां इस प्रकार हैं :

स्वतंत्रता-पूर्व

1.	सचिदानन्द सिन्हा	(3 फरवरी, 1921)
2.	सर जमेस्तजी जाजीभाय	(21 सितंबर, 1921)
3.	दीवान बहादुर टी. रंगाचारियर	(4 फरवरी, 1924)
4.	सर मोहम्मद याकूब	(30 जनवरी, 1927)
5.	एच.एस. गौड़	(11 जुलाई, 1930)
6.	शनमुखम चेट्टी	(19 जनवरी, 1931)
7.	अब्दुल मातिन चौधरी	(21 मार्च, 1934)

8.	अखिल चन्द्र दत्त	(5 फरवरी, 1936)[24]
9.	सर मोहम्मद यामीन खां	(5 फरवरी, 1946)

स्वतंत्रता-पश्चात

1.	अनन्तशयनम अय्यंगर	(30 मई, 1952—8 मई, 1956)
2.	सरदार हुकम सिंह	(20 मई, 1956—31 मार्च, 1962)
3.	कृष्णमूर्ति राव	(23 अप्रैल, 1962—3 मार्च, 1967)
4.	आर. के. खाडिलकर	(28 मार्च, 1967—1 नवंबर, 1969)
5.	जी.जी.स्वैल	(9 दिसंबर, 1969—6 जनवरी, 1977)
6.	गौड़े मुराहरि	(1 अप्रैल, 1977—22 अगस्त, 1979)
7.	जी. लक्ष्मणन	(2 फरवरी, 1980—31 दिसंबर, 1984)
8.	थाम्बी दुरै	(22 जनवरी, 1985—27 नवंबर, 1989)
9.	शिवराज पाटिल	(19 मार्च, 1990—13 मार्च, 1991)
10.	एस. मल्लिकार्जुनईया	(13 अगस्त, 1991—)

सभापति-तालिका

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष यदि दोनों ही किसी बैठक में उपस्थित न हों तो सभापति-तालिका के छह सदस्यों में से, जिन्हें अध्यक्ष समय समय पर मनोनीत करता है, कोई एक सदस्य सदन की अध्यक्षता करता है। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए कि अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सभापति-तालिका का कोई भी सदस्य सदन में उपस्थित न हो तो सभापति के रूप में कार्य करने के लिए सदन द्वारा सदन का कोई अन्य सदस्य चुन लिया जाता है और तब तक अध्यक्षता करता है जब तक कि सभापति-तालिका का कोई सदस्य या उपाध्यक्ष या अध्यक्ष पीठासीन होने के लिए सदन में नहीं आ जाता।

जैसाकि उपाध्यक्ष के मामले में होता है, सदन की अध्यक्षता करते समय किसी सभापति को भी वे सब शक्तियां प्राप्त होती हैं जो अध्यक्ष को प्राप्त हैं।[25] सभापति द्वारा जिस मामले में और जिस बात पर विनिर्णय दिया जाए वह उस मामले में या उस बात पर वैसा ही अंतिम और बंधनकारी होता है जैसे अध्यक्ष द्वारा दिया गया विनिर्णय होता है। परंतु सभापति कोई महत्वपूर्ण मामला अध्यक्ष के निर्णय के लिए रक्षित रख सकता है। जब तक सभापति पीठासीन हो तब उसके आचरण की निंदा करना सदन की अवमानना है; उसे पूरा सम्मान दिया जाना अनिवार्य है जो सदन के पीठासीन अधिकारी को दिया जाना होता है।

सभापति सदन की सब चर्चाओं में पूरी तरह भाग लेने और विवादास्पद मामलों सहित सदन के समक्ष आने वाले सब मामलों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए मुक्त होता है। वह अपने दल की बैठकों में उपस्थित होता है और सामान्यतया अपने दल का सक्रिय सदस्य होता है। अध्यक्ष सभापति-तालिका के लिए सदस्य सदा दोनों पक्षों में से चुनता है, सत्तारूढ़

दल में से और विपक्षी दलों में से भी। सभापति-तालिका के सदस्य की पदावधि सामान्यतया एक वर्ष की होती है परंतु एक ही व्यक्ति को बार बार मनोनीत किया जा सकता है। यह चयन केवल अध्यक्ष करता है परंतु चयन करने से पूर्व वह सदन के राजनीतिक दलों के नेताओं से परामर्श कर सकता है।

महासचिव

सदन का तीसरा महत्वपूर्ण अधिकारी महासचिव होता है। वह सभी संसदीय कृत्यों और क्रियाकलापों में और प्रक्रिया एवं प्रथा संबंधी सभी मामलों में अध्यक्ष का, सदन का और सदस्यों का सलाहकार होता है। एक स्थायी अधिकारी के रूप में जो सभा पटल का प्रमुख अधिकारी होता है और परिवर्तनशील विभिन्न सदनों और अध्यक्षों के बीच निरंतर कड़ी का काम करता है, महासचिव संसदीय प्रथाओं एवं परंपराओं का रक्षक होता है और पहले सदनों, पीठासीन अधिकारियों और स्वयं अपने पूर्वाधिकारियों की संचित बुद्धिमत्ता एवं अनुभव का भंडार होता है।

महासचिव अपने अधिकार से बहुत से विधायी, प्रशासनिक एवं कार्यपालिका कृत्यों का निर्वहन करता है और सदस्यों को सेवाएं एवं सुविधाएं उपलब्ध कराता है। वह आरक्षीगण संगठन और संसद संपदा के परिसर में सुरक्षा के लिए सर्वोच्च प्रभारी अधिकारी होता है। संसद ग्रंथालय, शोध, संदर्भ, प्रलेखन और सूचना सेवाएं भी उसी के अधीन कार्य करती हैं। वह संसद भवन, संसदीय सौध और संसद की अन्य संपत्तियों के रख रखाव और मरम्मत के लिए उत्तरदायी है। संसदीय संग्रहालय और अभिलेखागार के सर्वोच्च अधिकारी के रूप में वह संसद की विरासत का रक्षक होता है और सब संसदीय अभिलेखों का परीरक्षक। वह विधायी सेवाओं और सदन के सचिवालय का प्रमुख अधिकारी है और उसके प्रशासन के लिए उसमें अनुशासन बनाए रखने के लिए और यह सुनिश्चित करने के लिए उत्तरदायी होता है कि सदन और उसकी समितियों का सचिवीय कार्य समुचित ढंग से, कुशलतापूर्वक एवं सुचारु रूप से किया जाए। वह सब संसदीय समितियों को सचिवीय सहायता और कर्मचारी उपलब्ध कराता है और वह स्वयं उन्हें मंत्रणा देने के लिए उपलब्ध रहता है। सदस्यों और समितियों के लिए उसकी भूमिका मित्र, विचारक और मार्गदर्शक की होती है। विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य परामर्श लेने के लिए उसके पास आते हैं। काफी हद तक उसे निष्पक्षता की वही भूमिका निभानी होती है जो अध्यक्ष निभाता है। वह पूरी तरह जागरूक और तुरतबुद्धि अथवा शीघ्र निर्णय लेने वाला व्यक्ति होना चाहिए।

संसदीय कार्यों के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाचक्रों की पर्याप्त और नवीनतम जानकारी रखना और उसे उचित रूप से आत्मसात करना भी महासचिव के लिए अपेक्षित है। जो व्यक्ति महासचिव के पद पर आसीन होता है उसके लिए आवश्यक है कि वह प्रतिभावान हो और संसद के बहुमुखी कृत्यों में निपुण हो। जो कार्य उसे सौंपा जाता है वह इतना अधिक तकनीकी और जटिल स्वरूप का है कि उसे सभी श्रेणियों के अनेक योग्य और विद्वान अधिकारियों की सहायता आवश्यक होती है। कार्य का आयोजन इस रीति से किया जाता

है कि प्रत्येक इकाई संसदीय जीवन के किसी विषय विशेष या पहलू विशेष संबंधी कार्य करे और उसमें ऐसे प्रतिभा संपन्न कर्मचारी रखे जाएं जो तकनीकी तौर पर योग्य हों और जो अपने कर्तव्यों का निर्वहन कुशलतापूर्वक करें। यह देखना महासचिव का कर्तव्य है कि समय समय पर रिक्त होने वाले पदों को भरने के लिए पर्याप्त कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाए और संसदीय कार्य की कुशलता का एक उच्च स्तर सदा बना रहे। अतः सदन के सचिवालय के संगठन का रूप एवं स्वरूप तय करना महासचिव का पद धारण करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व और दृष्टिकोण पर काफी निर्भर करता है।

महासचिव राजनीति से कोई संबंध नहीं रखता। उसका दृष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य सदा पूर्णतया दलगत रहित और निष्पक्ष रहता है। उसे उन अधिकारियों में से चुना जाता है जिन्होंने सदन के सचिवालय में विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए संसद की सेवा में सराहनीय कार्य किया हो। उसे चुनने और नियुक्त करने का प्राधिकार अध्यक्ष को प्राप्त है। एक बार नियुक्त हो जाने पर वह निर्धारित सेवा-निवृत्ति की आयु, जो इस समय 60 वर्ष है, प्राप्त होने तक अबाध अपने पद पर बना रहता है। सदन में उसकी आलोचना नहीं की जा सकती और सदन में या सदन के बाहर उसके सदन संबंधी कार्यों पर चर्चा नहीं की जा सकती। वह केवल अध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी होता है। उसके लिए सेवा की सुरक्षा तथा स्वतंत्रता प्रदान करने की दृष्टि से और इस दृष्टि से पर्याप्त रक्षात्मक उपायों की व्यवस्था की गई है कि वह अपने कर्तव्यों का निर्वहन उत्साह से, निर्भीकता से, न्यायोचित ढंग से, निष्पक्ष ढंग से और सर्वोच्च जनहित में करे। लोक सभा सचिवालय पूर्णतया पृथक है और अध्यक्ष के नियंत्रणाधीन है ताकि संसद को स्वतंत्र परामर्श मिल सके और इसके निदेशों को किसी बाहरी हस्तक्षेप या आंतरिक दबाव के बिना उचित कार्यरूप दिया जा सके।

महासचिव, राष्ट्रपति की ओर से, सदन के अधिवेशन में उपस्थित होने के लिए सदस्यों को "आमंत्रण" जारी करता है, अध्यक्ष की अनुपस्थिति में विधेयकों को प्रमाणित करता है; सदन की ओर से संदेश भेजता है और प्राप्त करता है; सदन को संबोधित या सदन के लिए अभीष्ट सूचनाएं, याचिकाएं, दस्तावेज और अन्य पत्र प्राप्त करता है; सदन के समक्ष या उसकी समितियों के समक्ष पेश होने के लिए साक्षियों को समन जारी करता है; अध्यक्ष की ओर से सदस्यों, मंत्रियों तथा अन्यों के साथ पत्र व्यवहार करता है; दीर्घाओं के लिए प्रवेश-पत्र जारी करता है; सदन और उसके सचिवालय के वित्त एवं लेखाओं पर नियंत्रण रखता है; कार्य सूचियां, बुलेटिन और संशोधनों की सूचनाएं परिचालित करता है; सदन के जनरल, कार्यवाही सारांश और शब्दशः कार्यवाही-वृत्तांत तैयार कराता है; जिन विभिन्न विषयों में सदस्य रुचि रखते हों; उन्हें उनके बारे में जानकारी भेजने की व्यवस्था करता है; सदस्यों और अन्य लोगों के उपयोग के लिए बहुत-सी पत्रिकाओं और अन्य संसदीय प्रकाशनों का संपादन करता है और उन्हें प्रकाशित करता है, अर्थात सारांश, पत्रिकाएं, पुस्तिकाएं, तथ्यात्मक-पत्र, पृष्ठाधार, शोध पत्र, पुस्तकें आदि। संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण केंद्र होने के नाते, वह नए संसद सदस्यों और राज्य विधानमंडल के नये सदस्यों, भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा और अन्य अखिल भारतीय सेवाओं के परिवीक्षाधीन अधिकारियों के लिए, भारत सरकार के वरिष्ठ

अधिकारियों के लिए, विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और देश एवं विदेशों से आए संसदीय अधिकारियों के लिए संसदीय संस्थाओं और प्रक्रियाओं में अध्ययन पाठ्यक्रम, विचार गोष्ठियां, प्रशिक्षण और प्रबोधन कार्यक्रम इत्यादि आयोजित करता है। भारतीय संसदीय दल के सचिव के नाते वह राष्ट्रमंडल संसदीय संघ और अंतर्राष्ट्रीय संघ की भारत शाखा की गतिविधियों का भी आयोजन करता है। वह संसदीय प्रतिनिधि मंडलों के साथ विदेशों में जाता है और संसद के अनेक अन्य कार्य करता है। जब राष्ट्रमंडल अध्यक्षों का देश में सम्मेलन होता है तो लोक सभा का महासचिव उस सम्मेलन का पदेन महासचिव होता है। वह भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन के लिए, भारत में विभिन्न विधानमंडलों और संसदीय समितियों के सभापतियों के सम्मेलनों के लिए सचिवीय कर्तव्यों के विवरण तैयार करने और आयोजन के लिए उत्तरदायी होता है और भी विविध क्रियाकलापों के लिए प्रबंध करने हेतु जैसे विदेशी प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा सदस्यों के समक्ष भाषण, स्वागत समारोह, संसदीय सद्भावना मिशन विदेशों में भेजने या विदेशों से भारत आने वाले ऐसे मिशनों का स्वागत करने से संबंधित कार्य करने के लिए भी उत्तरदायी होता है।

लोक सभा के महासचिव के इन विस्तृत कर्तव्यों और अपने अधिकार से निर्वहन किए जाने वाले दायित्वों के अतिरिक्त, बहुत से अन्य कृत्य भी हैं जिनका वह निर्वहन करता है जिन्हें वह अध्यक्ष की ओर से और उसके नाम से करता है। अध्यक्ष और महासचिव का आपसी संबंध एक विशेष प्रकार का संबंध है जिसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, प्रश्नों, प्रस्तावों आदि की विभिन्न प्रकार की सूचनाओं की अनुमति देने या अनुमति न देने के मामले में अध्यक्ष की जिन शक्तियों का प्रयोग महासचिव करता है, प्रत्यायोजित शक्तियां नहीं हैं। वास्तव में, अध्यक्ष की ये शक्तियां प्रत्यायोजित की ही नहीं जा सकतीं। ये शक्तियां केवल अध्यक्ष में निहित हैं और वही इनका प्रयोग कर सकता है। इसलिए, यही कहा जा सकता है कि अध्यक्ष स्वयं विभिन्न सूचनाओं आदि की अनुमति दे रहा है या नहीं दे रहा है। जो कुछ उसके नाम से, उसकी ओर से और उसके सामान्य निदेशों के अधीन किया जाता है उसकी वह स्वयं पूरी जिम्मेदारी लेता है।

राज्य सभा का सभापति

भारत का उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होता है। वह उपराष्ट्रपति होने के नाते राज्य सभा की अध्यक्षता करता है। जब उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है या जब वह राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है तब वह राज्य सभा के सभापति-पद के कर्तव्यों का निर्वहन नहीं करता। उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है और ऐसे निर्वाचन में मतदान गुप्त होता है। उपराष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों में से किसी सदन का या किसी राज्य के विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं होता। वह अपना पद ग्रहण करने की तिथि से पांच वर्षों की अवधि तक या अपना पद त्याग करने तक या राज्य सभा के ऐसे संकल्प द्वारा अपने पद से हटाए जाने तक जिसे राज्य सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों

के बहुमत से पास न किया हो और जिससे लोक सभा सहमत हो गई हो, पदधारण करता है।[26]

पीठासीन अधिकारी के रूप में और अपने सदन के सचिवालय के प्रमुख के रूप में राज्य सभा के सभापति के कृत्य और कर्तव्य लगभग वही हैं जो लोक सभा में अध्यक्ष के हैं।

उपसभापति

राज्य सभा का उपसभापति, जो राज्य सभा द्वारा अपने सदस्यों में से चुना जाता है, राज्य सभा का सदस्य बने रहने तक या अपना पद त्याग करने तक या राज्य सभा के ऐसे संकल्प द्वारा अपने पद से हटाए जाने तक जिसे राज्य सभा के सदस्यों के बहुमत ने पास किया हो, पद धारण करता है।

उपसभापति, राज्य सभा के पीठासीन अधिकारी के रूप में, सभी प्रकार से उन्हीं कर्तव्यों, कृत्यों और शक्तियों का प्रयोग करता है जैसे कि लोक सभा का उपाध्यक्ष करता है।[27]

सभापति-तालिका और महासचिव

राज्य सभा का सभापति सदस्यों की एक तालिका बनाता है जिसके सदस्यों को वाईस चैयरमैन कहा जाता है, उनमें से एक सदस्य सभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में राज्य सभा की बैठक की अध्यक्षता करता है। राज्य सभा का वाईस चैयरमैन और महासचिव राज्य सभा के संबंध में लगभग उन्हीं कृत्यों और कर्तव्यों का पालन करते हैं जिनका पालन लोक सभा के संबंध में सभापति-तालिका के सदस्य और महासचिव करते हैं।[28]

संदर्भ

1. अनु. 64, 89 और 93; नियम 9
2. अनु. 94, 96, 100(1) और 112(3) (ख)
3. श्री एन. संजीव रेड्डी ही ऐसे अध्यक्ष हुए हैं (1967-69 के दौरान) जिन्होंने अपने दल से पद त्याग किया था।
4. इस विषय पर चर्चा के लिए *देखिए* सुभाष काश्यप, अध्यक्ष की भूमिका, **लोकतंत्र समीक्षा**, जुलाई-सितंबर, 1969 (अंक 3), सांविधानिक तथा संसदीय अध्ययन-संस्थान, नयी दिल्ली
5. नियम 389
6. नियम 378
7. नियम 350
8. नियम 353, 356 और 380
9. नियम 222 और 225
10. नियम 23, 246 और 247; अनु. 86 (2)
11. नियम 258 और 283
12. नियम 287, 330 और परिशिष्ट 2

13. अनु 110; नियम 96 (2)
14. अनु. 108 और 118(4); *देखिए* संसद के सदन (संयुक्त बैठकें तथा पत्राचार) नियम, 1952
15. नियम 386
16. अनु. 101 (3)
17. नियम 229-232
18. अनु. 98 और निर्देश 124 और 124 क
19. 1947 तक अध्यक्ष को प्रेजीडेंट कहा जाता था
20. पांचवीं विधान सभा की कार्यावधि 21.1.1935 से 8.2.1945 तक थी
21. छठी केंद्रीय विधान सभा 14 अगस्त, 1947 के पश्चात अस्तित्व में नहीं रही और भारतीय संविधान सभा को, जो 9.12.1946 से कार्यरत थी, देश के विधानमंडल के रूप में कार्य करने का अधिकार दिया गया।
22. अस्थायी संसद 17.4.1952 को अस्तित्व में नहीं रही। राष्ट्रपति ने श्री मावलंकर को ऐसे समय तक अध्यक्ष के कर्तव्यों का पालन करते रहने के लिए नियुक्त किया जब तक कि प्रथम लोक सभा का प्रथम अध्यक्ष विधिवत चुन नहीं लिया जाता।
23. अनु. 93-95 नियम 10
24. सभा की कार्यावधि युद्ध आदि के कारण चूंकि समय समय पर 1945 तक बढ़ाई जाती रही अतः श्री दत्त लगभग दस वर्षों तक पद पर बने रहे।
25. नियम 9 और 10
26. अनु. 64, 66, 67 और 89
27. अनु. 89-91
28. विस्तृत विवेचन के लिए *देखिए,* सुभाष काश्यप, **आफिस आफ द स्पीकर एंड स्पीकर्स आफ लोक सभा**, दिल्ली, 1991

7

प्रश्नकाल तथा ''शून्यकाल''

संसदीय प्रश्न एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा संसद प्रशासन पर निगरानी रखती है और इसका प्रयोग उन सब देशों में किया जाता है जहां प्रतिनिधि संसदीय लोकतंत्र की प्रणाली विद्यमान है। इस प्रणाली में सरकार अपनी प्रत्येक भूल चूक के लिए संसद के प्रति और संसद के द्वारा लोगों के प्रति उत्तरदायी होती है। प्रशासन का यह उत्तरदायित्व दो स्तरों पर होता है। सदन सामूहिक रूप से इस शक्ति का प्रयोग स्वयं और अपनी समितियों के माध्यम से भी करता है। व्यक्तिगत रूप से सदन के सदस्य इस अधिकार का प्रयोग, अन्य बातों के साथ साथ, संसदीय प्रश्नों के माध्यम से करते हैं। संसद सदस्यों को लोक महत्व के मामलों पर सरकार के मंत्रियों से जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न पूछने का अधिकार होता है। जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक गैर-सरकारी सदस्य का अंतर्निहित एवं निर्बाध संसदीय अधिकार है। संसद सदस्य के लिए लोगों के प्रतिनिधि के रूप में यह आवश्यक होता है कि उसे मूल उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए सरकार के क्रियाकलापों के बारे में जानकारी हो। अतः प्रश्न पूछने का मूल उद्देश्य लोक महत्व के किसी मामले पर जानकारी प्राप्त करना और तथ्य जानना है। प्रश्न यह जानने के लिए किए जाते हैं कि सरकार द्वारा घोषित और/अथवा संसद द्वारा अनुमोदित राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय नीतियों को उचित रूप से कार्यरूप दिया गया है या नहीं। प्रश्न विभिन्न विषयों के बारे में किए जाते हैं, अतः प्रश्नों के द्वारा प्रशासन के लगभग सभी पहलुओं की छानबीन हो जाती है।

दोनों सदनों में प्रत्येक बैठक के प्रारंभ में एक घंटे तक प्रश्न किए जाते हैं और उनके उत्तर दिए जाते हैं। इसे "प्रश्नकाल" कहा जाता है।[1] इस काल के दौरान भारत सरकार से संबंधित मामले उठाए जाते हैं और समस्याएं सरकार के ध्यान में लाई जाती हैं ताकि किसी स्थिति का सामना करने के लिए, लोगों की शिकायतें दूर करने के लिए या किसी प्रशासनिक त्रुटि या ज्यादती का समाधान करने के लिए सरकार कार्यवाही करे। अतः इस काल के दौरान सरकार का परीक्षण होता है। इसके अतिरिक्त, खोजी और अनुपूरक प्रश्न पूछकर यह जानने के लिए मंत्रियों का भी परीक्षण होता है कि वे अपने विभागों के कार्यकरण को कितना समझते हैं। कभी कभी मंत्रियों की त्रुटियों को या किन्हीं स्थितियों में उनके अकुशल कार्यकरण को

प्रकाश में लाने के लिए भी प्रश्न पूछे जाते हैं।

प्रश्नकाल संसद की कार्यवाहियों का सबसे अधिक दिलचस्प अंग है। लोगों के लिए, समाचारपत्रों के लिए और स्वयं सदस्यों के लिए कोई अन्य कार्य इतनी दिलचस्पी पैदा नहीं करता जितनी कि प्रश्नकाल पैदा करता है। इस काल के दौरान सदन का वातावरण इतना अनिश्चित होता है कि कभी अचानक तनाव का बवंडर उठ खड़ा होता है तो कभी कहकहे लगने लगते हैं। कभी कभी किसी प्रश्न पर होने वाले कटु तर्क-वितर्क से जो उत्तेजना पैदा होती है वह सदस्यों या मंत्रियों की हाजिर-जवाबी और विनोदप्रियता से दूर हो जाती है। कई सदस्य समय समय पर अपनी विनोदशीलता से प्रश्नकाल में जान डाल देते हैं। यदि प्रश्न सामयिक रुचि के महत्वपूर्ण मामलों से संबंधित हों, संक्षिप्त हों, सारगर्भित हों तो प्रश्नकाल उपयोगी, दिलचस्प और प्रायः सनसनीखेज हो जाता है। यही कारण है कि प्रश्नकाल के दौरान न केवल सदन कक्ष बल्कि दर्शक एवं प्रेस गैलरियां भी सदा लगभग भरी रहती हैं।

विभिन्न प्रकार के प्रश्न

संसद के दोनों सदनों में प्रश्न सामान्यतया मंत्रियों से अर्थात सरकारी सदस्यों से पूछे जाते हैं और वे तीन श्रेणियों के होते हैं, अर्थात तारांकित प्रश्न, अतारांकित प्रश्न और अल्प-सूचना प्रश्न। प्रश्न कभी कभी गैर-सरकारी सदस्यों से भी पूछे जा सकते हैं।

तारांकित प्रश्न : इन प्रश्नों का सदन में मौखिक उत्तर दिया जाता है। सदस्यों द्वारा ऐसे प्रश्नों के अनुपूरक प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं। ऐसे प्रश्नों को तारांकित प्रश्न इस कारण कहा जाता है कि इन पर तारांक लगाकर इनका विभेद किया जाता है।[2]

अतारांकित प्रश्न : ऐसे प्रश्नों का अतारांकित प्रश्न इस कारण कहा जाता है कि इन पर तारांक नहीं लगा होता। ऐसे प्रश्नों का उत्तर लिखित रूप से दिया जाता है न कि तारांकित प्रश्नों के उत्तर की तरह मौखिक रूप से। इसी कारण इस पर अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछे जा सकते।[3]

अल्प-सूचना प्रश्न : अल्प-सूचना प्रश्न वह प्रश्न है जो किसी अविलंबनीय लोक महत्व के मामले से संबंधित हो। यह साधारण प्रश्न के लिए निर्धारित दस दिन की अवधि से कम अवधि की सूचना देकर पूछा जा सकता है।[4]

ऐसा नहीं कि सदस्य जब चाहें, बिना पूर्व सूचना के, सदन में किसी मंत्री से प्रश्न पूछ सकते हैं। यदि ऐसा हो तो मंत्रिगण सदस्यों के प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर देने की स्थिति में नहीं होंगे। विभिन्न स्तरों से संगत जानकारी एकत्रित करने और सदन में मंत्री द्वारा दिए जाने के लिए सुस्पष्ट उत्तर तैयार करने के लिए संबद्ध विभाग को कुछ समय की आवश्यकता होती है। इसी प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के लिए दोनों सदनों में कार्य-संचालन तथा प्रक्रिया नियमों का उपबंध किया गया है कि कोई सदस्य प्रश्न की सूचना संबद्ध सदन के महासचिव को दे सकता है। जिस तिथि को प्रश्न का उत्तर मांगा जाए उस तिथि से ऐसी सूचना कम से कम दस दिन पूर्व और अधिक से अधिक इक्कीस दिन पूर्व दी जानी चाहिए।[5]

प्रश्न कैसे गृहीत किए जाते हैं

संसद के दोनों सदनों में पूछे जाने वाले प्रश्नों का चूंकि समाचारपत्रों में और लोगों में व्यापक प्रचार होता है और सरकार भी उन्हें गंभीर रूप में लेती है अतः यह स्वाभाविक ही है कि सदस्यों के प्रश्नों की प्रत्येक सूचना को गृहीत करने से पहले उसकी पूरी छानबीन की जाए। ऐसे प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं जो गलत जानकारी पर आधारित हों और जिनमें गलत निष्कर्ष निकाले गए हों जिनसे सरकार को या किसी व्यक्ति की सरकारी या निजी हैसियत से उसे अनावश्यक परेशानी हो सकती है। इस स्थिति से बचने के लिए, दोनों सदनों के नियमों में कुछ शर्तें निर्धारित की गई हैं जिनके अनुसार प्रश्न गृहीत किए जाते हैं।[6]

यदि कोई आरोपात्मक प्रश्न तथ्यों पर आधारित न हो और किसी वर्ग या संस्था के बारे में न होकर किसी व्यक्ति के बारे में हो तो सामान्यता उसे गृहीत नहीं किया जाता, क्योंकि एक बार यदि सार्वजनिक रूप से कोई आरोप लगा दिया जाता है तो, चाहे वह सिद्ध किया जाए या नहीं किया जाए, उसका ऐसा प्रभाव पड़ जाता है जिसका निराकरण नहीं किया जा सकता। ऐसा विशेष रूप से तब होता है जब आरोप ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध लगाया जाए जिसे सदन के समक्ष आने और अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर नहीं मिलता। ऐसे प्रश्नों के तथ्यात्मक आधार का पता लगाने के लिए गृहीत करने से पहले, उन्हें संबद्ध मंत्रालयों/विभागों के पास भेजा जा सकता है। कभी कभी सदस्यों से भी कहा जाता है कि वे प्रश्न में लगाए गए आरोप के समर्थन में सामग्री भेजें।

इसके अतिरिक्त, यदि किसी प्रश्न का विषय किसी न्यायालय के समक्ष या विधि के अधीन बनाए गए किसी अन्य न्यायाधिकरण या निकाय के समक्ष फैसले के लिए लंबित हो या किसी संसदीय समिति के विचाराधीन हो तो ऐसा प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं है। जिन देशों के साथ भारत के मित्रतापूर्ण संबंध हैं उनके बारे में अशिष्ट कथनों वाले प्रश्न अस्वीकृत कर दिए जाते हैं। इसी प्रकार व्यक्तियों के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्न अस्वीकृत कर दिए जाते हैं। परंतु यदि कोई प्रश्न उच्च पद वाले किसी व्यक्ति के बारे में हो या उसके द्वारा सिद्धांत या नीति का कोई महत्वपूर्ण मामला जनहित में उठाया गया हो तो उसे गृहीत किया जा सकता है। यह ध्यान देले वाली बात है कि प्रश्न किसी ऐसे मामले के बारे में नहीं होना चाहिए जो मूल रूप से भारत सरकार से संबंध नहीं रखता। ऐसे प्रश्न गृहीत नहीं किए जाते जिनमें तर्क, निष्कर्ष या मानहानिकारक कथन हों या जिनमें किसी व्यक्ति की सरकारी या सार्वजनिक हैसियत से नहीं बल्कि उसकी व्यक्तिगत हैसियत से उसके चरित्र या आचरण का उल्लेख हो, और ऐसे प्रश्न जिनमें जानकारी मांगने की बजाए जानकारी दी गई हो।

प्रश्न नियमों में उपबंधित शर्तों के अनुसार तारांकित या अतारांकित श्रेणी में रखे जाते हैं। सामान्यतया ऐसे प्रश्न लिखित उत्तर के लिए, अर्थात अतारांकित प्रश्नों के रूप में गृहीत किए जाते हैं जिनमें विस्तृत आंकड़े मांगे गए हों या जो स्थानीय रुचि के मामलों से संबंधित हों। इसी प्रकार, जो प्रश्न लोक महत्व के हों और जिन पर अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने की संभावना हो, उन्हें तारांकित प्रश्नों के रूप में मौखिक उत्तर के लिए रखा जाता है। परंतु यह अध्यक्ष के विवेकाधिकार की बात है वह जैसे उचित समझे किसी प्रश्न को मौखिक उत्तर

के लिए रखे या लिखित उत्तर के लिए।[7]

प्रश्नों की सूचनाओं की यह सुनिश्चित करने के लिए छानबीन किए जाने के पश्चात कि क्या वे प्रक्रिया के अनुकूल हैं और उनसे सुस्थापित करने के लिए संसदीय प्रथाओं का उल्लंघन नहीं होता, उन्हें जिस दिन उनका उत्तर दिया जाना हो उस दिन की मौखिक और लिखित उत्तर के लिए अलग अलग प्रश्न सूचियों में रखा जाता है।[8] सदन के समय और उसके द्वारा किए जाने वाले अन्य कार्य की दृष्टि से यह उपबंध किया गया है कि लोक सभा का कोई सदस्य तारांकित और अतारांकित श्रेणी के एक दिन में पांच से अधिक प्रश्न नहीं पूछ सकता। इसके अतिरिक्त एक दिन में एक ही सदस्य के राज्य सभा में अधिक से अधिक तीन तारांकित प्रश्न और लोक सभा में अधिक से अधिक एक तारांकित प्रश्न गृहीत किया जा सकता है। किसी एक दिन की तारांकित प्रश्न सूची में कुल 20 प्रश्न होते हैं।[9] लोक सभा में किसी एक दिन की अतारांकित प्रश्न सूची में अधिक से अधिक 230 प्रश्न होते हैं। राज्य सभा में ऐसी कोई सीमा नहीं है परंतु सामान्यतया किसी एक दिन की अतारांकित प्रश्न सूची में 200 से कम प्रश्न होते हैं।

प्रश्नों के उत्तर देने के लिए भारत सरकार के मंत्रालयों और विभागों और विभागों को पांच समूहों में अर्थात ए, बी, सी, डी और ई ग्रुपों में विभाजित किया गया है और क्रमशः सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार को प्रश्नों के उत्तर के लिए मंत्रालयों के इन ग्रुपों के लिए दिन नियत किए गए हैं। ग्रुप इस प्रकार बनाए जाते हैं कि प्रत्येक मंत्री के लिए प्रश्नों के उत्तर देने के लिए लोक सभा में सप्ताह में एक दिन निश्चित हो और राज्य सभा में प्रश्नों के उत्तर के लिए सप्ताह में कोई अन्य दिन निश्चित हो। प्रश्न पूछने के लिए निर्धारित तिथि से कम से कम पांच दिन पहले अंतिम रूप से गृहीत प्रश्नों की सूची मंत्रालयों को भेज दी जाती है ताकि उनके उत्तर तैयार करने के लिए मंत्रालयों को पर्याप्त समय मिल सके।[10]

प्रश्न किस प्रकार पूछे जाते हैं

जिस सदस्य का प्रश्न किसी दिन के लिए तारांकित प्रश्न के रूप में गृहीत किया गया हो उसे अध्यक्ष द्वारा या सभापति द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, प्रश्न पूछने के लिए कहा जाता है। वह सदस्य अपने स्थान पर खड़ा हो जाता है और सूची से केवल प्रश्न की संख्या पढ़कर, न कि प्रश्न का पाठ पढ़कर, अपना प्रश्न पूछता है।[11] उसके बाद मंत्री प्रश्न का उत्तर देता है।

प्रश्नकाल के दौरान किसी प्रश्न पर या दिए गए उत्तर पर वाद विवाद की अनुमति नहीं होती। परंतु दिए गए उत्तर संबंधी किसी तथ्य के स्पष्टीकरण के प्रयोजन से अनुपूरक प्रश्नों या अनुवर्ती प्रश्नों के लिए अनुमति दी जा सकती है।[12] जिस सदस्य के नाम में प्रश्न दर्ज हो वह दो अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता है। अन्य सदस्य जिन्हें अध्यक्ष अनुमति दे एक एक पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं। अध्यक्ष सामान्यतया एक प्रश्न पूछने के लिए सत्ता पक्ष के सदस्य को और दूसरा प्रश्न पूछने के लिए विपक्ष के सदस्य को पुकारता है। प्रश्न के महत्व को देखते हुए समुचित संख्या में अनुपूरक प्रश्नों के लिए अनुमति देकर और अनुपूरक प्रश्न पूछने का

अवसर सदन के सब पक्षों के सदस्यों को देकर, अध्यक्ष इस अनूठे संसदीय उपाय की कुशलता सुनिश्चित करता है। इसके अतिरिक्त, प्रश्नकाल के सीमित समय में, वह प्रयास करता है कि यथासंभव अधिक से अधिक प्रश्न पूछे जाएं। प्रश्नकाल में अधिक से अधिक मौखिक प्रश्नों के उत्तर दिलाने के लिए अध्यक्ष का यह प्रयास रहता है कि किसी तारांकित प्रश्न पर सामान्यतया आठ मिनट से अधिक समय न लिया जाए। सही बात तो यह है कि यदि 60 मिनटों में 20 (प्रश्न लिए जाने हों तो एक प्रश्न पर औसतन तीन मिनट से अधिक नहीं लगने चाहिए। यदि) अध्यक्ष/सभापति यह महसूस करता है कि मामले पर पर्याप्त रूप से बात हो चुकी है तो वह उस सदस्य को पुकारता है जिसके नाम में सूची में अगला प्रश्न दर्ज हो। यह सिलसिला 12 बजे दोपहर तक चलता रहता है।

अनुभव यह रहा है कि प्रत्येक दिन की तारांकित प्रश्नों की सूची में दर्ज 20 प्रश्नों में से सदन में वास्तव में अधिक से अधिक पांच से सात प्रश्नों के ही उत्तर दिए जाते हैं। जहां तक शेष प्रश्नों का संबंध है, उनके लिखित उत्तर संबद्ध मंत्रियों द्वारा सभा पटल पर रखे गए मान लिए जाते हैं। इसी तरह, अतारांकित प्रश्नों के उत्तर भी प्रश्नकाल के अंत में सभा पटल पर रख दिए जाते हैं।

अल्प-सूचना प्रश्न

अविलंब लोक महत्व के किसी मामले के बारे में प्रश्न के मौखिक उत्तर के लिए सूचना पूरे दस दिन से कम अवधि में दी जा सकती है।[13] ऐसे प्रश्न की सूचना देने वाले सदस्य को अल्प-सूचना पर प्रश्न पूछने के कारण संक्षेप में बताने होते हैं। यदि अध्यक्ष/सभापति महसूस करता है कि मामला अविलंबनीय स्वरूप का है तो संबंधित मंत्री से पूछा जाता है कि क्या वह अल्प-सूचना पर उत्तर देने की स्थिति में है और यदि हां तो किस तिथि को। यदि मंत्री अल्प-सूचना प्रश्न का उत्तर देने के लिए सहमत हो जाता है तो उसके द्वारा बताई गई तिथि इस हेतु निर्धारित की जाती है। यदि मंत्री अल्प-सूचना पर प्रश्न का उत्तर देने से इंकार करता हो और अध्यक्ष/सभापति की यह राय हो कि वह प्रश्न इतना महत्वपूर्ण है कि सदन में उसका मौखिक उत्तर दिया जाना चाहिए तो वह निर्देश दे सकता है कि उस प्रश्न को उस दिन की मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में प्रथम प्रश्न के रूप में रख दिया जाए जिस दिन वह प्रश्न कम से कम पूरे दस दिन की शर्त पूरी करने पर रखा जा सकता हो। किसी दिन की प्रश्न सूची में ऐसा केवल एक ही प्रश्न रखा जा सकता है।

प्रश्नकाल के अंत में अल्प-सूचना प्रश्न, यदि कोई हो तो, लिया जाता है और उसे वैसे ही निबटाया जाता है जैसे मौखिक उत्तर के लिए किसी प्रश्न को निबटाया जाता है। अल्प-सूचना प्रश्न गृहीत करने के लिए शर्तें वही हैं जो मौखिक उत्तर के लिए साधारण प्रश्नों की हैं।

गैर-सरकारी सदस्यों से पूछे जाने वाले प्रश्न

प्रश्न किसी गैर-सरकारी सदस्य से भी पूछा जा सकता है यदि उस प्रश्न का विषय किसी ऐसे विधेयक या संकल्प से या सभा के कार्य के किसी अन्य विषय से संबंधित हो जिसके लिए वह सदस्य उत्तरदायी रहा हो।[14] ऐसे प्रश्न लोक सभा में कभी कभार ही पूछे जाते हैं और

हो सकता है कि अधिवेशन बीत जाने पर भी ऐसा प्रश्न पूछा न जाए। ऐसे प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। अल्प-सूचना प्रश्न किसी गैर-सरकारी सदस्य से नहीं पूछा जा सकता।

आधे घंटे की चर्चा

किसी ऐसे प्रश्न से उत्पन्न होने वाले मामलों पर जिसका उत्तर सदन में दिया जा चुका हो, आधे घंटे की चर्चा लोक सभा में सप्ताह में तीन दिन, अर्थात सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को, बैठक के अंतिम आधे घंटे में की जा सकती है। राज्य सभा में ऐसी चर्चा सभापति द्वारा इस प्रयोजन के लिए नियत किसी दिन समान्यतया 5 बजे म.प. से 5.30 म.प. तक की जा सकती है। ऐसी चर्चा का विषय पर्याप्त लोक महत्व का होना चाहिए जो हाल के किसी तारांकित, अतारांकित या अल्प-सूचना प्रश्न का विषय रहा हो और जिसके उत्तर के किसी तथ्यात्मक मामले का स्पष्टीकरण करना आवश्यक हो।[15]

जो सदस्य ऐसी चर्चा उठाना चाहता हो उसे उस दिन से कम से कम तीन दिन पूर्व, जब वह चर्चा उठाना चाहता हो, लिखित रूप में सूचना देनी होती है। अपनी सूचना में सदस्य के लिए उस मुद्दे या उन मुद्दों का उल्लेख करना अपेक्षित है जो वह उठाना चाहता हो। किसी दिन की बैठक के लिए आधे घंटे की चर्चा की केवल एक सूचना रखी जाती है। इसके अलावा, लोक सभा में एक सप्ताह में किसी एक सदस्य के नाम में केवल एक चर्चा रखी जाती है और कोई सदस्य एक ही अधिवेशन में दो से अधिक चर्चाएं नहीं उठा सकता। अध्यक्ष/सभापति प्रत्येक मामले में यह फैसला करता है कि क्या मामले के किसी तथ्यात्मक पहलू के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है और क्या वह इतने लोक महत्व का है कि उसे चर्चा के लिए रखा जाए।

ऐसी चर्चा के बारे में सदन में प्रक्रिया यह है कि जिस सदस्य ने चर्चा की शुरुआत की हो उसके द्वारा संक्षिप्त बयान दिए जाने के पश्चात, अधिक से अधिक चार अन्य सदस्य, जिन्होंने इस आशय की पूर्व सूचना दी हो, किसी तथ्यात्मक बात के अग्रेतर स्पष्टीकरण के प्रयोजन से एक एक प्रश्न पूछ सकते हैं। उसके पश्चात अंत में संबंधित मंत्री चर्चा का उत्तर देता है।

प्रश्नकाल का मूल्यांकन

यद्यपि परिभाषा के अनुसार प्रश्न पूछने का प्रयोजन जानकारी प्राप्त करना है, तथापि व्यवहार में, अधिकांश-प्रश्नों का प्रयोजन जानकारी उपलब्ध कराना है। कभी कभी सदस्य को किसी विशिष्ट मामले में उससे अधिक जानकारी हो सकती है जितनी कि सरकार देने के लिए तैयार हो। ऐसी स्थिति में प्रश्न का वास्तविक प्रयोजन प्रशासनिक कमियों को उजागर करना, सरकार को परेशानी में डालना या सरकार को किसी असुविधाजनक बात के लिए वचनबद्ध करना या किसी कार्यवाही के लिए वचनबद्ध करना हो सकता है। एक प्रयोजन यह भी हो सकता है कि सदस्य ऐसी जानकारी रखते हुए भी व्यापक प्रचार के लिए चाहता हो कि उसका सदन में उल्लेख किया जाए।

संसदीय प्रश्नों से एक ओर यह संभव हो जाता है कि सरकार लोगों की, जो अपने प्रतिनिधियों को प्रश्नों के लिए सामग्री उपलब्ध कराते हैं, शिकायतों, समस्याओं और आशयों से अवगत हो जाए तो दूसरी ओर इन प्रश्नों के द्वारा सरकार की गतिविधियों और कार्यक्रमों, इसकी नीतियों और विभिन्न मामलों पर दृष्टिकोण को और प्रशासन के कार्यकरण के ढंग को लोग जान सकते हैं। सरकारी कार्य करने वालों पर संसदीय प्रश्नों के रोकात्मक प्रभाव के अलावा, प्रश्नों के द्वारा कार्यपालिका जान सकती है कि नीतियों को किस तरह कार्यरूप दिया जा रहा है और आम व्यक्तियों को ये किस तरह प्रभावित कर रही हैं। आजकल प्रशासनिक व्यवस्था का इतना विस्तार हो रहा है कि राजनीतिक नेताओं को, कार्यपालिका को और प्रमुख प्रशासनिक अधिकारियों को भी यह सब जानने में कठिनाई हो रही है कि उनके नियंत्रणाधीन विभागों में क्या कुछ हो रहा है। इस दृष्टि से संसदीय प्रश्न निश्चय ही कार्यपालिका के लिए सहायक होते हैं क्योंकि वे ऐसी बातों को प्रकाश में लाते हैं जिनसे आम लोगों का महत्वपूर्ण रूप से संबंध रहता है।

यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि सदस्य प्रश्न पूछने के अधिकार का प्रयोग करने में भारी रुचि दिखाते रहे हैं। प्रश्नों की प्रक्रिया अपेक्षतया सरल और आसान होने के कारण, यह संसदीय प्रक्रिया के अन्य उपायों की तुलना में संसद सदस्यों में अधिकाधिक प्रिय होती जा रही है। जितनी लोक सभाएं अस्तित्व में रह चुकी हैं उनमें गृहीत किए गए ऐसे प्रश्नों की, जिनके उत्तर दिए गए, संख्या देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। (देखिये सारणी)

सारणी

अवधि	*सब श्रेणियों के गृहीत प्रश्नों की संख्या*
पहली लोक सभा (1952-57)	43,725
दूसरी लोक सभा (1957-62)	24,631
तीसरी लोक सभा (1962-66)	56,355
चौथी लोक सभा (1967-70)	93,538
पांचवीं लोक सभा (1970-76)	98,606
छठी लोक सभा (1977-79)	50,144
सातवीं लोक सभा (1980-84)	1,02,927
आठवीं लोक सभा (1985-89)	98,390
नवीं लोक सभा (1989-91)	21,550

पहली लोक सभा में गृहीत प्रश्नों की कुल संख्या 43,725 थी जो सातवीं लोक सभा में बढ़कर 1,02,927 हो गई। आठवीं लोक सभा में यह संख्या 98,390 और नवीं लोक सभा में 21,550 रही। यह भी देखा गया है कि अधिवेशनों के दौरान प्राप्त हुई प्रश्नों की सूचनाओं की संख्या

में से 50 से 70 प्रतिशत गृहीत किए जाते हैं परंतु सूचियों में शामिल किए जाने वाले तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की निर्धारित सीमा के कारण बजट अधिवेशन में केवल 33 प्रतिशत और मानसून तथा शरदकालीन अधिवेशनों में 30 से 45 प्रतिशत प्रश्न वास्तव में सूचियों में सम्मिलित हो पाते हैं। प्रति बैठक प्राप्त होने वाली प्रश्नों की सूचनाओं की औसत संख्या लगभग 600 बैठती है।

प्रश्नकाल का महत्व कुछ ऐसे उदाहरणों से पर्याप्त रूप से सिद्ध हो जाता है जबकि सतर्क सदस्यों द्वारा गंभीरता से प्रश्नों पर अनुवर्ती कार्यवाही करते रहने के कारण कानून के उल्लंघन, सरकार की नीतियों के उल्लंघन या सार्वजनिक धन के दुरुपयोग के मामलों में सरकार को जांच करनी पड़ी। उनमें से कुछ उदाहरण, जिनमें जांच कराई गई, इस प्रकार हैं : जीप कांड (1951), मूंदड़ा कांड (1957), आयात लाइसेंस कांड (1974) और इस्पात के सौदों की जांच का मामला और वनस्पति घी में गाय की चर्बी के प्रयोग का मामला। इन तथ्यों से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि प्रश्नों की प्रक्रिया कितनी प्रभावी है और प्रश्नकाल कितना उपयोगी है।

"शून्यकाल" (जीरो आवर)

संसद के दोनों सदनों में प्रश्नकाल के ठीक बाद का समय आमतौर पर "शून्यकाल" अथवा जीरो आवर के नाम से जाना जाने लगा है। यह एक से अधिक अर्थों में शून्यकाल होता है। 12 बजे दोपहर का समय न तो मध्याह्न पूर्व का समय होता है और न ही मध्याह्न पश्चात का समय। "शून्यकाल" 12 बजे प्रारंभ होने के कारण इसे इस नाम से जाना जाता है। इसे "आवर" भी कहा गया क्योंकि पहले "शून्यकाल" पूरे घंटे तक चलता था, अर्थात 1 बजे म.प. पर सदन के मध्याह्न भोजन के लिए स्थगित होने तक। बाद में सातवीं और आठवीं लोक सभाओं में, उदाहरण के लिए, "शून्यकाल" सामान्यतया 5 से 15 मिनट तक ही चलता रहा। आठवीं लोक सभा में 'शून्य' कार्यवाही में अधिक से अधिक समय जो लगा वह 32 मिनट था। किंतु, अल्पकालिक नवीं लोक सभा में स्थिति एकदम बदल गई जब अध्यक्ष रवि राय ने इस नियम विरुद्ध "शून्यकाल" को न्यायसंगत और सम्माननीय बनाने का निर्णय लिया और उसे व्यवस्थित करना चाहा। नतीजा यह हुआ कि प्रायः "शून्यकाल" एक घंटे से कहीं अधिक तक चलता रहने लगा। वस्तुतया कभी कभी तो वह दो दो घंटे या उससे भी ज्यादा देर तक चला जिससे सदन की आवश्यक व्यवस्थित कार्यवाही के शुरू होने की प्रतीक्षा में बैठे मंत्रियों और सदस्यों को स्वाभाविक खीज की अनुभूति हुई।

यह कोई नहीं कह सकता कि इस काल के दौरान कौन-सा मामला उठ खड़ा हो या सरकार पर किस तरह का आक्रमण कर दिया जाए। नियमों में "शून्यकाल" का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है। "शून्यकाल" का यह नाम 1960 और 1970 की दशाब्दी के प्रारंभिक वर्षों में किसी समय समाचारपत्रों में तब दिया गया जब बिना पूर्व सूचना के अविलंबनीय लोक महत्व के विषय उठाने की प्रथा विकसित हुई। प्रश्नकाल के समाप्त होते ही सदस्यगण ऐसे

मामले उठाने के लिए खड़े हो जाते हैं जिनके बारे में वे महसूस करते हैं कि कार्यवाही करने में देरी नहीं की जा सकती, हालांकि इस प्रकार मामले उठाने के लिए नियमों में कोई उपबंध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रथा के पीछे यही विचार रहा है कि ऐसे नियम जो राष्ट्रीय महत्व के मामले या लोगों की गंभीर शिकायतों संबंधी मामले सदन में तुरंत उठाए जाने में सदस्यों के लिए बाधक होते हैं, वे निरर्थक हैं और उन्हें लोगों के प्रतिनिधियों की चिंता की मूल बातों और अधिकारों के आड़े नहीं आना चाहिए। आखिर, संसद एक राजनीतिक संस्था है जो लोगों के प्रतिनिधियों से बनती है और सदन को बिल्कुल नियमों के अनुसार ही चलाने का प्रयास निरर्थक हो सकता है। नियम सामान्य विनियमन एवं मार्गदर्शन के लिए होते हैं और उनमें समय समय पर उत्पन्न हो सकने वाली सभी संभव स्थितियों की पहले से परिकल्पना कदापि नहीं की जा सकती।

नियमों की दृष्टि से तथाकथित "शून्यकाल" एक अनियमितता है। मामले चूंकि बिना अनुमति के या बिना पूर्व सूचना के उठाए जाते हैं अतः इससे सदन का बहुमूल्य समय व्यर्थ जाता है और इससे सदन के विधायी, वित्तीय और अन्य नियमित कार्य का अतिक्रमण होता है। अनेक उत्तेजित सदस्यों के साथ बोलने से पीठासीन अधिकारी का काम बहुत कठिन हो जाता है। अतः अध्यक्ष और सदन नियमित कार्य में ऐसी बाधा को प्रोत्साहन न दें।

किंतु, जैसी स्थिति इस समय है उस से प्रतीत होता है कि "शून्यकाल" हमेशा के लिए स्थायी हो गया है। अध्यक्ष श्री पाटिल ने इसे विनियमित करने तथा इसकी समयावधि पर बड़ी चतुराई के साथ नियंत्रण करने की चेष्टा की है।

संदर्भ

1. नियम 32
2. नियम 36
3. नियम 39
4. नियम 54
5. नियम 33 और 34
6. नियम 41
7. नियम 44
8. नियम 45 मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची हरे कागज पर मुद्रित होती है और लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची सफेद कागज पर।
9. नियम 37(1)
10. नियम 35
11. नियम 48
12. नियम 46 और 50
13. नियम 54
14. नियम 40
15. नियम 55(1)

8

संसद में मामले उठाने की प्रक्रिया

प्रश्नों के उत्तर पाने में दस दिन से अधिक का समय लग जाता है, सिवाय अल्प-सूचना प्रश्नों के जो संबंधित मंत्री की सहमति से ही पूछे जा सकते हैं। प्रश्नों की प्रक्रिया ऐसी है कि सिवाय आधे घंटे की चर्चा के, उन पर विस्तृत चर्चा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। कभी कभी अनायास ही, अप्रत्याशित रूप से, कोई समस्या उत्पन्न हो सकती है। ऐसे मामले में यह हो सकता है कि उस समस्या को सरकार के ध्यान में लाने के लिए बहुत पहले सूचना देना संभव न हो। अविलंबनीय लोक महत्व के ऐसे मामले उठाने के लिए बहुत पहले सरकार और संसद द्वारा तुरंत ध्यान दिया जाना अपेक्षित हो, संसद सदस्य के लिए अनेक अतिरिक्त प्रक्रियागत उपाय उपलब्ध हैं, जैसे स्थगन प्रस्ताव (एडजॉर्नमेंट मोशन), ध्यानाकर्षण सूचनाएं (कॉलिंग एटेंशन), अल्पकालीन चर्चाएं (शार्ट डुरेशन डिस्कशन) और नियम 377 के अधीन उल्लेख। इसी तरह सदस्य सार्वजनिक रुचि के मामलों पर चर्चाएं उठाने के लिए विभिन्न प्रस्ताव (मोशन) और संकल्प (रेजोल्यूशन) पेश कर सकते हैं और सदन का तथा सरकार का ध्यान उनकी ओर दिला सकते हैं। अविलंबनीय लोक महत्व के मामले उठाने और संसद में वाद विवाद आरंभ करने के लिए उक्त उपायों के प्रयोग के लिए दोनों सदनों के प्रक्रिया नियमों में शर्तें दी गई हैं।

स्थगन प्रस्ताव

सामान्यतया सदन कार्यसूची में दर्ज मदों के अनुसार ही काम निबटाता है और कार्यसूची में सम्मिलित न किया गया कोई कार्य अध्यक्ष की अनुमति के बिना नहीं करता।[1] तथापि अवलिंबनीय लोक महत्व का कोई मामला, यदि अध्यक्ष उस पर सहमत हो जाए तो, नियमित कार्य को रोक कर स्थगन प्रस्ताव के द्वारा सदन के समक्ष लाया जा सकता है।[2]

स्थगन प्रस्ताव पेश करने का मूल उद्देश्य हाल के किसी अविलंबनीय लोक महत्व के मामले की ओर, जिसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं और जिसके संबंध में उचित सूचना देकर कोई प्रस्ताव या संकल्प पेश करने से बहुत देर हो सकती है, सदन का ध्यान दिलाना है। जो मामला उठाने का विचार हो वह ऐसा होना चाहिए कि लोगों को और उनकी सुरक्षा को प्रभावित

करने वाली कोई गंभीर बात हो गई हो और सदन के लिए अपना नियमित कार्य रोक कर उसकी ओर तुरंत ध्यान देना आवश्यक हो गया हो। अतः स्थगन प्रस्ताव एक असाधारण प्रक्रिया है जिसे गृहीत कर लिए जाने पर "अविलंबनीय लोक महत्व के निश्चित मामले" पर चर्चा करने के लिए सदन का नियमित कार्य रोक देना होता है। स्थगन प्रस्ताव के आवश्यक तत्व इस प्रकार हैं :

(क) मामला निश्चित स्वरूप का हो;
(ख) उसका आधार तथ्यात्मक हो;
(ग) मामला अविलंबनीय हो;
(घ) वह लोक महत्व का हो;

इस प्रकार देश की राजनीतिक स्थिति, अराजकता, बेरोजगारी, रेल दुर्घटनाएं और विमान दुर्घटनाएं, मिलों का बंद हो जाना, सामान्य अंतरार्ष्ट्रीय स्थिति, स्थगत प्रस्ताव के लिए उचित विषय नहीं है। इसी प्रकार परिवहन मोटर गाड़ियों की कमी, अपहरण के मामले, डकैती, विस्फोट, सांप्रदायिक तनाव भी ऐसे प्रस्ताव के लिए उचित विषय नहीं माने गए हैं। इस प्रस्ताव के द्वारा कोई विशेषाधिकार का प्रश्न, किसी विशिष्ट प्रस्ताव के अधीन उठाया जाने वाला प्रश्न, कोई न्यायालय में विचाराधीन मामला और ऐसा कोई मामला भी नहीं उठाया जाना चाहिए जिस पर उसी अधिवेशन में चर्चा हो चुकी हो।[3] ऐसे प्रस्ताव के विषय का संबंध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारत सरकार के आचरण या उसकी किसी त्रुटि से अवश्य होना चाहिए। परंतु यदि राज्य के अधिकार क्षेत्र का कोई विषय राज्य में संवैधानिक घटना से संबंधित हो या अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों या समाज के कमजोर वर्गों पर अत्याचार से संबंधित हो तो गुणावगुणों के आधार पर उसे गृहीत करने के लिए विचार किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, नीचे कुछ विषय दिए गए हैं जिन पर स्थगन प्रस्ताव गृहीत किए गए और चर्चा भी हुई :

1. दिल्ली में नकली शराब पीने के कारण आठ व्यक्तियों की मौत और अनेक राज्य व्यक्तियों का रोगग्रस्त हो जाना और इससे उत्पन्न गंभीर स्थिति;
2. कुतुब मीनार दुर्घटना जिसमें 45 लोग मारे गए;
3. पंजाब में उग्रवादियों की गतिविधियों से उत्पन्न गंभीर स्थिति और इस मामले को हल करने में सरकार की विफलता;

जो सदस्य स्थगन प्रस्ताव पेश करना चाहता हो उसके लिए अपेक्षित है कि वह जिस दिन प्रस्ताव पेश करना चाहता हो उस दिन 10.00 बजे म.पू. तक प्रस्ताव की सूचना अध्यक्ष को, संबंधित मंत्री को और महासचिव को दे।[4] यदि प्रथम दृष्टया अध्यक्ष का समाधान हो जाए कि वह मामला नियमानुकूल है तो वह प्रस्ताव पेश करने के लिए अपनी सम्मति प्रदान कर सकता है। प्रश्नकाल के बाद, अध्यक्ष संबंधित सदस्य से कहता है कि वह प्रस्ताव पेश करने के लिए सदन की अनुमति मांगे। यदि अनुमति दिए जाने पर आपत्ति की जाए जो अध्यक्ष उन सदस्यों से जो अनुमति दिए जाने के पक्ष में हों अपने स्थानों पर खड़े

होने के लिए कहेगा और तदनुसार यदि कम से कम पचास सदस्य खड़े हों तो वह घोषणा करेगा कि अनुमति दी जाती है।[5]

प्रस्ताव पेश करने के लिए सदन की अनुमति मिल जाने के बाद, प्रस्ताव औपचारिक रूप से गृहीत हुआ माना जाता है। किसी गृहीत स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा सामान्यतया 16.00 बजे म. पू. पर आरंभ होती है और ढाई घंटे तक, अर्थात 18.30 बजे म.पू. तक या उसके बाद चलती है।[6] चर्चा प्रस्तावक द्वारा यह प्रस्ताव पेश किए जाने पर आरंभ होती है "कि सभा अब उपस्थित हो"। प्रस्ताव पर प्रस्तावक और अन्य सदस्यों के बोल चुकने के पश्चात मंत्री बोलता है और अंत में प्रस्तावक को चर्चा का उत्तर देने का अधिकार होता है। तत्पश्चात प्रस्ताव मतदान के लिए रखा जाता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि ऐसे प्रस्ताव पर चर्चा जब आरंभ हो जाए तो उसे निबटाए जाने तक सदन को स्थगित करने की शक्ति अध्यक्ष को प्राप्त नहीं है क्योंकि उस समय यह शक्ति सदन में निहित रहती है।

यदि कोई स्थगन प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है तो सदन अपना कार्य पुनः आरंभ कर देता है जो उस प्रस्ताव के कारण रुक गया था। दूसरी ओर, यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो उससे सरकार की निंदा मानी जाती है। यद्यपि उससे सरकार अपदस्थ नहीं होती तथापि उससे यह सिद्ध हो जाता है कि जो सरकार स्थगन प्रस्ताव पर प्रतिकूल मत को रोकने में विफल रही है वह मंत्रिपरिषद में "अविश्वास के प्रस्ताव" के परिणाम से बच नहीं सकेगी। किसी स्थगन प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने में चूंकि सरकार की निंदा का तत्व होता है अतः राज्य सभा इस प्रक्रिया का प्रयोग नहीं करती। यह देखा गया है कि स्थगन प्रस्ताव की प्रक्रिया का प्रयोग कभी कभार ही किया जाता है। उदाहरणार्थ, सातवीं लोक सभा की कार्यावधि के दौरान प्राप्त हुई स्थगन प्रस्तावों की 5762 सूचनाओं में से केवल 149 सूचनाएं सदन के समक्ष लाई गई और अंत में उनमें से केवल 24 सूचनाएं गृहीत हो सकीं और उन पर चर्चा हो सकी और उनमें से कोई भी प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ। आठवीं लोक सभा में 1801 सूचनाओं में से 4 विषयों पर 80 गृहीत हुईं और नवीं लोक सभा में 375 सूचनाएं प्राप्त हुईं और 9 पर चर्चा हुई।

ध्यानाकर्षण सूचनाएं

ध्यानाकर्षण सूचनाओं के लिए उपबंध पहली बार वर्ष 1954 में किया गया। उससे पूर्व, किसी महत्वपूर्ण और अविलंबनीय मामले को उठाने की स्पष्ट प्रक्रिया की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। स्थगन प्रस्ताव, जो सरकार के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव होता है, लाने की प्रक्रिया विद्यमान सवैधानिक ढांचे में सीमित स्वरूप की थी। अतः यह विचार किया गया कि कोई ऐसी प्रक्रिया बनाई जाए जिससे सदस्यों को सरकार का ध्यान अविलंबनीय मामलों की ओर दिलाने का अवसर मिल सके।

आधुनिक संसदीय प्रक्रिया में, ध्यानाकर्षण सूचनाओं के लिए प्रक्रिया नियमों में व्यवस्था करने का विचार केवल भारत की देन है। इसमें उत्तर के लिए प्रश्नों, अनुपूरक प्रश्नों और संक्षिप्त टिप्पणियों का सम्मिश्रण है जिसमें सभी दृष्टिकोण संक्षेप में और स्पष्टतया व्यक्त

किए जाते हैं और सरकार को अपनी बात कहने का पर्याप्त अवसर मिलता है। कभी कभी इससे सदस्यों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सरकार की आलोचना करने और किसी महत्वपूर्ण मामले में सरकार की विफलता या उसकी अपर्याप्त कार्यवाही को उजागर करने का अवसर मिलता है।

कोई सदस्य, अध्यक्ष/सभापति की पूर्व अनुमति से, अविलंबनीय लोक महत्व के किसी मामले की ओर किसी मंत्री का ध्यान दिलाता है और उससे अनुरोध करता है कि वह उस मामले पर एक वक्तव्य दे।[7] मंत्री संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है या बाद की किसी तिथि को वक्तव्य देने के लिए समय मांग सकता है।

ध्यानाकर्षण सूचनाएं देने के लिए सदस्यों का मुख्य स्रोत दैनिक समाचारपत्र होते हैं। कभी कभी वे किसी सदस्य की निजी जानकारी के आधार पर या उसके अपने निर्वाचकों के साथ हुए पत्र व्यवहार के आधार पर दी जा सकती है।

ध्यानाकर्षण सूचनाएं सदस्यों द्वारा लिखित रूप से 10.00 म.पू. तक देनी होती हैं। कोई सदस्य किसी बैठक के लिए दो या दो से अधिक सूचनाएं नहीं दे सकता। एक ही विषय पर एक से अधिक सदस्यों द्वारा सूचनाएं दी जा सकती हैं, परंतु कार्यसूची में अधिक से अधिक पांच सदस्यों के नाम दर्ज किए जाते हैं। अध्यक्ष सूचनाओं को देखता है और आगामी दिन सदन की बैठक में संबंधित मंत्री द्वारा वक्तव्य दिए जाने के लिए उनमें से एक सूचना का चयन करता है। कुछ मामलों में, अध्यक्ष एक बैठक के लिए दो सूचनाएं चुन सकता है। परंतु यदि अध्यक्ष का विचार हो कि मामला इतना अविलंबनीय है कि मंत्री द्वारा उसी दिन वक्तव्य दिया जाना चाहिए तो वह अपने विवेकाधिकार से, ध्यानाकर्षण को उसी दिन लिए जाने की अनुमति दे सकता है जिस दिन उसकी सूचनाएं दी गई हों। ध्यानाकर्षण सूचनाओं को एक दिन या इससे अधिक समय पूर्व गृहीत किए जाने के पीछे विचार यह है कि ऐसा करने से संबंधित मंत्री को उठाए जाने वाले मामले के बारे में तथ्य एकत्रित करने और समय पर वक्तव्य तैयार करने का पर्याप्त समय मिल जाए।

मंत्रियों का ध्यान दिलाने के लिए एक बैठक में दो से अधिक सूचनाएं नहीं ली जा सकतीं। ऐसे वक्तव्य पर वाद विवाद नहीं होता परंतु ऐसे प्रत्येक सदस्य को जिसका नाम कार्यसूची में दर्ज हो, स्पष्टीकरण के लिए एक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है। अतः ध्यानाकर्षण प्रस्ताव का मुख्य प्रयोजन यह है कि किसी अविलंबनीय स्वरूप के मामले पर मंत्री प्राधिकृत वक्तव्य दे। इस प्रक्रिया में सरकार की निंदा अंतर्ग्रस्त नहीं होती क्योंकि न तो इस प्रस्ताव पर नियमित रूप से चर्चा होती है और न ही मतदान होता है।

जिन विषयों पर मंत्रियों से वक्तव्य देने के लिए कहा गया है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं: भारत के किसी भाग में उपद्रव; सीमावर्ती झगड़े; रेल दुर्घटनाएं; सरकारी उपक्रमों का बंद हो जाना; न्यायालयों द्वारा दिए गए ऐसे फैसले जिनमें मंत्रालयों या केंद्रीय सरकार के अधिकारियों को प्रभावित करने वाली टिप्पणियां की गई हों; शत्रु के विमानों द्वारा वायु सीमा क्षेत्र का उल्लंघन; पत्तनों, बंदरगाहों, विमान कंपनियों, रेलवे तथा अन्य सार्वजनिक उपयोग

की सेवाओं में हड़तालें, विदेशों में रहने वाले भारतीयों की स्थिति; गंभीर खाद्यान्न, सूखे या बाढ़ की स्थिति, इत्यादि। मामले के अविलंबनीय स्वरूप और लोक महत्व को देखते हुए किसी मामले पर ध्यानाकर्षण सूचना को अध्यक्ष द्वारा अपने विवेकाधिकार से गृहीत किया जाता है।

ध्यानाकर्षण की प्रक्रिया से संसद सरकार को सतर्क रख सकती है, आम महत्व के किसी विशिष्ट मामले में तुरंत सरकार से स्पष्टीकरण मांग सकती है और ऐसी स्थिति पैदा कर सकती है जिससे सरकार तथ्य या अपना फैसला बताए या इस विचार और भावना से मामले में प्रभावी कार्यवाही करे कि उसे सदन का समर्थन प्राप्त है। यह एक ऐसे महत्वपूर्ण मामले को उठाने, उस पर चर्चा करने और निष्कर्ष पर पहुंचने का संक्षिप्त एवं तात्कालिक उपाय है जिसमें सूचना देने वाले सदस्यों को, दल के सचेतक (ह्विप) के बिना और किसी औपचारिक या विशिष्ट प्रस्ताव पर मत विभाजन द्वारा दुखद निर्णय पर पहुंचे बिना, समान रूप से भाग लेने का अधिकार होता है। इसमें कोई विशिष्ट निष्कर्ष रिकार्ड नहीं किए जाते। सारे सदन में भावुकता का वातावरण बन जाता है और प्रत्येक सदस्य लघु चर्चा का अपनी समझ से जैसे चाहे अर्थ लगा सकता है और निष्कर्ष पर पहुंच सकता हैं।

अल्पकालीन चर्चाएं

एक गैर-सरकारी सदस्य के लिए अविलंबनीय लोक महत्व के मामले सदन के ध्यान में लाने का एक अन्य उपाय भी है, अर्थात अल्पकालीन चर्चा उठाना। वर्ष 1953 से पहले ऐसी चर्चाएं उठाने के लिए कोई उपबंध नहीं था। तब केवल प्रस्तावों और संकल्पों के लिए ही उपबंध था। कोई महत्वपूर्ण और अविलंबनीय मामले उठाने के लिए स्थगन प्रस्ताव के सिवाय सदस्यों के लिए अन्य कोई विकल्प नहीं था। स्थगन प्रस्ताव निंदा प्रस्ताव के स्वरूप का होने के कारण उसका बार बार उपयोग नहीं किया जा सकता था। इसलिए 1953 में एक प्रथा बनी जिसके अनुसार सदस्य ऐसे मामलों पर अल्पकालीन चर्चा उठा सकते थे। यह प्रक्रिया बाद में दोनों सदनों के प्रक्रिया नियमों में सम्मिलित कर ली गई।

ऐसी चर्चा उठाने के लिए मामले का संक्षेप में उल्लेख करते हुए उसके कारणों की स्पष्ट व्याख्या करते हुए सदस्य द्वारा महासचिव को सूचना देनी होती है। ऐसी सूचना पर संसद के कम से कम दो अन्य सदस्यों के हस्ताक्षर भी होने चाहिए।[8]

अध्यक्ष/सभापति प्राप्त सूचनाओं की ग्राह्यता के बारे में फैसला करता है। यदि उसका समाधान हो जाए कि मामला इतना अविलंबनीय है और पर्याप्त महत्व का है कि शीघ्र ही उसका सदन में उठाया जाना आवश्यक है और उस पर चर्चा के लिए शीघ्र कोई अवसर अन्यथा उपलब्ध नहीं है तो वह सूचना को गृहीत कर सकता है।[9] अल्पकालीन चर्चा की सूचना में, ग्राह्य होने के लिए, ऐसा मामला उठाया जाना चाहिए जिसका मूलतया केंद्रीय सरकार से संबंध हो, जो निराधार आरोपों पर आधारित न हो, जो काल्पनिक न हो और जिसमें अविलंबनीयता का तत्व हो। एक सूचना में केवल एक मामला उठाया जा सकता है।

अध्यक्ष अल्पकालीन चर्चा के लिए एक सप्ताह में दो बैठकें नियत कर सकता है। और ऐसी चर्चा के लिए बैठक की समाप्ति पर या उससे पहले अधिक से अधिक एक घंटा नियत कर सकता है।[10] चर्चा की तिथि कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर निर्धारित की जाती है। सामान्यता ऐसी चर्चाएं मंगलवार और गुरुवार के दिन ली जाती हैं। राज्य सभा में सभापति, सदन के नेता के परामर्श से चर्चा के लिए तिथि निर्धारित कर सकता है और उसके लिए अधिक से अधिक ढाई घंटे का समय दे सकता है।

सूचना गृहीत किए जाने और चर्चा के लिए तिथि निर्धारित किए जाने के बाद से उस दिन की कार्यसूची में सम्मिलित किया जाता है। उस दिन अध्यक्ष उस प्रथम सदस्य को जिसके नाम में कार्यसूची में मद दर्ज हो संक्षिप्त वक्तव्य देने के लिए कहता है और मंत्री संक्षेप में उसका उत्तर देता है। उसके बाद अन्य सदस्य चर्चा में भाग लेते हैं। जो सदस्य चर्चा उठाता है उसे उत्तर देने का अधिकार नहीं होता। सदन के समक्ष कोई औपचारिक प्रस्ताव नहीं होता, न ही मतदान होता है।[11] चर्चा का उद्देश्य यह होता है कि जिन सदस्यों के पास उस विषय के बारे में कुछ तथ्य हों वे सदन को उनसे अवगत कराएं और मंत्री सदन और राष्ट्र के लाभार्थ स्थिति स्पष्ट करे।

नियम 377 के अधीन उल्लेख

सार्वजनिक गैलरियों में बैठे किसी भी दर्शक ने देखा होगा कि हमारे निर्वाचित प्रतिनिधि किस तरह ऐसे मामले उठाने का प्रयास करते हैं जिनका नियमों एवं विनियमों की व्याख्यां से कोई संबंध नहीं होता परंतु जो उस समय उन्हें और उनके निर्वाचन क्षेत्र के लोगों को उत्तेजित कर रहे होते हैं और वे महसूस करते हैं कि उन मामलों को शीघ्रातिशीघ्र सदन में उठाना आवश्यक है। कभी कभी प्रश्नकाल के तुरंत बाद, जिसे प्रेस द्वारा "शून्यकाल" कहा जाता है, अनेक सदस्य ऐसे मामले उठाने के लिए खड़े हो जाते हैं और सदन में कोलाहल तथा अव्यवस्था का वातावरण पैदा कर देते हैं। दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों को यकीन हो गया था किं इस प्रथा को रोकने की जरूरत है और वे चाहते थे कि कोई ऐसा तरीका निकाला जाए जिससे कि सांसद ऐसे मामले उठा सकें जो वे उठाना चाहते हों और जो हाल के किसी प्रश्न, स्थगन प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव आदि के अंतर्गत न उठाये जा सकते हों। राज्य सभा में 'विशेष उल्लेख' की प्रथा और लोक सभा में नियम 377 के अधीन मामले उठाने की प्रथा इसी दृष्टि से आरंभ हुई। नियम 377 के उपबंध का प्रयोग प्रथम बार 14 मई, 1966 को किया गया जब पुलिस द्वारा एक संसद सदस्य के साथ किए गए दुर्व्यवहार संबंधी मामला उठाया गया। यह एक ऐसा मामला था जो किसी भी अन्य नियम के अधीन उठाया नहीं जा सकता था।

जो मामले व्यवस्था के प्रश्न नहीं होते या जो प्रश्नों, अल्प-सूचना प्रश्नों, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों आदि से संबंधित नियमों के अधीन नहीं उठाए जा सकते, वे नियम 377 के अधीन उठाए जाते हैं।

जो सदस्य नियम 377 के अधीन कोई मामला उठाना चाहता हो वह संक्षेप में (साधारणतया 250 से अधिक शब्दों में नहीं) वे मुद्दे बताते हुए जो वह उठाना चाहता हो और साथ ही उनको उठाने के कारण बताते हुए लिखित रूप से महासचिव को सूचना देता है। कोई सूचना ग्राह्य होने के लिए उसमें, अन्य बातों के साथ साथ, केवल स्थानीय महत्व का मामला या केवल किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों से संबंधित मामला या न्यायालय के विचाराधीन मामला नहीं उठाया जाना चाहिए और कोई ऐसा मामला नहीं उठाना चाहिए जिसमें आरोपात्मक, असंसदीय अभिव्यक्तियां आदि हों।

संबंधित सदस्य को जिस दिन मामला उठाने की अनुमति दी जाती है उस दिन अध्यक्ष द्वारा अनुमोदित पाठ की एक प्रति उसे दी जाती है। वह मामला उठाते समय, सदस्य को अपने वक्तव्य के अनुमोदित पाठ से हटकर कुछ कहने की अनुमति नहीं होती। सामान्यतया, कोई मामला उठाए जाने के बाद संबंधित मंत्री वक्तव्य नहीं देता, परंतु यदि वह चाहे तो ऐसा कर सकता है। संबंधित मंत्री नियम 377 के अधीन उठाए गए मामले के बारे में सीधे सदस्य को लिखकर सूचित करता है कि उस मामले के बारे में सरकार के विचार क्या हैं और क्या कार्यवाही की गई है। यह ध्यान देने की बात है कि इस प्रकार उठाए जाने वाले मामले कार्य सूची में सम्मिलित नहीं किए जाते।

छठी लोक सभा के चौथे अधिवेशन से पहले तो सदन में मामले उठाने के लिए नियम 377 का प्रयोग कुछ सीमित था परंतु उसके बाद अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया गया है ताकि सदस्य लोक महत्व के विभिन्न मामले, विशेष रूप से अपने निर्वाचन क्षेत्रों से संबंधित मामले जितनी जल्दी हो सके उठा सकें। यह देखा गया है कि सदस्य इस नियम का अधिक से अधिक सहारा ले रहे हैं और यह प्रक्रिया बहुत लोकप्रिय हो गई है। चौथी लोक सभा की कार्यावधि में नियम 377 के अधीन केवल 36 मामले उठाने की अनुमति दी गई और पांचवीं, छठी, और सातवीं लोक सभा की कार्यवाहियों में इन मामलों की संख्या बढ़कर क्रमशः 184, 829 और 3134 हो गई। आठवीं लोक सभा और नवीं लोक सभा में यह संख्या क्रमशः 3205 और 721 रही।

प्रस्ताव (मोशन)

सदन लोक महत्व के विभिन्न मामलों पर अनेक फैसले करता है और अपनी राय व्यक्त करता है। लोक सभा की सदस्य संख्या बड़ी होने के कारण, सदन की राय या इच्छा जानना कठिन कार्य है। इस प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के लिए, कोई सदस्य एक प्रस्ताव के रूप में कोई सुझाव सदन के समक्ष रख सकता है जिसमें उसकी राय या इच्छा दी गयी हो और यदि सदन उसे स्वीकृत कर लेता है तो वह समूचे सदन की राय या इच्छा बन जाती है। अतः मोटे तौर पर, "प्रस्ताव" सदन का फैसला जानने के लिए या उसकी राय व्यक्त करने के लिए सदन के समक्ष लाया गया एक सुझाव होता है। इसलिए सदन के फैसले के लिए प्रत्येक प्रश्न को किसी सदस्य द्वारा प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। संसद में फैसले चूंकि

पूरी चर्चा और वाद विवाद के बाद किए जाते हैं अतः किसी मामले पर सदन में चर्चा अध्यक्ष या सभापति, जैसी भी स्थिति हो, की सहमति से लाए जाने वाले किसी प्रस्ताव पर ही की जा सकती है।[12]

प्रस्ताव वास्तव में संसदीय कार्यवाहियों का आधार होते हैं। लोक महत्व का कोई भी मामला किसी प्रस्ताव का विषय हो सकता है। एक प्रस्ताव पर वाद विवाद की ये चार अवस्थाएं होती हैं :

(क) प्रस्ताव पेश करना;
(ख) अध्यक्ष/सभापति द्वारा प्रश्न प्रस्तुत करना;
(ग) यदि अनुमति हो तो वाद विवाद या चर्चा करना; और
(घ) सदन की स्वीकृति या फैसला।

प्रस्ताव पेश करने वाला सदस्य प्रस्ताव को ऐसा रूप देता है जिस रूप में वह चाहता हो कि सदन उसे स्वीकृत करे। परंतु यह बात सदन पर निर्भर करती है कि वह चाहे तो उसे उसी रूप में स्वीकृत कर दे या उसे अस्वीकृत कर दे या कुछ संशोधनों के साथ उसे स्वीकृत करे। इस प्रकार जो सदस्य उस प्रस्ताव के किसी भिन्न रूप में स्वीकृत किए जाने के इच्छुक हों वे पीठासीन अधिकारी द्वारा मूल प्रस्ताव को पेश किए जाने के बाद संशोधन या स्थानापन्न प्रस्ताव पेश कर सकते हैं।

प्रस्ताव भिन्न भिन्न सदस्यों द्वारा भिन्न भिन्न प्रयोजनों से पेश किए जा सकते हैं। प्रस्ताव मंत्रियों द्वारा पेश किए जा सकते हैं और गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा भी। सामान्यतया, सरकार के प्रस्ताव किसी नीति या कार्यवाही के लिए सदन का अनुमोदन प्राप्त करने संबंधी प्रस्ताव होते हैं। दूसरी ओर, गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा पेश किए जाने वाले प्रस्तावों का उद्देश्य सामान्यतया किसी मामले पर सरकार की राय या विचार जानना होता है। यद्यपि प्रस्ताव सदन की विभिन्न कार्यवाहियों से संबंधित होते हैं तथापि उन्हें तीन प्रमुख श्रेणियों में रखा जा सकता है, अर्थात मूल (सब्सटेंटिव) प्रस्ताव, स्थानापन्न (सबस्टीट्यूट) प्रस्ताव और सहायक (सब्सीडियरी) प्रस्ताव।[13]

मूल प्रस्ताव (सब्सटेंटिव मोशन) : एक मूल प्रस्ताव अपने आपमें पूर्ण स्वतंत्र प्रस्ताव होता है जो सदन के अनुमोदन के लिए पेश किया जाता है और ऐसे ढंग से बनाया गया होता है कि उससे सदन के फैसले की अभिव्यक्ति हो सके।[14] यह न तो किसी अन्य प्रस्ताव पर निर्भर करता है और न ही किसी अन्य प्रस्ताव से उत्पन्न होता है। राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव, लोक महत्व के किसी मामले पर स्थगन प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव, लोक सभा के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष के या राज्य सभा के उपसभापति के निर्वाचन के लिए या हटाने के लिए प्रस्ताव, विशेषाधिकार के प्रस्ताव और सभी संकल्प मूल प्रस्ताव होते हैं।[15] इसके अतिरिक्त, संविधान में राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने का उपबंध है जो उचित शब्दों में बनाए गए मूल प्रस्ताव द्वारा ही चलाया जा सकता है।[16]

स्थानापन्न प्रस्ताव (सबस्टीट्यूट मोशन) : जो प्रस्ताव मूल प्रस्ताव के स्थान पर और उसके विकल्प के रूप में पेश किए जाएं उन्हें स्थानापन्न प्रस्ताव कहते हैं।[17] किसी मूल प्रस्ताव पर चर्चा आरंभ होने से पहले, कोई सदस्य स्थानापन्न प्रस्ताव पेश कर सकता है जो मूल प्रस्ताव के विषय के अनुकूल होते हुए इस तरह बनाया जाता है कि उसमें सदन की राय व्यक्त की गई हो। मूल प्रस्ताव पर और स्थानापन्न प्रस्ताव पर साथ साथ चर्चा होती है परंतु सदन की स्वीकृति केवल स्थानापन्न प्रस्ताव पर ली जाती है।[18] यदि वह स्वीकृत हो जाए तो वह मूल प्रस्ताव समाप्त हो जाता है और फिर उसे मतदान के लिए नहीं रखा जाता, लेकिन अगर संशोधन स्वीकृत हो जाए तो मूल प्रश्न को संशोधित रूप में मतदान के लिए रखा जाता है।

सहायक प्रस्ताव (सब्सीडियरी मोशन) : इस श्रेणी के प्रस्ताव किसी अन्य प्रस्ताव पर निर्भर करते हैं या अन्य प्रस्ताव से संबंधित होते हैं या सदन में किसी कार्यवाही पर अनुवर्ती कार्यवाही स्वरूप होते हैं। इनका अपने आपमें कोई महत्व नहीं होता और मूल प्रस्ताव या सदन की कार्यवाही के संदर्भ के बिना ये सदन का फैसला बताने योग्य नहीं होते। सहायक प्रस्तावों की फिर तीन श्रेणियां हैं :

(क) अनुषंगी प्रस्ताव (एंसीलरी मोशन)
(ख) प्रतिस्थापक प्रस्ताव (सुपरसीडिंग मोशन), और
(ग) संशोधन (एमेंडमेंट्स)।[19]

अनुषंगी प्रस्तावों को विभिन्न प्रकार के कार्यों की अग्रेतर कार्यवाही के लिए नियमित उपाय के रूप में सदन की प्रथा द्वारा मान्यता दी जाती है, जैसे कि "विधेयक को एक प्रवर या संयुक्त समिति को निर्दिष्ट किया जाए", या कि "विधेयक पर विचार किया जाए", या कि "विधेयक को पास किया जाए"।

प्रतिस्थापक प्रस्ताव किसी अन्य प्रश्न पर वाद विवाद के दौरान पेश किए जाते हैं और वे उस प्रश्न का स्थान लेने हेतु होते हैं यद्यपि वे स्वतंत्र स्वरूप के होते हैं। कोई सदस्य किसी विधेयक पर विचार करने के प्रस्ताव के संबंध में प्रतिस्थापक प्रस्ताव पेश कर सकता है "कि विधेयक फिर से किसी समिति को निर्दिष्ट किया जाए" या "अग्रेतर राय जानने के लिए पुनः परिचालित किया जाए" या "विधेयक पर वाद विवाद स्थगित किया जाए"। ऐसे अधिकांश प्रस्ताव विलंबकारी स्वरूप के होते हैं।

संशोधन का उद्देश्य मूल प्रस्ताव को केवल आंशिक रूप से रूपभेदित करना या स्थानापन्न करना होता है। संशोधन केवल प्रस्तावों, संकल्पों या किसी विधेयक के खंडों में ही नहीं अपितु किसी विधेयक के खंड में, संकल्प में या प्रस्ताव में किये जाने वाले संशोधन में भी हो सकते हैं। संशोधन वाद विवाद के दौरान पेश किया जाता है और यदि वह स्वीकृत हो जाए तो मूल प्रश्न को संशोधित रूप में मतदान के लिए रखा जाता है। यह ध्यान देने की बात है कि स्थानापन्न प्रस्ताव का प्रयोजन भी मूल प्रश्न के विकल्प के रूप में एक भिन्न प्रस्ताव सदन के समक्ष लाना है परंतु वह संशोधन से इस कारण भिन्न है कि वह समूचे प्रस्ताव को ही बदल देता है।

प्रस्ताव की सूचना, किसी अन्य सूचना की तरह, महासचिव को दी जाती है।[20] प्रस्तावों की सूचना के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं है। यह सूचना किसी मंत्री या किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा दी जा सकती है। पीठासीन अधिकारी किसी प्रस्ताव को गृहीत कर सकता है या रद्द कर सकता है या उसके लिए आंशिक रूप में अनुमति दे सकता है।[21] इसके अतिरिक्त प्रस्ताव की विषय वस्तु में, जैसे कि प्रश्नों के मामले में होता है, अन्य बातों के साथ साथ व्यंग्यपूर्ण पद, मानहानिकारक कथन या आरोप नहीं होने चाहिएं और उसके द्वारा कोई विशेषाधिकार का प्रश्न या कोई ऐसा मामला नहीं उठाया जाना चाहिए जो न्यायालय में विचाराधीन हो।[22]

अनियत दिन वाले प्रस्ताव : जो प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा गृहीत कर लिया गया हो और जिस पर चर्चा के लिए कोई दिन नियत न किया गया हो उसे "अनियत दिन वाला प्रस्ताव" कहा जाता है। इन्हें कार्य मंत्रणा समिति के समक्ष रखा जाता है जो सदन में चर्चा के लिए प्रस्तावों का चयन करती है और इस हेतु समय भी नियत करती है।[23]

प्रस्ताव कैसे पेश किया जाता है : प्रस्ताव के लिए नियत दिन, अध्यक्ष संबंधित सदस्य को प्रस्ताव पेश करने के लिए और भाषण देने के लिए कहता है। उसके पश्चात अध्यक्ष प्रस्ताव सदन के समक्ष रखता है। फिर उन सदस्यों द्वारा संशोधन और स्थानापन्न प्रस्ताव, यदि कोई हों तो, पेश किए जाते हैं जिन्होंने उस आशय की पूर्व सूचना दी हो और उसके बाद चर्चा की जाती है। सदस्यों और मंत्री के बोल चुकने के पश्चात प्रस्तावक उत्तर देने के अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए फिर बोल सकता है। चर्चा के अंत में संशोधनों/स्थानापन्न प्रस्तावों को यदि कोई हों तो, सदन के मतदान के लिए रखा जाता है और निबटाया जाता है। उसके पश्चात मुख्य प्रस्ताव को या संशोधित रूप में प्रस्ताव को सदन के मतदान के लिए रखा जाता है। परंतु नियम 342 के अधीन यह प्रस्ताव कि किसी नीति या स्थिति या वक्तव्य या किसी अन्य मामले पर विचार किया जाए, मतदान के लिए नहीं रखा जाता। ऐसे प्रस्ताव पर पेश किए गए केवल स्थानापन्न प्रस्ताव ही मतदान के लिए रखे जाते हैं। सदन द्वारा स्वीकृत रूप में प्रस्ताव की एक प्रति समुचित कार्यवाही के लिए संबंधित मंत्री को भेज दी जाती है।

राज्य सभा में भी प्रक्रिया यही है। नियत दिन या नियत दिनों के अंतिम दिन, जैसी भी स्थिति हो, सभापति मूल प्रश्न पर सदन के फैसले के लिए तुरंत प्रत्येक आवश्यक प्रश्न को मतदान के लिए रखता है। प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य को उत्तर देने का अधिकार होता है। ऐसे प्रस्ताव पर संशोधन भी पेश किए जा सकते हैं।[24]

संकल्प (रेजोल्यूशन)

संकल्प भी एक प्रक्रियागत उपाय है जो आम लोगों के हित के किसी मामले पर सदन में चर्चा उठाने के लिए सदस्यों और मंत्रियों को उपलब्ध है।[25] संकल्प वास्तव में मूल प्रस्ताव होता है। सामान्य रूप के प्रस्तावों के समान, दोनों सदनों के प्रक्रिया नियमों में संकल्पों के प्रारूप

दिए गए हैं।[26] तदनुसार, लोक सभा में पेश किया जाने वाला संकल्प राय या सिफारिश की घोषणा के रूप में हो सकता है; या सरकार द्वारा विचार किए जाने के लिए किसी मामले या स्थिति की ओर ध्यान दिलाने वाला हो सकता है; या किसी ऐसे रूप में हो सकता है जिससे सरकार की किसी कार्यवाही या नीति को सदन स्वीकृत या अस्वीकृत करे या जिससे कोई संदेश दिया जाए; या किसी कार्यवाही के लिए सिफारिश, आग्रह या निवेदन के रूप में हो सकता है; या किसी ऐसे अन्य रूप में हो सकता है जैसे कि अध्यक्ष उचित समझे। इसी तरह, राज्य सभा में संकल्प सदन द्वारा राय की घोषणा के रूप में या किसी अन्य रूप में हो सकता है जैसे कि सभापति उचित समझे।

लोक सभा में पेश किए गए निम्नलिखित संकल्पों से ज्ञात हो जाएगा कि संकल्पों के सामान्य रूप क्या होते हैं और उनके विषय क्या क्या होते हैं :

1. "यह विचार करते हुए कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 34 वर्ष पश्चात भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अधिकांश लोगों की आर्थिक तथा सामाजिक स्थितियों में सुधार नहीं हुआ है, यह सभा सरकार से सिफारिश करती है वह उक्त समुदायों के शिक्षित युवकों को आगामी पांच वर्षों में रोजगार उपलब्ध कराने के लिए योजनाएं बनाएं।"[27]
2. "इस सभा की राय है कि हमारे देश की राजनीतिक व्यवस्था में विभिन्न भाषाई एवं जातिगत ग्रुपों के अलग राजनीतिक इकाइयों के रूप में उभरने से यह आवश्यक हो गया है कि केंद्र और राज्यों के वित्तीय एवं अन्य संबंधों का ढांचा पुनर्गठित किया जाए और इसलिए संकल्प करती है कि संविधान के संगत उपबंधों में उपयुक्त संशोधन किए जाएं।"[28]

प्रस्ताव और संकल्प में अंतर : प्रस्तावों और संकल्पों में एक दूसरे से भेद करना आसान नहीं है क्योंकि बहुत से ऐसे तत्व हैं जो दोनों में समान होते हैं। वास्तव में, दोनों में ज्यादा अंतर प्रक्रिया का होता है, विषय वस्तु का नहीं। प्रायः प्रस्ताव और संकल्प, दोनों एक ही विषय पर कुछ रूप बदलकर गृहीत किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित प्रस्ताव लोक सभा में गृहीत किया गया :

"इस बात से चिंतित होते हुए कि विभिन्न क्षेत्रों में विकास कार्य क्रियान्वयन में प्रशासनिक विलंब के कारण राष्ट्र की आकांक्षाओं के अनुकूल आगे नहीं बढ़ रहा है, यह सभा सरकार से सिफारिश करती है कि वह सभी स्तरों पर विभिन्न विकास कार्यों की प्रगति पर बराबर निगरानी रखने, प्रगति में बाधक तत्वों का पता लगाने और जहां कोई परियोजनाएं रुकी हुई हों और उनमें विलंब हो रहा हो वहां तुरंत उपचारात्मक उपायों का सुझाव देने के लिए एक राष्ट्रीय सांविधिक निगरानी निकाय की स्थापना करे"।

उसी सदस्य की निम्नलिखित सूचना संकल्प के रूप में गृहीत हुई और पेश की गई:

"सरकार के सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम को शीघ्र कार्यरूप देने की महत्वपूर्ण आवश्यकता की दृष्टि से, यह सभा सिफारिश करती है कि सभी स्तरों पर विभिन्न विकास

कार्यों की प्रगति पर बराबर निगरानी रखने, प्रगति में बाधक तत्वों का पता लगाने और उन्हें शीघ्र कार्यरूप देने के लिए तुरंत उपचारात्मक उपायों का सुझाव देने के लिए सरकार के अधीन एक निगरानी निकाय की स्थापना की जाए।"।

परंतु इनमें एक अंतर है। सब संकल्प मूल प्रस्तावों की श्रेणी में आते हैं, अर्थात प्रत्येक संकल्प एक विशिष्ट प्रकार का प्रस्ताव होता है। परंतु यह आवश्यक नहीं है कि सब संकल्प मूल प्रस्ताव ही हों। इसके अतिरिक्त, सब प्रस्ताव आवश्यक रूप से सदन के मतदान के लिए नहीं रखे जाते जबकि यह आवश्यक होता है कि सब संकल्पों पर मतदान हो। किसी संकल्प पर स्थानापन्न प्रस्ताव पेश नहीं किया जाता। दूसरी ओर, मूल प्रस्तावों पर ऐसे प्रस्ताव पेश किए जा सकते हैं।

विभिन्न प्रकार के संकल्प

संकल्पों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है: गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प, सरकारी संकल्प और सांविधिक संकल्प।

(क) गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प : गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा पेश किए जाने वाले संकल्पों को गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प कहा जाता है। वास्तव में इनसे ऐसे प्रस्तावों के बारे में जो अभी अनिश्चित हों या जिनके बारे में जनमत अभी बनना हो, सदन के विचार जानने का सरकार को अवसर मिलता है।

हर दूसरे शुक्रवार की बैठक के अंतिम ढाई घंटे गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर चर्चा के लिए नियत किए जाते हैं। जो सदस्य संकल्प पेश करना चाहता हो उसे अपनी इस इच्छा की सूचना महासचिव को देनी होती है। जिन सदस्यों ने संकल्प पेश करने की इच्छा व्यक्त की हो उनमें से लोक सभा में तीन सदस्यों के नामों और राज्य सभा में पांच सदस्यों के नामों का बैलट द्वारा निर्धारण होता है और इन्हीं को एक एक संकल्प की सूचना (नोटिस) देने की अनुमति दी जाती है।[29] वे संकल्प, यदि गृहीत हो जायें तो गैर सरकारी सदस्यों की कार्य सूची में रखे जाते हैं। पीठासीन अधिकारी द्वारा पुकारे जाने पर संबंधित सदस्य संकल्प पेश करता है और उस पर भाषण देता है।[30] उसके पश्चात अन्य सदस्य और संबंधित मंत्री भी बोल सकते हैं। संकल्प पेश किए जाने के पश्चात कोई सदस्य नियमानुसार उस संकल्प में संशोधन पेश कर सकता है।[31] गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर चर्चा के लिए समय गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति नियत करती है। सामान्यतया, इन संकल्पों पर चर्चा के लिए दो घंटे नियत किए जाते हैं। मंत्री के भाषण के पश्चात संकल्प के प्रस्ताव को उत्तर देने का अधिकार होता है।

(ख) सरकारी संकल्प : मंत्रियों द्वारा पेश किए जाने वाले संकल्पों को सरकारी संकल्प कहा जाता है। कोई संकल्प पेश करने की अपनी इच्छा की सूचना मंत्री को भी महासचिव को देनी होती है। यद्यपि इस हेतु कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई है तथापि, व्यवहार में, मंत्री ऐसी

सूचना कई दिन पूर्व देते हैं। इन सूचनाओं पर भी ग्राह्यता के वही नियम लागू होते हैं जो गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर लागू होते हैं। कोई सरकारी संकल्प गृहीत कर दिए जाने पर, सदन द्वारा कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर उस पर चर्चा के लिए समय नियत किया जाता है।[32] संकल्प निबटाने के बारे में शेष प्रक्रिया वही है जो गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के मामले में अपनाई जाती है।

मंत्रियों द्वारा पेश किए जाने वाले संकल्पों का उद्देश्य सामान्यतया ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संधियां, अभिसमयों या समझौतों पर सदन की स्वीकृति लेना होता है जो सरकार द्वारा किए गए हों; या सरकार की कुछ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नीतियों की घोषणा करना या उन्हें अनुमोदित कराना होता है; या कुछ समितियों की सिफारिशों को अनुमोदित कराना होता है।

(ग) सांविधिक संकल्प : ये संकल्प किसी मंत्री द्वारा पेश किए जा सकते हैं और गैर-सरकारी सदस्य द्वारा भी। इन्हें इस नाम से इस कारण जाना जाता है कि ये सदा संविधान के किसी उपबंध के या संसद के किसी अधिनियम के अनुसरण में लाए जाते हैं।[33] कुछ अधिनियमों में स्पष्ट रूप से अपेक्षित होता है कि सरकार निर्धारित समयावधि में संकल्प पेश करे। यदि संविधान के उस विशिष्ट अनुच्छेद में या सांविधि की धारा में, जिसके अधीन सांविधिक संकल्प लाया जाए, ऐसा संकल्प लाने की अवधि निर्धारित न हो तो किसी सांविधिक संकल्प को पेश करने के लिए सूचना की कोई निर्धारित अवधि नहीं होती।[34] ऐसे संकल्प पर, गृहीत किए जाने के पश्चात चर्चा ऐसे समय तक होती है जो सरकारी कार्य के लिए नियत समय में से कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर सदन द्वारा नियत किया जाए।

गैर-सरकारी सदस्य का संकल्प, सरकारी संकल्प या सांविधिक संकल्प के सदन द्वारा पास किए जाने के पश्चात, ऐसे प्रत्येक संकल्प की एक प्रति महासचिव द्वारा संबंधित मंत्री को प्रेषित की जाती है।

सदन द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों या संकल्पों का प्रभाव : किसी प्रस्ताव या संकल्प को स्वीकृत करके सदन उसके विषय के बारे में अपनी राय की घोषणा करता है और वह सदन का आदेश हो जाता है। जहां तक उनके प्रभाव का संबंध है, संसद द्वारा स्वीकृत संकल्प इन श्रेणियों में आते हैं :

1. ऐसे संकल्प सरकार पर बंधनकारी नहीं होते जिनमें सदन ने केवल अपनी राय व्यक्त की हो। प्रथा यह है कि इन संकल्पों में व्यक्त रायों को कार्यरूप देना या न देना पूर्णतया सरकार के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है।
2. सदन द्वारा स्वयं अपनी कार्यवाहियों संबंधी मामलों में स्वीकृत संकल्प बंधनकारी होते हैं और वे कानून की शक्ति रखते हैं। उनकी वैधता को न्यायालयों में चुनौती नहीं दी जा सकती।
3. सांविधिक प्रभाव वाले संकल्प, यदि स्वीकृत हो जाते हैं, तो सरकार के लिए बंधनकारी होते हैं और उनमें कानून की शक्ति होती है। संविधान में उपबंध है

कि इस प्रकार के संकल्प राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने, उपराष्ट्रपति, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और राज्य सभा के उपसभापति को हटाने; राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश का निरनुमोदन करने; राष्ट्र के हित में राज्य-सूची में सम्मिलित किसी विषय पर विधान बनाने की शक्ति संसद को देने; अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन करने; और आपात स्थिति की उद्घोषणा को स्वीकृत करने जैसे प्रयोजनों के लिए पेश किए जा सकते हैं।[35]

संकल्प पेश करने का प्रयोजन चूंकि सदन की राय जानना होता है अतः ऐसी स्थिति कभी पैदा हो सकती है जिसमें विपक्ष सरकार की इच्छा के विरुद्ध सदन में कोई संकल्प स्वीकृत कराने में सफल हो जाए। ऐसी स्थिति में, क्या उस संकल्प को सरकार की निंदा माना जाना चाहिए? क्या सरकार को ऐसी स्थिति में पदत्याग कर देना चाहिए या सदन को भंग करने का परामर्श देना चाहिए? सरकार द्वारा पदत्याग करने के प्रश्न पर कोई निश्चित नियम नहीं है। केवल मोटा सिद्धांत यह है कि यदि सरकार किसी ऐसे मामले पर जो महत्वपूर्ण मामला समझा जाता हो या विपक्ष द्वारा पेश किए गए और सदन द्वारा स्वीकृत अविश्वास के विशिष्ट प्रस्ताव पर पराजित हो जाती है तो सरकार से पद त्याग करने की या सदन को भंग करने का परामर्श देने की आशा की जाती है।

अविश्वास प्रस्ताव

मंत्रिपरिषद जब तक पदासीन रहती है तब तक उसे लोक सभा का विश्वास प्राप्त हो।[36] लोक सभा द्वारा मंत्रिपरिषद में विश्वास का अभाव व्यक्त करते ही सरकार संवैधानिक रूप से पद त्याग करने के लिए बाध्य होती है, चाहे प्रधानमंत्री सभा के विघटन की सिफारिश करे या न करे। इस विश्वास का पता लगाने के लिए, नियमों में इस आशय का एक प्रस्ताव पेश करने का उपबंध है जिसे "अविश्वास प्रस्ताव" कहा जाता है।

किसी मंत्री द्वारा अपने विभाग में कोई कार्य किए जाने या कार्य न किए जाने के लिए संसद के प्रति उसके व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के बारे में संविधान में कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है। यह उत्तरदायित्व सामूहिक होता है। इसलिए, केवल संपूर्ण मंत्रिपरिषद में विश्वास का अभाव व्यक्त करने वाला प्रस्ताव गृहीत किया जाता है और किसी मंत्री में व्यक्तिगत रूप में विश्वास का अभाव व्यक्त करने वाला प्रस्ताव नियमानुकूल नहीं है।[37]

किसी निंदा प्रस्ताव के असमान, अविश्वास प्रस्ताव में वे कारण बताने आवश्यक नहीं हैं जिन पर वह आधारित हो। अविश्वास के प्रस्ताव की पूर्व सूचना दी जानी आवश्यक है। नियमों में ग्राह्यता की कोई शर्तें निर्धारित नहीं हैं। अध्यक्ष को यह फैसला करने का अधिकार है कि कोई प्रस्ताव नियमानुकूल है या नहीं।

यदि अध्यक्ष की राय हो कि प्रस्ताव नियमानुसार है तो वह, प्रश्नकाल समाप्त हो जाने पर, सदस्य से कहेगा कि वह सदन की अनुमति मांगे या अध्यक्ष स्वयं सदन को प्रस्ताव पढ़कर सुनाता है और उन सदस्यों से जो अनुमति दिए जाने के पक्ष में हों अपने स्थानों पर खड़े होने

के लिए निवेदन करता है और यदि कम से कम पचास सदस्य अपने स्थानों में खड़े हो जाएं तो अध्यक्ष घोषणा करता है कि अनुमति दी जाती है। अन्यथा यह समझा जाता है कि सदस्य को सदन की अनुमति प्राप्त नहीं हुई। अविश्वास का प्रस्ताव जब एक बार गृहीत हो जाता है तो अनुमति दिए जाने के दिन से दस दिन के भीतर उसे बहस के लिए लिया जाना होता है। सरकार के विचार जानने के बाद, अध्यक्ष फैसला करता है कि प्रस्ताव पर चर्चा किस दिन हो। यदि सरकार ऐसा चाहे तो चर्चा उसी समय आरंभ की जा सकती है। चर्चा के लिए समय सामान्यतया कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर निर्धारित किया जाता है। सदस्य जब बोल लेते हैं तो सामान्यतया सरकार के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का उत्तर प्रधानमंत्री स्वयं देता है। प्रस्तावक को चर्चा का उत्तर देने का अधिकार होता है। जब वाद विवाद समाप्त हो जाए तो अध्यक्ष तुरंत प्रश्न मतदान के लिए रखता है और सदन का फैसला मौखिक मत द्वारा, या विभाजन द्वारा, यदि इसकी मांग की जाए तो, जाना जाता है।[38]

जब सदन की अनुमति मांगने के लिए सदस्य का नाम अध्यक्ष द्वारा पुकारा जाता है तब वह सदस्य अविश्वास के प्रस्ताव की सूचना वापस भी ले सकता है। परंतु सदन द्वारा अनुमति दे दिए जाने के पश्चात यदि सदस्य अपना प्रस्ताव वापस लेना चाहे तो वह ऐसा सदन की अनुमति से ही कर सकता है। अविश्वास के प्रस्ताव की सूचना उन सब सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरकृत पत्र भेजकर भी वापस ली जा सकती है जिन्होंने प्रस्ताव की सूचना पर हस्ताक्षर कर रखें हों और यह कार्यवाही सदन में उस मद के लिए जाने से पहले की जानी चाहिए। उस स्थिति में सदन में उस मद का उल्लेख नहीं किया जाता या उसे सदन के समक्ष लाया ही नहीं जाता।

राज्य सभा को अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने की शक्ति प्राप्त नहीं है क्योंकि संविधान के अधीन सरकार सामूहिक रूप से केवल निर्वाचित लोक सभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है।

निंदा प्रस्ताव (सेन्सयोर मोशन)

निंदा प्रस्ताव अविश्वास के प्रस्ताव से भिन्न होता है। अविश्वास के प्रस्ताव में उन कारणों का उल्लेख नहीं होता जिन पर वह आधारित हो परंतु निंदा प्रस्ताव में ऐसे कारणों या आरोपों का उल्लेख करना आवश्यक होता है और यह प्रस्ताव कतिपय नीतियों और कार्यों के लिए सरकार की निंदा करने के विशिष्ट प्रयोजन से पेश किया जाता है। निंदा प्रस्ताव मंत्रिपरिषद के विरुद्ध या किसी एक मंत्री के विरुद्ध या कुछ मंत्रियों के विरुद्ध कोई ऐसा कार्य न करने के लिए या उनकी किसी नीति के विरोध स्वरूप पेश किया जाता है और उसमें किसी मंत्री या मंत्रियों की विफलता पर सदन द्वारा खेद, रोष या आश्चर्य प्रकट किया जाता है। यह प्रस्ताव विशिष्ट एवं स्वतः पूर्ण होना चाहिए ताकि निंदा के कारणों का स्पष्टतया एवं संक्षेप में उल्लेख किया जाए। किसी कारणवश प्रस्ताव नियमानुसार है या नहीं, इस बारे में अध्यक्ष का फैसला अंतिम होता है। निंदा प्रस्ताव पेश करने के लिए सदन की अनुमति अपेक्षित नहीं होती। इस

पर चर्चा के लिए तिथि निर्धारित करना और समय निकालना सरकार के विवेकाधिकार की बात है। निंदा प्रस्ताव पेश करने के लिए नियमों में कोई विशिष्ट उपबंध नहीं है। ऐसे प्रस्ताव पर सामान्य रूप से प्रस्तावों पर लागू होने वाले नियम ही लागू होते हैं,[39] और इसे अनियत दिन वाले प्रस्ताव के रूप में गृहीत किया जा सकता है।

संदर्भ

1. नियम 31 (2)
2. नियम 56
3. नियम 58
4. नियम 57
5. नियम 60
6. नियम 61 और 62
7. नियम 197
8. नियम 193
9. नियम 194 (1)
10. नियम 194(2)
11. नियम 195
12. नियम 184 (लोक सभा) और नियम 167 (राज्य सभा)
13. निर्देश 41(1)
14. निर्देश 41(2)
15. नियम 7, 8, 17, 56, 184, 198, 200, 226 और 328 और अनु. 67, 90(ग) और 94(ग)
16. नियम 352 (पांच) और अनु. 61, 121, 124(4) और (5), 148(1) और 324(5)
17. निर्देश 41(2) (दो)
18. नियम 342
19. निर्देश 41(2) (3)
20. नियम 185
21. नियम 187
22. नियम 186
23. नियम 189 और 190
24. नियम 190-192
25. नियम 172
26. नियम 171
27. यह संकल्प 28.8.1981 को पेश किया गया था और 11.9.1981 को सदन की अनुमति से वापस लिया गया था।
28. यह 31.3.1983 को पेश किया गया था और 19.8.1983 को सदन द्वारा अस्वीकृत किया गया था।
29. नियम 30(4), 170; निर्देश 9
30. नियम 176

31. नियम 177 (1); निर्देश 113
32. नियम 288
33. निर्देश 9ख (1)
34. उदाहरणार्थ अनु. 61, 67, 90 और 94 कम से कम 14 दिन की सूचना के लिए उपबंध है।
35. अनु. 61, 67, 90, 94, 123, 249 और 312
36. अनु. 75 (3)
37. नियम 198(1)
38. नियम 198
39. नियम 184-189

9

बजट तथा अन्य वित्तीय प्रक्रिया

कल्याणकारी राज्य के उद्भव के बाद मानव जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं रह गया है जो सरकारों के कार्यक्षेत्र से अथवा उनके दायित्वों की परिधि से बाहर हो। विधि और व्यवस्था बनाए रखने तथा राज्य की विदेशी आक्रमण से रक्षा करने से लेकर लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए योजनाएं कार्यान्वित करने तक सरकारें आज विविध कृत्यों का निर्वहन करती हैं। इसके अतिरिक्त आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य और लोगों के लिए रोजगार जैसी अनेक सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है। यह कहना आवश्यक नहीं है कि सरकारों को इन कृत्यों के निर्वहन के लिए धन की आवश्यकता होती है। यह धन कहां से आए ? धन की मंजूरी कौन दे ? सरकारी व्यय की पूर्ति के लिए करों, ऋणों आदि के द्वारा देश के संसाधनों में से आवश्यक धन जुटाया जाता है।

ऐसा नहीं है कि सरकार अपनी इच्छानुसार कर लगा सकती है, ऋण ले सकती है और खर्चे कर सकती है। चूंकि राज्य के संसाधन सीमित होते हैं अतः विभिन्न सरकारी कार्यों के लिए दुर्लभ संसाधन नियत करने हेतु उचित बजट व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है। एक निर्धारित अवधि के लिए व्यय की प्रत्येक मद अच्छी तरह सोच विचार कर रखनी होती है और कुल परिव्यय का हिसाब लगाना होता है। इसके अलावा, इन सब वित्तीय प्रस्तावों के लिए लोगों की मंजूरी का होना आवश्यक है जो उनके चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त की जाती है।

भारत सरकार का बजट इसी उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष संसद के दोनों सदनों के समक्ष पेश किया जाता है। बजट में सरकार का वित्तीय विवरण दिया जाता है जिसमें एक वित्तीय वर्ष के लिए अनुमानित प्राप्तियां और व्यय दर्शाए जाते हैं। वित्तीय वर्ष इस समय प्रत्येक वर्ष की प्रथम अप्रैल से आरंभ होता है। दूसरे शब्दों में, बजट में इस आशय का प्रस्ताव होता है कि आगामी वर्ष के दौरान किस मद पर कितना धन खर्च किया जाना है और उसमें कितना धन किस स्त्रोत से आएगा या कहां से जुटाया जाएगा। बजट के आगामी वर्ष के लिए अनुमान दिए जाते हैं और सरकार को अपनी वित्तीय और आर्थिक नीतियों तथा कार्यक्रमों का पुनर्विलोकन करने और उनकी व्याख्या करने का अवसर मिलता है। साथ ही, संसद को उन पर विचार

करने और उनकी आलोचना करने का भी अवसर मिलता है।

भारत में जिन वित्तीय प्रक्रियाओं का पालन किया जाता है उनके महत्वपूर्ण तत्व संविधान में निर्धारित हैं जिससे वित्तीय मामलों में लोक सभा की सर्वोच्चता सुनिश्चित होती है। संविधान में उपबंध किया गया है कि संसद के प्राधिकार से ही कोई कर लगाया जाएगा या एकत्रित किया जाएगा अन्यथा नहीं, और राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में वार्षिक वित्तीय विवरण दोनों सदनों के समक्ष रखवाएगा।[1] इन दो उपबंधों से यह सुनिश्चित हो जाता है कि सरकार एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए संसद को नजरअंदाज नहीं कर सकती क्योंकि व्यय के प्रत्येक प्रस्ताव को केवल एक वर्ष के लिए संसद की मंजूरी मिलती है। संविधान में भारत की "संचित निधि" के लिए उपबंध किया गया है जिसमें ऋणों, अग्रिम राशियों इत्यादि द्वारा प्राप्त सारा राजस्व जमा किया जाता है।[2] बजट में व्यय इस प्रकार सम्मिलित किए जाते हैं : (क) व्यय की ऐसी मदों की पूर्ति के लिए अपेक्षित राशियां जिन्हें संविधान में भारत की संचित निधि पर प्रभारित बताया गया है; और (ख) अन्य व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित राशियां जो भारत की संचित निधि से लिए जाने का प्रस्ताव है। प्रथम श्रेणी के व्यय के बारे में दोनों सदनों में चर्चा हो सकती है परंतु उसे दोनों में से किसी भी सदन के मतदान के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता। दूसरे शब्दों में, वह बजट का मतदान के लिए न रखा जा सकने वाला भाग है। भारत की संचित निधि पर प्रभावित व्यय में निम्नलिखित सम्मिलित हैं : राष्ट्रपति की परिलब्धियां और भत्ते, राज्य सभा के सभापति, उप सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन तथा भत्ते, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन और अन्य भत्ते और संविधान में या संसद द्वारा विधि बनाकर इस प्रकार प्रभारित घोषित अन्य व्यय भी इसमें शामिल हैं। दूसरी श्रेणी का व्यय लोक सभा के समक्ष अनुदानों की मांगों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और इस सभा द्वारा स्वीकृत किया जाता है। लोक सभा की ऐसी मांग को स्वीकृत करने या अस्वीकृत करने या उल्लिखित मांग में कमी करने का अधिकार है। ऐसी कोई मांग राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही की जा सकती है, अन्यथा नहीं।[3] इन मांगों का उद्देश्य चूंकि सरकार के कार्यक्रमों और नीतियों को लागू करना होता है इसलिए यदि कोई मांग पूरे तौर पर अस्वीकृत कर दी जाती है तो इसका अर्थ सरकार की पराजय होता है।

भारत की संचित निधि में से कोई भी धन संसद द्वारा पास किए जाने वाले विनियोग अधिनियम के अधीन ही निकाला जा सकता है, अन्यथा नहीं।[4]

वित्तीय विधान की अवस्थाएं

वित्तीय मामलों के लिए, विशेष रूप से बजट संबंधी कार्य करते समय, संसद में जो प्रक्रिया अपनाई जाती है उसकी तीन अवस्थाएं हैं :

(क) बजट पेश किया जाना : हमारी संसद में बजट दो भागों में पेश किया जाता है, अर्थात रेलवे वित्त के संबंध में "रेल बजट" और "सामान्य बजट"। रेलवे के लिए अलग बजट पेश करने के पीछे मूल विचार यह है कि रेलवे द्वारा निश्चित अंशदान की व्यवस्था होने से सिविल अरमानों में स्थिरता आए और रेलवे वित्त के प्रशासन में लचीलापन आए।

रेल बजट रेल मंत्री द्वारा लोक सभा में प्रत्येक वर्ष फरवरी मास के तीसरे सप्ताह में किसी दिन पेश किया जाता है और सामान्य बजट वित्त मंत्री द्वारा फरवरी मास के अंतिम कार्य दिवस को 5.00 बजे म.प. पर पेश किया जाता है। बजट पेश करते हुए बजट भाषण दिया जाता है जो वास्तव में संसद में सबसे महत्वपूर्ण भाषणों में से एक होता है। यह भाषण दो भागों में होता है : भाग "क" में देश का "सामान्य आर्थिक सर्वेक्षण" होता है और भाग "ख" में आगामी वित्त वर्ष के लिए "कराधान प्रस्ताव" होते हैं। लोक सभा में वित्त मंत्री का भाषण समाप्त होने पर, बजट की एक प्रति राज्य सभा के पटल पर रखी जाती है। उसके तुरंत पश्चात मंत्री वित्त विधेयक पेश करता है जिसमें सरकार के कराधान प्रस्ताव होते हैं।[5] उसके बाद सदन स्थगित हो जाता है। जिस दिन बजट पेश किया जाता है उस दिन बजट पर चर्चा नहीं की जाती।[6]

(ख) बजट पर चर्चा : संसद मूलतया विचार विमर्श करने वाला निकाय है। बजट पास करने की प्रक्रिया में संसद के दोनों सदनों में गंभीर एवं पूर्ण चर्चा होती है। बजट पर चर्चा बजट पेश किये जाने के कुछ दिन पश्चात आरंभ होती है। इससे सदस्यों को बजट के पाठ का पूरी तरह अध्ययन करने और वित्तीय प्रस्तावों पर आपस में विचार करने के लिए आवश्यक समय मिल जाता है। बजट पर दो अवस्थाओं में चर्चा की जाती है अर्थात "सामान्य चर्चा" और उसके बाद विस्तार में "अनुदानों की मांगों पर चर्चा और मतदान"। इसके अलावा, वित्तीय प्रस्तावों पर अग्रेतर चर्चा का अवसर विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक पर विचार किए जाने और इन्हें पास किए जाने के दौरान मिलता है।

(एक) सामान्य चर्चा : बजट पर चर्चा सामान्य वाद विवाद से आरंभ होती है, जो संसद के दोनों सदनों में तीन या चार दिन तक चलता है। प्रथा यह है कि इस अवस्था में सदस्य सरकार की राजकोषीय और आर्थिक नीतियों के सामान्य पहलुओं पर ही विचार करते हैं और कराधान तथा व्यय के ब्यौरे में नहीं जाते। इस प्रकार सामान्य वाद विवाद से प्रत्येक सदन को अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है। तब सरकार को भी आभास हो जाता है कि किसी प्रस्ताव विशेष के प्रति बाद की अवस्थाओं में क्या प्रक्रिया होगी। यह ध्यान देने की बात है कि राज्य सभा को दी गई शक्ति के अनुसार उसे सामान्य चर्चा के अलावा बजट से कोई सरोकार नहीं होता। मांगों पर मतदान केवल लोक सभा में होता है।

(दो) अनुदानों की मांगों पर चर्चा : प्रक्रिया के अनुसार, दूसरी अवस्था अनुदानों की मांगों पर चर्चा और मतदान की है। सामान्यतया, प्रत्येक मंत्रालय के लिए प्रस्तावित अनुदानों के लिए अलग मांगें रखी जाती हैं। इन "मांगों" का संबंध बजट के व्यय वाले भाग से होता है और इनका स्वरूप कार्यपालिका द्वारा लोक सभा से किए गए निवेदन का है कि मांगी गई राशि को खर्च करने का अधिकार दिया जाए। मांगें एक प्रस्ताव के रूप में पेश की जानी चाहिए, परंतु व्यवहार में उन्हें पेश हुआ मान लिया जाता है, और सदन का समय बचाने के लिए उनको पीठासीन अधिकारी द्वारा प्रस्तावित किया जाता है।

मांगों पर चर्चा रुचिपूर्ण होती है और इस चर्चा के दौरान मंत्रालय की नीतियों और कार्यकरण की बारीकी से छानबीन की जाती है। प्रत्येक मंत्रालय की मांगों पर चर्चा के लिए अलग से समय नियत किया जाता है। सदस्य मंत्रालय की नीतियों का निरनुमोदन कर सकते हैं या प्रशासन में मितव्ययता लाने के लिए उपाय सुझा सकते हैं या विशिष्ट स्थानीय शिकायतों की ओर मंत्रालय का ध्यान दिला सकते हैं। अनुदानों की मांगों के मूल प्रस्ताव के सहायक प्रस्ताव पेश करके सदस्य ऐसा कर सकते हैं। इन सहायक प्रस्तावों को संसदीय भाषा में "कटौती प्रस्ताव" कहा जाता है।[8] कटौती प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं। सबसे प्रभावी कटौती प्रस्ताव "नीति निरनुमोदिन कटौती" प्रस्ताव होता है जिसमें कहा जाता है "कि मांग की राशि घटा कर एक रुपया कर दी जाए।" इसका निहित अर्थ यह है कि प्रस्तावक मांग की मूल नीति का निरनुमोदन करता है। इसके अलावा "मितव्ययता कटौती" प्रस्ताव होता है जिसका उद्देश्य व्यय में मितव्ययता लाने की दृष्टि से मांग की राशि में उल्लिखित राशि कम करना होता है। यह प्रस्ताव इस रूप में होता है: "कि मांग की राशि में .... रुपए की कमी की जाए" (उल्लिखित राशि)। और अंतिम कटौती प्रस्ताव "सांकेतिक कटौती" प्रस्ताव होता है जिसमें कहा जाता है "कि मांग की राशि में 100 रुपए की कमी की जाए"। इस प्रस्ताव का उद्देश्य, जिसको कटौती प्रस्ताव के रूप में सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है, यह है कि ऐसी विशिष्ट शिकायत व्यक्त की जाए जिसके लिए भारत सरकार उत्तरदायी हो।

सुविधा के लिए, आमतौर पर मूल प्रस्ताव और उससे संबंधित कटौती प्रस्ताव पर सदन में एक साथ चर्चा की जाती है और मतदान के लिए रखा जाता है। इस प्रकार, कटौती प्रस्ताव अनुदानों की मांगों पर चर्चा आरंभ करने का एक उपाय है। चर्चा हो जाने के पश्चात, पहले कटौती प्रस्ताव निबटाए जाते हैं और उसके बाद अनुदानों की मांगें सभा के मतदान के लिए रखी जाती हैं। वास्तव में, कटौती प्रस्ताव प्रतीक मात्र होते हैं क्योंकि जब तक सरकार सदन में बहुमत का समर्थन खो न दे तब तक उनके स्वीकृत होने का प्रश्न ही नहीं होता। कटौती प्रस्ताव सामान्यतया विपक्ष के सदस्यों द्वारा पेश किए जाते हैं और यदि वे स्वीकृत हो जाएं तो इसका अर्थ होता है सरकार की निंदा। ऐसी स्थिति में, सरकार को यह सोचना पड़ता है कि क्या उसका पद पर बने रहना उचित होगा।

कार्य मंत्रणा समिति किसी मांग विशेष को और बजट सहित अनुदानों की सब मांगों को स्वीकृत करने के लिए समय सीमा निर्धारित करती है। जैसे ही किसी मांग की समय सीमा समाप्त होती है, उस पर चर्चा के "समापन" की प्रक्रिया लागू की जाती है और मांग को मतदान के लिए रख दिया जाता है।[9] इसी प्रकार, सभी मांगों के लिए नियत अंतिम दिन को जिन मांगों को तब तक निबटाया न गया हो, उन्हें मतदान के लिए रख दिया जाता है, चाहे उन पर चर्चा हुई हो या न हुई हो। इस प्रक्रिया को "गिलोटिन" कहते हैं। इसके साथ ही अनुदानों की मांगों पर चर्चा समाप्त हो जाती है।[10]

विभागों से संबंधित स्थायी समितियों द्वारा छानबीन : अनुभव से पता चला कि 'गिलोटिन' लागू होने से पहले हर वर्ष केवल चंद एक—कभी कभी तो केवल दो या तीन—मंत्रालयों की अनुदान की मांगों पर सदन में चर्चा हो पाती थी और सरकार के अन्य सभी मंत्रालयों तथा विभागों की अनुदान की मांगों को बिना किसी संसदीय छानबीन या वाद विवाद के स्वीकृति दे दी जाती थी। विभागों से संबंधित स्थापित की गई संसद की सत्रह स्थायी समितियों को अन्य कार्यों के साथ साथ संबंधित मंत्रालयों तथा विभागों की अनुदान मांगों पर विचार करने तथा मांगों पर मतदान होने से पहले सदन को रिपोर्ट करने का कार्यभार सौंपा गया है। 1994-95 की मांगें संसद के समक्ष पेश किये जाने के बाद, दोनों सदनों को एक मास के लिए स्थगित कर दिया गया था ताकि संबंधित स्थायी समितियां उनका निरीक्षण कर सकें तथा उन पर चर्चा कर सकें। 1994 के बजट अधिवेशन के दौरान इन समितियों ने वर्ष 1994-95 की अनुदानों की मांगों पर 48 रिपार्टें प्रस्तुत कीं।

(ग) विनियोग विधेयक (एप्रोप्रिएशन बिल) : संविधान के अनुसार, भारत की संचित निधि में से कोई धन, संसद द्वारा विधि के अधिनियम के बिना, नहीं निकाला जा सकता। इस उपबंध के अनुसरण में लोक सभा में एक विधेयक पेश किया जाता है जिसमें लोक सभा द्वारा स्वीकृत अनुदानों की सब मांगों तथा संचित निधि पर प्रभावित व्यय सम्मिलित किया जाता है। इस विधेयक को विनियोग विधेयक कहा जाता है। इस विधेयक का आशय, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, संचित निधि में से व्यय के विनियोग के लिए सरकार को कानूनी अधिकार देना है।

विनियोग विधेयक पर विचार करने और इसे पास करने की पद्धति वही है जो किसी भी अन्य विधेयक के मामले में अपनाई जाती है, सिवाय इसके कि वाद विवाद उन्हीं मामलों तक सीमित रहता है जिन मांगों पर वाद विवाद के दौरान चर्चा न की गई हो और इस पर कोई संशोधन पेश नहीं किए जा सकते। विधेयक के लोक सभा द्वारा पास किए जाने के पश्चात अध्यक्ष प्रमाणित करता है कि वह एक धन विधेयक है और उसे राज्य सभा के पास भेजा जाता है। राज्य सभा को विधेयक में संशोधन करने या उसे अस्वीकृत करने की शक्ति प्राप्त नहीं है और उसे विधेयक पर अपनी सम्मति प्रदान करनी ही पड़ती है। इसके पश्चात, विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

(घ) वित्त विधेयक : आने वाले वर्ष के लिए सरकार के सब वित्तीय प्रस्ताव एक विधेयक में सम्मिलित किए जाते हैं जिसे वित्त विधेयक कहा जाता है। यह विधेयक साधारणतया प्रत्येक वर्ष बजट पेश किए जाने के तुरंत पश्चात लोक सभा में पेश किया जाता है। यह सरकार के वित्तीय प्रस्तावों को और किसी अवधि के लिए अनुपूरक वित्तीय प्रस्तावों को भी प्रभावी करता है।[12]

वित्त विधेयक को पेश करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव का विरोध नहीं किया जा सकता और उसे तुरंत मतदान के लिए रखा जाता है।[13] विधेयक पर चर्चा सामान्य प्रशासन और स्थानीय शिकायतों संबंधी ऐसे मामलों पर होती है जिनके लिए संघ सरकार उत्तरदायी

हो।[14] सरकार की नीति की सामान्य रूप से आलोचना करने की अनुमति तो है परंतु किसी विशेष अनुमान के ब्यौरों पर चर्चा नहीं की जा सकती। संक्षेप में, समूचे प्रशासन का पुनरीक्षण तो होता है परंतु जिन प्रश्नों पर चर्चा हो चुकी हो उन पर फिर से चर्चा नहीं की जा सकती। यह विधेयक पेश किए जाने के पश्चात 75 दिनो के भीतर संसद द्वारा इस पर विचार करके पास किया जाना और उस पर राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो जाना आवश्यक है।[15]

लेखानुदान (वोट आन एकाउंट)

लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में सरकार बजट के उपबंधों और कर प्रस्तावों पर चर्चा करने का संसद को पूरा अवसर देने का प्रयास करती है। बजट पास करने की प्रक्रिया बजट पेश किए जाने से लेकर इस पर चर्चा करने और अनुदानों की मांगें स्वीकृत करने और विनियोग तथा वित्त विधेयकों के पास होने तक सामान्यतया चालू वित्तीय वर्ष के आरंभ होने के बाद तक चलती रहती है। जब तक संसद मांगें स्वीकृत नहीं कर लेती तब तक के लिए यह आवश्यक है कि देश का प्रशासन चलाने के लिए सरकार के पास पर्याप्त धन उपलब्ध हो। इसलिए "लेखानुदान" के लिए विशेष उपबंध किया गया है जिसके द्वारा लोकसभा को शक्ति दी गई है कि वह बजट की प्रक्रिया पूरी होने तक किसी वित्त वर्ष के एक भाग के लिए पेशगी अनुदान दे सकती है।[16]

साधारणतया, अनुदानों की विभिन्न मांगों के अंतर्गत समूचे वर्ष के लिए अनुमानित व्यय के 1/6वें भाग के बराबर दो मास के लिए राशि का लेखानुदान लिया जाता है। किसी निर्वाचन वर्ष के दौरान यदि ऐसी प्रत्याशा हो कि सदन द्वारा मुख्य मांगों को और विनियोग विधेयक को पास किए जाने में दो मास से अधिक समय लगेगा तो लेखानुदान लंबी अवधि के लिए, अर्थात तीन या चार मास के लिए, लिया जा सकता है। प्रथा के अनुसार, लेखानुदान को एक औपचारिकता माना जाता है और लोक सभा बिना चर्चा के इसे पास कर देती है। लेखानुदान तब पास होता है जब बजट पर सामान्य चर्चा हो चुकी हो और अनुदानों की मांगों पर चर्चा अभी आरंभ होनी हो। रेल बजट के मामले में जो 31 मार्च से पहले पास कर दिया जाता है, लेखानुदान नहीं लिया जाता लेकिन यदि आवश्यक हो तो निर्वाचन वर्ष में लिया जा सकता है।

अनुपूरक तथा अतिरिक्त अनुदानों की मांगें[17]

संसद द्वारा प्राधिकृत राशियों से अधिक राशि उसकी मंजूरी के बिना खर्च नहीं की जा सकती। यदि किसी विशिष्ट सेवा के लिए मंजूर की गई राशि उस वर्ष के प्रयोजनों के लिए अपर्याप्त पाई जाए या किसी "नयी सेवा" पर जिसकी उस वर्ष के बजट में परिकल्पना न की गई हो, अनुपूरक या अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता उत्पन्न हो जाए तो राष्ट्रपति उस व्यय की अनुमानित राशि दर्शाने वाला एक अन्य विवरण, अर्थात् अनुपूरक अनुदानों की मांगें दर्शाने वाला विवरण, संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखवाता है।

यदि किसी वित्तीय वर्ष के दौरान किसी सेवा पर उस वर्ष के लिए दी गई राशि से

अधिक राशि खर्च हो गई हो तो राष्ट्रपति ऐसी अतिरिक्त राशि के लिए मांग लोक सभा में पेश करवाता है। ऐसे अतिरिक्त व्यय के सभी मामले नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा विनियोग लेखाओं पर अपने प्रतिवेदन के माध्यम से संसद की जानकारी में लाए जाते हैं। तब अतिरिक्त व्यय के मामलों की जांच लोक लेखा समिति द्वारा की जाती है जो सदन के समक्ष पेश किए जाने वाले अपने प्रतिवेदन में उस व्यय को नियमित करने के बारे में सिफारिशें करती है।

अनुपूरक अनुदानों की मांगें वित्तीय वर्ष की समाप्ति से पूर्व सदन में पेश की जाती हैं और पास की जाती हैं जबकि अतिरिक्त अनुदानों की मांगें वास्तव में राशियां खर्च कर चुकने के बाद और उस वित्तीय वर्ष के बीत जाने के बाद पेश की जाती हैं, जिससे वे संबंधित हों।

अनुपूरक अनुदानों की मांगों पर चर्चा प्रस्तुत मांगों तक ही सीमित रहती है और मूल अनुदानों पर या उनकी अंतर्निहित नीति पर चर्चा नहीं की जा सकती।[18] मुख्य बजट में जिन योजनाओं को मंजूरी मिल चुकी हो उनके विषय में किसी सिद्धांत या नीति के प्रश्न पर चर्चा करने की अनुमति नहीं होती। जहां तक उन मांगों का संबंध है जिनके लिए मंजूरी न ली गई हो उनकी अंतर्निहित नीति के प्रश्न पर चर्चा व्यय की उन मदों तक सीमित रखनी होती है जिनकी सदन से स्वीकृति ली जा रही है। अनुपूरक अनुदान पर चर्चा के दौरान सामान्य शिकायतें व्यक्त नहीं की जा सकतीं। सदस्य केवल यह कह सकते हैं कि अनुपूरक मांग आवश्यक है या नहीं।

अतिरिक्त अनुदानों की मांगों पर चर्चा के दौरान सदस्य यह कह सकते हैं कि धन किस प्रकार अनावश्यक रूप में खर्च किया गया है या कि उसे खर्च नहीं करना चाहिए था। इस अवस्था में चर्चा यहीं तक सीमित रहती है और सामान्य चर्चा की या शिकायतें व्यक्त करने की कोई गुंजाइश नहीं होती।

प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान[19] (वोट आफ क्रेडिट और एक्सैप्शनल ग्रांट)

किसी राष्ट्रीय आपात के कारण सरकार को धन की अप्रत्याशित मांग को पूरा करने के लिए निधियों की आवश्यकता हो सकती है जिसके विस्तृत अनुमान देना शायद संभव न हो। ऐसी स्थिति में सदन बिना ब्यौरे दिए प्रत्ययानुदान के माध्यम से एकमुश्त धनराशि दे सकता है।

अपवादानुदान किसी विशेष प्रयोजन के लिए दिया जाता है जो वित्तीय वर्ष के साधारण खर्च का भाग नहीं होता। ऐसी स्थिति में सदन उस विशेष प्रयोजन के लिए अलग धनराशि दे सकता है। तथापि, अब तक ऐसी कोई मांगें संसद में पेश नहीं की गई हैं।

इनके अतिरिक्त, राष्ट्रपति के शासनाधीन संघ-राज्य क्षेत्रों और राज्यों के बजट भी लोक सभा में पेश किए जाते हैं। ऐसे मामलों में संघ सरकार के बजट संबंधी प्रक्रिया का ऐसे परिवर्तनों या रूपभेदों के साथ पालन किया जाता है जो अध्यक्ष करे।[20]

संदर्भ

1. अनु. 112, 113, 265 और नियम 204 संविधान में **'बजट'** शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। यह "वार्षिक वित्त विवरण" का लोकप्रिय नाम है।
2. अनु. 226 इसके अतिरिक्त एक आकस्मिकता निधि भी होती है जो संसद द्वारा प्राधिकृत किए जाने तक अविलंबनीय और अप्रत्याशित व्यय की पूर्ति के लिए राष्ट्रपति के पास रहती है (अनु. 267)।
3. अनु. 113
4. अनु. 114 (1)
5. नियम 219
6. निमय 205
7. नियम 207
8. नियम 209
9. नियम 362
10. नियम 208
11. नियम 218
12. नियम 219 (1)
13. नियम 72 (द्वितीय पुस्तक)
14. नियम 219 (5)
15. *देखिए* करों का अस्थायी संग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1964
16. अनु. 116 (1) (क) और (ख)
17. अनु. 115
18. नियम 216
19. अनु. 116
20. *देखिए,* सुभाष काश्यप, ए केस फार बजट कमेटीज, **नेशनल हेरल्ड**, 16 नवंबर, 1990 तथा बजट एंड पार्लियामेंट—नीड फॉर इनोवेशंस, **इकॉनॉमिक टाइम्स**, 3 मार्च, 1991

10

कानून कैसे बनते हैं

कानून अथवा विधि मूलतया आचरण के सिद्धांतों की व्याख्या करने वाले विधान का परिणाम है। विधि के अधीन कोई कार्य करने पर रोक हो सकती है या कोई कार्य करने की अनुमति हो सकती है या ऐसी रीति निर्धारित हो सकती है जिससे वह कार्य किया जाना चाहिए। प्रत्येक विधि के लिए संसद का प्राधिकार होना चाहिए क्योंकि संसद लोगों की सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है। लोगों के प्रति अपने दायित्वों को निभाने के लिए संसद को ऐसे विषयों पर विधान बनाने होते हैं जो सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करते हों और जिनसे उनकी आशाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति होती हो।

विधि का निर्माण करना संसद का प्रमुख कृत्य माना जाता है यद्यपि आज संसद का केवल यही एक कृत्य नहीं है और न ही विधि निर्माण का कार्य अकेली संसद करती है। आजकल विधानमंडल का थोड़ा सा ही समय विधि निर्माण के कार्य पर लगाया जाता है और विधि निर्माण के कार्य में पहल अधिकांशतया कार्यपालिका द्वारा की जाती है।[1] सरकार विधायी प्रस्ताव पेश करती है और उस पर चर्चा तथा वाद विवाद के पश्चात संसद उस पर अनुमोदन की अपनी मुहर लगाती है। संसद इस कृत्य का पालन अनेक प्रक्रियाओं के माध्यम से करती है।

सभी विधायी प्रस्ताव विधेयकों के रूप में संसद में पेश किए जाते हैं। विधेयक विधायी प्रस्ताव का मसौदा होता है। विधेयक संसद के किसी एक सदन में सरकार द्वारा या किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है। इस प्रकार मोटे तौर पर, विधेयक दो प्रकार के होते हैं : (क) सरकारी विधेयक और (ख) गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक। तथापि वर्तमान स्थिति यह है कि विधि का रूप लेने वाले अधिकांश विधेयक सरकारी विधेयक होते हैं। यद्यपि गैर-सरकारी सदस्यों के बहुत कम विधेयक विधि का रूप लेते हैं तथापि उनसे अच्छा प्रयोजन सिद्ध होता है क्योंकि उनके द्वारा यह बात सरकार के और लोगों के ध्यान में लाई जाती है कि वर्तमान विधि में परिवर्तनशील स्थितियों के प्रकाश में संशोधन करने या कोई आवश्यक विधान बनाने की आवश्यकता है।

पहली से नवीं लोक सभा के कार्यकाल के दौरान संसद द्वारा पारित किये गये विधान का परिमाण इस अध्याय के अंत में परिशिष्ट 10.1 में दिया गया है।

विधेयकों की विषय वस्तु के आधार पर उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :

- मूल विधेयक जिनमें नये प्रस्तावों, विचारों और नीतियों संबंधी उपबंध होते हैं;
- संशोधी विधेयक जिनका उद्देश्य वर्तमान अधिनियमों में रूपभेद करना या संशोधन करना होता है;
- समेकन विधेयक जिनका आशय किसी एक विषय पर वर्तमान विधियों को समेकित करना होता है।
- ऐसे विधेयक जिनका उद्देश्य व्ययगत होने वाले अधिनियमों को जारी रखना होता है;
- ऐसे विधेयक जो राष्ट्रपति द्वारा जारी किए जाने वाले अध्यादेशों का स्थान लेते हैं; और
- संविधान (संशोधन) विधेयक।

इसके अतिरिक्त, मोटे तौर पर, विधेयकों का वर्गीकरण इस प्रकार भी किया जा सकता है :

— साधारण विधेयक;
— वित्तीय मामलों संबंधी उपबंधों पर आधारित धन विधेयक; और
— संविधान संशोधन विधेयक।

साधारण विधेयक

ऐसे सभी विधेयक, जो संविधान संशोधन विधेयक और धन विधेयक नहीं होते, साधारण विधेयक होते हैं, अर्थात, साधारण विधान के लिए प्रस्तावों के मसौदे।

साधारण विधेयकों के बारे में विधायी प्रक्रिया

(एक) विधेयकों के मसौदे तैयार करना : जैसे ही कोई विधायी प्रस्ताव सामने आता है, संबंधित मंत्रालय यह देखता है कि उसके राजनीतिक, प्रशासनिक, वित्तीय और अन्य परिणाम क्या हो सकते हैं। यदि अन्य मंत्रालय या राज्य सरकारें भी उस से संबंधित हों तो उनका परामर्श लिया जाता है। उस प्रस्ताव के वैधिक एवं संवैधानिक पहलुओं के संबंध में विधि मंत्रालय का और भारत के महान्यायवादी का परामर्श लिया जाता है। व्यावसायिकों और विभिन्न हितों वाले ग्रुपों, जैसे व्यापारियों, श्रमिकों, कृषकों और उद्योगपतियों का भी, यदि ऐसा आवश्यक समझा जाए तो, परामर्श लिया जाता है। जब प्रस्ताव के सभी पहुलओं की जांच कर ली जाती है तो उसे अनुमोदन के लिए मंत्रिमंडल के सामने रखा जाता है। मंत्रिमंडल का अनुमोदन हो जाने पर सरकारी प्रारूपकार, विभागीय

विशेषज्ञों और अधिकारियों की सहायता से, प्रस्ताव को विधेयक का रूप देता है। उसके बाद विधेयक की प्रशासनिक मंत्रालय द्वारा सभी संबंधित प्राधिकारियों के परामर्श से विस्तृत रूप से जांच की जाती है और उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

इस समूची प्रक्रिया के पश्चात विधेयक सदन के समक्ष लाए जाने के लिए तैयार हो जाता है। संबंधित मंत्री द्वारा उसे संसद के दोनों सदनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। विधेयक को पेश करने की अनुमति लेने के लिए मंत्री को सात दिन की सूचना देनी होती है।[2] ऐसी सूचना के साथ विधेयक की विधिवत रूप से शुद्ध की गई दो प्रतियां उस सदन के महासचिव को भेजी जाती हैं जिसमें विधेयक पेश किया जाना हो। सचिवालय द्वारा विधेयक को सभी पहलुओं में पूर्ण पाए जाने के पश्चात, उसे ऐसी तिथि की कार्य सूची में सम्मिलित किया जाता है जो अध्यक्ष या सभापति द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, इस प्रयोजन के लिए निश्चित की गयी हो। साधारतणया, विधेयक की प्रतियां उस तिथि से कम से कम दो दिन पूर्व जबकि विधेयक पेश करने का विचार हो, सदस्यों को उपलब्ध हो जानी चाहिए।[3]

(दो) तीन वाचन : अधिनियम का रूप लेने से पूर्व विधेयक को संसद में विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक विधेयक के प्रत्येक सदन में तीन वाचन होते हैं, अर्थात प्रथम वाचन, द्वितीय वाचन और तृतीय वाचन।

(क) प्रथम वाचन : किसी भी विधेयक को पेश करने के लिए सदन की अनुमति लेना आवश्यक है। विधेयक पेश करने के लिए नियत दिन, प्रश्नकाल के पश्चात विधेयक का प्रभारी मंत्री अध्यक्ष के पुकारे जाने पर अपने स्थान पर खड़ा हो जाता है और कहता है, महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि "..................... विधेयक को पेश करने की अनुमति दी जाए"। आमतौर पर मौखिक मतदान द्वारा अनुमति दे दी जाती है और अनुमति दिए जाने का विरोध कभी कभार ही किया जाता है। मंत्री फिर खड़ा होकर यह कहता है, "महोदय मैं........................... विधेयक पेश करता हूं"।

सामान्यतया, विधेयक "पेश करना", जो कि विधेयक का प्रथम वाचन है, केवल औपचारिकता है और प्रथा के अनुसार इस अवस्था में चर्चा नहीं की जाती है। परंतु यदि विधेयक पेश करने के प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया जाए कि प्रस्तावित विधान संसद की विधायी क्षमता से बाहर है तो पीठासीन अधिकारी पूर्ण चर्चा की अनुमति दे सकता है जिसमें महान्यायवादी भी भाग ले सकता है।[4] उसके पश्चात प्रश्न सदन के मतदान के लिए रखा जाता है। एक दिन में कितने विधेयक पेश किए जा सकते हैं इस पर कोई रोक न होने के कारण कोई मंत्री जितने चाहे विधेयक पेश कर सकता है।

जब विधेयक सदन में पेश हो जाता है तो उसे भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है।[5] विधेयक पेश किए जाने से पूर्व भी अध्यक्ष/सभापति की अनुमति से राजपत्र

में प्रकाशित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में विधेयक पेश करने के लिए सदन की अनुमति लेना आवश्यक नहीं होता।[6] दूसरे शब्दों में, विधेयक को पेश करने की अवस्था से नहीं गुजरना पड़ता।

(ख) द्वितीय वाचन : विधेयक का द्वितीय वाचन सबसे अधिक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इसी अवस्था में इसकी विस्तृत एवं बारीकी से जांच की जाती है। द्वितीय वाचन अथवा विचार करने की अवस्था के दो चरण हैं जिन्हें प्रथम चरण और द्वितीय चरण कहा जा सकता है।

प्रथम चरण : प्रथम चरण में समूचे विधेयक पर सामान्य चर्चा होती है, अर्थात, विधेयक के केवल अंतर्निहित सिद्धांत पर तथा उसके ब्यौरे पर नहीं।[7] इस चरण में सदन चाहे तो विधेयक को सदन की प्रवर समिति को या दोनों सदनों की संयुक्त समिति को निर्दिष्ट कर सकता है या उस पर राय जानने के लिए परिचालित कर सकता है या यदि चाहे तो सीधे उस विचार कर सकता है।[8]

समिति को निर्दिष्ट करना : विधेयक प्रवर समिति को या संयुक्त समिति को निर्दिष्ट किया जा सकता है। प्रवर समिति के सदस्य उस सदन के सदस्यों में से, जिसमें विधेयक पेश किया गया हो, लिए जाते हैं। संयुक्त समिति के मामले में, दोनों सदनों के सदस्यों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है; ऐसे मामले में, लोक सभा और राज्य सभा के सदस्यों के बीच अनुपात 2 : 1 का रहेगा। संयुक्त समिति का सभापति उस सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा नियुक्त किया जाता है जिसमें विधेयक पेश किया गया हो।[9] ये तदर्थ समितियां होती हैं जो निर्दिष्ट किए जाने वाले विशेष विधेयकों पर विचार करने के लिए नियुक्त की जाती हैं।

विधेयक अब प्रत्येक विधेयक की विषय-वस्तु के अनुसार किसी भी सदन या इसके पीठासीन अधिकारी द्वारा दोनों सदनों की विभागों से संबंधित नई संयुक्त स्थायी समितियों को भी भेजे का सकते हैं।

समितियां विधेयकों पर वैसे ही खंड वार विचार करती हैं जैसे कि सदन करता है। समिति के सदस्यों द्वारा विभिन्न खंडों में संशोधन पेश किए जा सकते हैं।[10] समिति विशेषज्ञों का, ऐसे संघों का या सरकारी निकायों का साक्ष्य भी ले सकती है जो उस विधान में रुचि रखते हों।[11] समितियों में विधेयकों पर विचार करने की प्रक्रिया वही है जो सदन में होती है।[12] समिति द्वारा अलग अलग खंडों, अनुसूचियों आदि पर विचार कर लिए जाने और उन्हें स्वीकृत कर लिए जाने पर, लोक सभा सचिवालय सदन में या सदनों में पेश करने के लिए प्रतिवेदन तैयार करता है[13] फिर सदन समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक पर विचार करता है।

राय जानना : यदि किसी विधेयक पर राय जानने के लिए उसे परिचालित करने का प्रस्ताव स्वीकृत होता है तो उस सदन का सचिवालय सभी राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों को पत्र भेजकर उनसे कहता है कि वे विधेयक से संबंधित स्थानीय निकायों, संघों, व्यक्तियों

या संस्थाओं की राय आमंत्रित करने के लिए अपने अपने राजपत्रों में उसे प्रकाशित करें। राय जानने की अवधि का उल्लेख सामान्यतया विधेयक को प्रचालित करने संबंधी प्रस्ताव में ही कर दिया जाता है परंतु जहां इस प्रयोजन के लिए कोई तिथि उल्लिखित न हो वहां राज्य सरकारों से कहा जाता है कि वे प्रस्ताव की स्वीकृति की तिथि से तीन मास के भीतर राय भेज दें।[14] राय प्राप्त हो जाने पर उन्हें सदन के सभा पटल पर रख दिया जाता है जिसके पश्चात विधेयक को प्रवर/संयुक्त समिति को निर्दिष्ट करने का प्रस्ताव पेश किया जाता है।[15] साधारणतया इसकी अनुमति नहीं है कि इस अवस्था में विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव पेश किया जाए। विधेयक फिर समिति अवस्था से गुजरता है और फिर विधेयक को, प्रतिवेदित रूप में, सदन में पेश किया जाता है।

विधेयक पर प्रवर या संयुक्त समिति का प्रतिवेदन सदन में पेश किए जाने के पश्चात मंत्री इन तीनों में से कोई प्रस्ताव कर सकता है, अर्थात कि विधेयक पर, प्रतिवेदित रूप में, विचार किया जाए, या कि विधेयक को, प्रतिवेदित रूप में, फिर से उसी समिति के पास या किसी नयी समिति के पास भेजा जाए, या कि विधेयक पर राय जानने के लिए या अग्रेतर राय जानने के लिए परिचालित किया जाए या पुनः परिचालित किया जाए, जैसी भी स्थिति हो।[16]

यदि मंत्री यह प्रस्ताव पेश करता है कि विधेयक पर, प्रतिवेदित रूप में, विचार किया जाए तो उस पर वाद विवाद की अनुमति दी जाती है। तब वाद विवाद समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक तक ही सीमित रहता है और विधेयक के सिद्धांत पर फिर से चर्चा नहीं की जा सकती क्योंकि जब विधेयक समिति को निर्दिष्ट करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया जाता है तो सदन विधेयक के सिद्धांत पर वचनबद्ध हो जाता है।

द्वितीय चरण : विधेयक पर या प्रवर/संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के पश्चात, विधेयक पर खंड वार विचार आरंभ होता है। प्रत्येक खंड चर्चा के लिए अलग से सदन के समक्ष रखा जाता है। खंड सदन के समक्ष रखे जाने के तुरंत पश्चात ग्राह्यता की शर्तों के अध्यधीन उसमें संशोधन पेश किए जा सकते हैं।[17] खंड वार विचार प्रायः लंबा और कठिन होता है क्योंकि प्रत्येक खंड पर साधारणतया अलग से चर्चा की जाती है और प्रत्येक संशोधन पर (सिवाय ऐसे संशोधनों के जो प्रस्तावक द्वारा वापस ले लिए गए हों) भी चर्चा अलग से होती है और उसे सदन द्वारा अलग से स्वीकृत या अस्वीकृत किया जाता है। जो संशोधन स्वीकृत हो जाते हैं वे विधेयक का अंग बन जाते हैं।

(ग) तृतीय वाचन : जब विधेयक के सभी खंडों पर और अनुसूचियों पर, यदि कोई हों, सदन विचार कर लेता है और उन्हें स्वीकृत कर लेता है तो मंत्री यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को पास किया जाए।[18] इस अवस्था में, विधेयक के समर्थन में या उसे अस्वीकृत किए जाने के लिए तर्क दिए जाने तक ही चर्चा सीमित रहती है और उससे

आगे केवल उतने विस्तार में जाने की अनुमति होती है जितना कि पूर्णतया आवश्यक हो।[19] इस अवस्था में केवल शाब्दिक, औपचारिक और आनुषंगिक संशोधन ही पेश किए जा सकते हैं।[20] चूंकि विधेयक के सामान्य सिद्धांतों पर सहमति हो चुकी होती है और उसकी विस्तारपूर्वक जांच भी हो चुकी होती है अतः तृतीय वाचन के दौरान लंबा वाद विवाद शायद ही कभी होता हो।

कोई साधारण विधेयक पास करने के लिए उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का साधारण बहुमत अपेक्षित होता है। इसलिए संसदीय शासन प्रणाली में, जहां बहुमत के समर्थन से ही सरकार बनती है, कोई भी सरकारी विधेयक आमतौर से आसानी से पास हो जाता है। किंतु यह संभव है कि सरकार को लोक सभा में तो बहुमत प्राप्त हो लेकिन राज्य सभा में ऐसा न हो। ऐसी स्थिति में किसी विवादास्पद विधेयक को पास कराने के लिए सरकार को विपक्ष के कतिपय सदस्यों का समर्थन प्राप्त करना अनिवार्य हो सकता है।

(तीन) दूसरे सदन में विधेयक : जिस सदन में विधेयक पेश किया गया हो उसमें पास किए जाने के पश्चात उसे सहमति के लिए इस आशय के संदेश के साथ दूसरे सदन में भेजा जाता है।[21] वहां विधेयक फिर इन तीनों अवस्थाओं में से गुजरता है। दूसरा सदन इनमें से कोई कार्यवाही कर सकता है।[22]

(क) वह सदन उस विधेयक को पूर्णतया अस्वीकार कर सकता है जिससे दोनों सदनों के बीच गतिरोध उत्पन्न हो सकता है।

(ख) वह विधेयक को उसी रूप में या संशोधनों के साथ पास कर सकता है। यदि वह पहले सदन द्वारा भेजे गए रूप में उसे पास कर देता है तो वह विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके पास भेजा जाता है और यदि विधेयक संशोधनों के साथ पास किया जाता है तो विधेयक पहले सदन के पास वापस भेज दिया जाता है। वहां वह संशोधन विधेयक सभा पटल पर रखा जाता है। उसके दो दिन पश्चात संबंधित मंत्री यह प्रस्ताव कर सकता है कि दूसरे सदन द्वारा प्रस्तावित संशोधन या संशोधनों पर विचार किया जाए। यदि पहला सदन दूसरे सदन द्वारा प्रस्तावित संशोधनों से सहमत हो जाता है तो वह विधेयक, संशोधित रूप में, दोनों सदनों द्वारा पास किया गया माना जाता है। परंतु यदि पहला सदन दूसरे सदन द्वारा प्रस्तावित संशोधन से सहमत नहीं होता तो वह विधेयक एक बार फिर दूसरे की सहमति के लिए उसके पास भेजा जाता है। यदि दूसरा सदन अपने संशोधनों पर फिर भी जोर देता है तो एक गतिरोध उत्पन्न हो जाता है।

(ग) यह भी हो सकता है कि वह सदन विधेयक पर कोई कार्यवाही न करे, अर्थात उसे सभा पटल पर खड़ा रहने दे। ऐसी स्थिति में, यदि विधेयक प्राप्त होने की तिथि से छह मास बीत जाते हैं तो यह मान लिया जाता है कि गतिरोध उत्पन्न हो गया है।

(चार) दोनों सदनों की संयुक्त बैठक : किसी विधेयक पर दोनों सदनों के बीच असहमति के कारण गतिरोध के मामले में एक असाधारण स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसका समाधान दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में होता है। संविधान के अधीन राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त है कि वह उस विधेयक पर, यदि वह विधेयक लोक सभा के विघटित हो जाने के कारण व्यपगत न हो गया हो तो, विचार करने और मतदान कराने के प्रयोजन से दोनों सदनों को संयुक्त बैठक के लिए आमंत्रित करे। ऐसी संयुक्त बैठक की अध्यक्षता अध्यक्ष द्वारा की जाती है और महासचिव, लोक सभा, उसकी सहायता करता है।[23] संयुक्त बैठक पर लोक सभा के प्रक्रिया नियम लागू होते हैं। संयुक्त बैठक में केवल ऐसे संशोधनों का प्रस्ताव किया जा सकता है जो विधेयक पास करने में विलंब के कारण आवश्यक हो गए हों। ऐसी बैठकों में फैसले दोनों सदनों के उपस्थित और मतदान करने वाले कुल सदस्यों के बहुमत द्वारा किए जाते हैं। इस प्रकार, लोक सभा की सदस्य-संख्या अधिक होने के कारण उसका निश्चित ही प्रभुत्व रहता है। अब तक केवल दो विधेयक, अर्थात दहेज निषेध विधेयक, 1961 और बैंककारी सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1978 संयुक्त बैठक में पास किए गए हैं।

(पांच) विधेयकों पर राष्ट्रपति की अनुमति : जब दोनों सदनों द्वारा कोई विधेयक अलग अलग या संयुक्त बैठक में पास कर दिया जाता है तो उसे राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। यदि राष्ट्रपति अनुमति रोक लेता है तो विधेयक का अंत हो जाता है। किंतु चूंकि, राष्ट्रपति एक संवैधानिक प्रधान होता है, जिसे मंत्रिपरिषद के परामर्श पर ही कार्य करना होता है, इसलिए सामान्यतया वह अपने मंत्रियों के परामर्श के विरुद्ध जाकर अनुमति को नहीं रोकेगा किंतु वह सूचना, स्पष्टीकरण या परामर्श पर पुनः विचार करने की मांग कर सकता है और इस प्रयोजन के लिए विधेयक को सरकार के पास वापस भेज सकता है [अनुच्छेद 74(2) तथा 78 (ख)]। राष्ट्रपति जैल सिंह ने डाक विधेयक के मामले में और राष्ट्रपति वेंकटरामन ने केवल एक वर्ष की सेवा के बाद संसद सदस्यों को पेंशन देने वाले विधेयक के मामले में संभवतया ऐसा ही किया था।

यदि राष्ट्रपति अनुमति प्रदान कर देता है तो अनुमति की तिथि से विधेयक अधिनियम बन जाता है। अपनी अनुमति देने से इंकार करने या अनुमति प्रदान कर देने के बजाय राष्ट्रपति विधेयक को इस संदेश के साथ वापस कर सकता है कि दोनों सदन उस पर पुनः विचार करें। परंतु यदि सदन विधेयक में संशोधन करके या बिना संशोधन किए दूसरी बार उसे पास कर देते हैं और विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए फिर उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो उसे विधेयक पर अपनी अनुमति रोक लेने की शक्ति प्राप्त नहीं होगी।[25]

धन विधेयक

संविधान के अनुच्छेद 110 में धन विधेयक की विस्तृत परिभाषा की गई है। इस अनुच्छेद

के अनुसार कोई विधेयक धन विधेयक माना जाता है यदि उसमें केवल निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों से संबंधित उपबंध हों, अर्थात—

(क) किसी कर का अधिरोपण, परिहार, परिवर्तन;

(ख) सरकार द्वारा धन का विनियमन या ऋण लेना;

(ग) भारत की संचित निधि या आकस्मिकता निधि में धन जमा करना या उसमें से धन निकालना;

(घ) किसी नये व्यय को भारत की संचित निधि पर प्रभारित व्यय घोषित करना; और

(ङ) अनुच्छेद 110 (1) के उपखंड (क) से (च) में उल्लिखित किसी विषय का आनुषंगिक कोई विषय।

परंतु कोई विधेयक केवल इसीलिए धन विधेयक नहीं माना जाता कि वह लाइसेंस के लिए फीस का या की गई सेवा के लिए फीस की मांग या उनकी अदायगी का उपबंध करता है या इसीलिए कि वह किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन और विनियमन आदि का उपबंध करता है। यह याद रखने की बात है कि यदि ऐसा प्रश्न उत्पन्न हो जाए कि कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं तो इस बारे में अध्यक्ष का फैसला अंतिम होगा।[26]

धन विधेयकों के बारे में विशेष प्रक्रिया

कोई धन विधेयक राज्य सभा में पेश नहीं किया जा सकता।[27] वह राष्ट्रपति की सिफारिश पर केवल लोक सभा में ही पेश किया जा सकता है।[28] धन विधेयक लोक सभा द्वारा पास किए जाने के पश्चात वह, अध्यक्ष के इस आशय के प्रमाण-पत्र के साथ कि वह धन विधेयक है, राज्य सभा की सिफारिशों के लिए उसके पास भेजा जाता है। राज्य सभा किसी धन विधेयक को न तो रद्द कर सकती है और न ही उसे ऐसे विधेयक में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है। उसके लिए विधेयक की प्राप्ति की तिथि से 14 दिन की अवधि के भीतर उसे अपनी सिफारिशों के साथ लोक सभा को लौटाना अनिवार्य है। तत्पश्चात लोक सभा या तो राज्य सभा की किसी एक या सभी सिफारिशों को स्वीकार कर सकती है या रद्द कर सकती है। यदि राज्य सभा द्वारा की गई कोई भी सिफारिश को लोक सभा स्वीकार कर लेती है तो धन विधेयक, राज्य सभा द्वारा की गई और लोक सभा द्वारा स्वीकार की गई सिफारिशों के साथ, दोनों सदनों द्वारा पास किया गया माना जायेगा। यदि राज्य सभा द्वारा की गई कोई भी सिफारिश लोक सभा स्वीकार नहीं करती तो विधेयक, राज्य सभा द्वारा संशोधन की सिफारिश किए जाने से पूर्व लोक सभा द्वारा पास किए गए रूप में, दोनों सदनों द्वारा पास किया गया माना जाएगा। इसके अतिरिक्त, यदि कोई पास किया गया और राज्य सभा की सिफारिश के लिए उसके पास भेजा गया धन विधेयक 14 दिन की उक्त अवधि के भीतर लोक सभा को लौटाया नहीं जाता तो

चौदह दिन बीत जाने पर उसे दोनों सदनों द्वारा पास किया गया माना जाएगा। धन विधेयक के संबंध में दोनों सदनों के बीच असहमति का कोई प्रश्न नहीं है जैसाकि किसी साधारण विधेयक के मामले में होता है, क्योंकि साधारण विधेयकों के संबंधों में उसे लोक सभा के बराबर शक्ति प्राप्त है। इसीलिए किसी धन विधेयक के मामले में संयुक्त बैठक का कोई उपबंध नहीं है। किसी धन विधेयक पर राज्य सभा का अनुमोदन व्यवहार में मात्र एक औपचारिकता है।

वित्त विधेयक

संविधान में धन विधेयकों (मनी बिल) और वित्त विधेयकों (फाइनेंशियल बिल) में भेद किया गया है।[29] सामान्य रूप से, कोई ऐसा विधेयक वित्त विधेयक होता है जो राजस्व या व्यय से संबंधित हो। वित्त विधेयकों में, किसी धन विधेयक के लिए संविधान में उल्लिखित किसी मामले का उपबंध करने के अतिरिक्त, अन्य मामलों का भी उपबंध किया जाता है। सुविधा के लिए, वित्त विधेयकों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में रखा जा सकता है :

श्रेणी क : ऐसे विधेयक जिनमें धन विधेयक के लिए अनुच्छेद 110 में उल्लिखित किसी भी मामले के लिए उपबंध किए जाते हैं परंतु केवल उन्हीं मामलों के लिए ही उपबंध नहीं किए जाते, उदाहरणार्थ, कोई विधेयक जिसमें करारोपण का खंड होता है परंतु वह केवल करारोपण के संबंध में ही नहीं होता।

श्रेणी ख : ऐसे विधेयक जिनमें संचित निधि से व्यय संबंधी उपबंध हों।

धन विधेयक और वित्त विधेयक में अंतर

धन विधेयक और वित्त विधेयक में अंतर जैसाकि संविधान में उपबंधित है, केवल तकनीकी स्वरूप का है। तदनुसार, सभी वित्त विधेयक धन विधेयक नहीं होते। केवल ऐसे वित्त विधेयक ही धन विधेयक हो सकते हैं जिसमें केवल अनुच्छेद 110 में उल्लिखित मामलों का उपबंध हो और सबसे बड़ी बात यह है कि जिन्हें अध्यक्ष द्वारा धन विधेयक के रूप में प्रमाणित किया जाए।

इसके अतिरिक्त, दोनों सदनों द्वारा धन विधेयकों और वित्त विधेयकों को पास करने की प्रक्रिया में थोड़ा अंतर है। धन विधेयक, राष्ट्रपति की सिफारिश पर केवल लोक सभा में पेश किया जा सकता है और राज्य सभा को उस पर अपनी सम्मति को रोकने की शक्ति प्राप्त नहीं है। श्रेणी **क** के वित्त विधेयक ऐसे विधेयक होते हैं जिनमें किसी धन विधेयक के लिए उल्लिखित किसी मामले का उपबंध हो परंतु जो केवल ऐसे ही मामलों से संबंध न रखते हों। इस श्रेणी के विधेयक में दो तत्व ऐसे होते हैं जो किसी धन विधेयक में भी पाए जाते हैं, अर्थात (क) वह राज्य सभा में पेश नहीं किया जा सकता

और (ख) वह राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही पेश किया जा सकता है। परंतु वित्त विधेयक धन विधेयक न होने के कारण, राज्य सभा को इसे रद्द करने या इसमें संशोधन करने की वैसे ही पूरी शक्ति है जैसे इसे किसी भी साधारण विधेयक के मामले में प्राप्त है। सिवाय इस सीमा के कि कर में कमी करने और कर का उत्पादन करने के अलावा कोई संशोधन राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना दोनों में से किसी भी सदन में पेश नहीं किया जा सकता, वित्त विधेयक को एक साधारण विधेयक के समान राज्य सभा में सभी अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है और दोनों सदनों में असहमति होने की स्थिति में गतिरोध के समाधान के लिए संयुक्त बैठक के उपबंध का पालन किया जाता है। संयुक्त बैठक का उपबंध धन विधेयक के मामले में लागू नहीं होता।

श्रेणी **ख** के वित्त विधेयक को जिसमें अन्य बातों के साथ साथ भारत की संचित निधि से व्यय का एक या अधिक प्रस्ताव हों और जिसमें अनुच्छेद 110 में उल्लिखित कोई मामला भी शामिल न हो, एक साधारण विधेयक माना जाता है और इसी कारण वह किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है और राज्य सभा को उसे रद्द करने या उसमें संशोधन करने की पूरी शक्ति प्राप्त है। उसे पेश करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश अपेक्षित नहीं होती। परंतु किसी भी सदन द्वारा उस पर विचार करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, ऐसी शर्त नहीं है कि उसे पेश करने से पूर्व राष्ट्रपति उसकी सिफारिश करें जैसाकि किसी धन विधेयक और श्रेणी **क** के वित्त विधेयक के मामले में है परंतु इस मामले में कोई भी सदन तब तक विधेयक पास नहीं कर सकता जब तक कि ऐसी सिफारिश राष्ट्रपति द्वारा न की जाए। अन्य सभी पहलुओं में, दोनों सदनों में असहमति की स्थिति में संयुक्त बैठक के उपबंध सहित, ऐसे विधेयक की प्रक्रिया वही है जो किसी साधारण विधेयक की होती है।

संविधान (संशोधन) विधेयक

संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया अनुच्छेद 368 में निर्धारित की गई है। संविधान में किसी पृथक संविधायी निकाय की व्यवस्था नहीं है। संविधान में संशोधन करने की शक्ति संसद में निहित है। संविधान में संशोधन करने के लिए विधेयक संसद के दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। ऐसा विधेयक सरकार द्वारा लाया जा सकता है या किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा। सामान्यतया, मंत्रियों द्वारा लाए जाने वाले संविधान (संशोधन) विधेयक लोक सभा में पेश किए जाते हैं। किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा संविधान (संशोधन) विधेयक लाया जाता है तो उसके गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर लागू होने वाले साधारण नियमों के अध्यधीन होने के अलावा यह भी आवश्यक है कि गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति सदन में विधेयक के पेश किए जाने के लिए उसकी जांच करे और सिफारिश करे।[30]

संशोधन के प्रयोजनों के लिए संविधान के अनुच्छेदों का तीन श्रेणियों में वर्गीकरण

किया गया है, अर्थातः—

(क) ऐसे अनुच्छेद जिनमें साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है;

(ख) ऐसे अनुच्छेद जिनमें संशोधन करने के लिए विशेष बहुमत अपेक्षित है; और

(ग) ऐसे अनुच्छेद जिनमें संशोधन करने के लिए विशेष बहुमत और साथ ही कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा अनुसमर्थन अपेक्षित है।

साधारण बहुमत द्वारा संशोधन

संविधान के निम्नलिखित उपबंधों में संशोधन करने वाले विधेयक के लिए साधारण बहुमत का समर्थन अपेक्षित होता है और ऐसा कोई विधेयक संविधान के अनुच्छेद 368 के अधीन संविधान (संशोधन) विधेयक नहीं माना जाता :

(क) नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना; नए राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन (अनुच्छेद 2, 3, 4);

(ख) राज्य में विधान परिषदों के सृजन का उत्सादन (अनुच्छेद 169)

(ग) अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों का प्रशासन और नियंत्रण (पांचवीं अनुसूची का पैरा 7); और

(घ) असम, मेघालय और मिजोरम राज्यों में जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन (छठी अनुसूची का पैरा 21)।

नए राज्यों का निर्माण करने के लिए और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन करने के लिए विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही संसद के दोनों में से किसी सदन में पेश किया जा सकता है। सिफारिश करने से पूर्व राष्ट्रपति को संबंधित राज्यों के विचार, उसके द्वारा निर्धारित अवधि में, जानने के लिए विधेयक उन्हें निर्दिष्ट करना होता है। परंतु वह इस प्रकार प्राप्त हुए विचारों को मानने के लिए बाध्य नहीं होता।[31]

यदि किसी राज्य की विधान सभा अपने उपस्थित और मतदान करने वाले कम से कम दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से राज्य में विधान परिषद के उत्सादन या सृजन के लिए संकल्प पास करती है तो संसद उस राज्य में विधान परिषद के उत्सादन या सृजन के लिए उपबंध करने वाला विधान पास कर सकती है।[32] संसद ऐसे संकल्प का अनुमोदन कर सकती है या निरनुमोदन कर सकती है या यदि चाहे तो उस पर कोई कार्यवाही न करे।

विशेष बहुमत द्वारा संशोधन

संविधान के किसी अन्य भाग में संशोधन करने वाला विधेयक विशेष बहुमत द्वारा पास किया जाता है, अर्थात, उस सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा और उस सदन में उपस्थित और मतदान करने वाले कम से कम दो तिहाई सदस्यों के बहुमत द्वारा। वास्तव में, विशेष बहुमत केवल विधेयक के तृतीय वाचन की अवस्था में मतदान के लिए अपेक्षित

है, परंतु पर्याप्त सावधानी के तौर पर विधेयक की सभी प्रभावी अवस्थाओं के सबंध में सदनों के नियमों में विशेष बहुमत का उपबंध किया गया है।[33]

विशेष बहुमत द्वारा संशोधन और राज्यों द्वारा अनुसमर्थन

संविधान के निम्नलिखित उपबंधों में संशोधन करने वाला विधेयक संसद के दोनों सदनों में विशेष बहुमत द्वारा पास किया जाना होता है और राष्ट्रपति की अनुमति के लिए विधेयक उसके समक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व, कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा संकल्प पास करके उसका अनुसमर्थन भी करना होता है।[34]

(क) राष्ट्रपति का निर्वाचन (अनुच्छेद 54 और 55);

(ख) संघ तथा राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार (अनुच्छेद 73 और 162);

(ग) उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय (संविधान का अनुच्छेद 241, भाग 5 का अध्याय 4 और भाग 6 का अध्याय 5);

(घ) संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का वितरण (संविधान के भाग 11 का अध्याय 1 और सातवीं अनुसूची);

(ङ) संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व; या

(च) संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया (अनुच्छेद 368)।

संविधान में ऐसी समय सीमा निर्धारित नहीं है जिसमें राज्यों के लिए इस प्रयोजन हेतु निर्दिष्ट संविधान (संशोधन) विधेयक पर अपने अनुसमर्थन की सूचना देना अनिवार्य हो।

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक

लोगों के प्रतिनिधियों को लोक महत्व के विभिन्न मामलों पर अपने विचार व्यक्त करने का अवसर प्रदान करने और सरकार को कार्यक्रम एवं नीतियों के निर्माण के लिए राजी करने की दृष्टि से संसद के नियमों एवं प्रक्रियाओं में गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा भी विधान की शुरुआत करने का उपबंध किया गया है।

गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा लाए जाने वाले विधेयकों पर चर्चा करने से सदन को समस्याओं को समझने का और उनके सभी पहलुओं पर विचार करने का अवसर मिलता है। गैर-सरकारी सदस्य का विधेयक अंत में पास हो या न हो परंतु उस पर चर्चा करने से सदन के सभी प्रकार के मतों से सरकार अवगत हो जाती है। विधेयक में दिए गए विशिष्ट प्रस्तावों की ओर सरकार का और लोगों का ध्यान दिलाने का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। सरकार विधेयक के विषय के बारे में नीति विषयक फैसला करती है और अपने विचार सदन के समक्ष रखती है। चर्चा से एक लाभ यह होता है कि सरकार उस विषय पर, यदि आवश्यक हो तो, व्यापक विधेयक स्वयं ला सकती है।

प्रत्येक अधिवेशन में हर दूसरे शुक्रवार के दिन गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों से संबंधित कार्य निबटाने के लिए ढाई घंटे का समय नियत किया जाता है। मास के अन्य दो शुक्रवारों के दिन गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प लिए जाते हैं।

जहां तक सदन में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों की अवस्थाओं और अन्य सामान्य प्रक्रियाओं का संबंध है, सरकारी विधेयकों और गैर-सरकारी विधेयकों में कोई अंतर नहीं है। किसी गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक पर भी वैसे ही कार्यवाही की जाती है जैसे कि सरकारी विधेयक पर की जाती है। परंतु विधेयक पेश करने की सूचना की अवधि, किसी सदस्य द्वारा एक अधिवेशन में पेश किए जा सकने वाले विधेयकों की संख्या पर प्रतिबंध, संविधान में संशोधन करने वाले विधेयकों, चर्चा के लिए सापेक्ष पूर्ववर्तिता, इत्यादि के संबंध में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों से संबंधित कुछ विशिष्ट प्रक्रिया है।

यदि कोई सदस्य कोई विधेयक पेश करना चाहता हो तो, यदि अध्यक्ष या सभापति, जैसे भी स्थिति हो, अल्प-सूचना पर विधेयक पेश करने की अनुमति न दे तो, उसे एक मास की सूचना देनी पड़ती है। विधेयक की सूचना के साथ विधेयक की एक प्रति और उद्देश्यों तथा कारणों का एक व्याख्यात्मक विवरण देना होता है। यदि विधेयक के कारण, उस के अधिनियमन की स्थिति में सार्वजनिक निधियों से धन व्यय होने की संभावना हो तो सदस्य द्वारा अंतर्ग्रस्त अनुमानित व्यय दर्शाने वाला एक वित्तीय ज्ञापन विधेयक के साथ लगाना होता है। यदि विधेयक में प्रत्यायोजित (डेलिगेटेड) विधान के लिए प्रस्ताव हों तो प्रत्यायोजित विधान के बारे में एक ज्ञापन भी विधेयक के साथ लगाना होता है।[35]

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत दिन को पेश किए जाने वाले सभी विधेयक उस दिन की गैर-सरकारी सदस्यों की कार्य सूची में सम्मिलित किए जाते हैं।[36]

लोक सभा में संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर लागू होने वाले साधारण नियमों के अनुकूल होने चाहिए, परंतु इसके अलावा सदन की एक समिति अर्थात, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति भी उनकी जांच करती है[37] और केवल वही विधेयक पेश किए जाने के लिए कार्य सूची में रखे जाते हैं जिनकी उक्त समिति सिफारिश करे।

प्रथा के अनुसार, गैर-सरकारी सदस्य के किसी विधेयक को पेश करने के लिए अनुमति के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया जाता। यदि उसका विरोध किया जाए तो पीठासीन अधिकारी प्रस्ताव का विरोध करने वाले सदस्य को और प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य को संक्षिप्त वक्तव्य देने की अनुमति दे सकता है और तत्पश्चात प्रस्ताव सदन के फैसले के लिए मतदान के लिए रख सकता है। यदि विधेयक पेश करने के प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया जाता है कि वह सदन की विधायी क्षमता से बाहर है, तो पीठासीन अधिकारी उस पर पूर्ण चर्चा की अनुमति दे सकता है और तत्पश्चात प्रस्ताव सदन में

मतदान के द्वारा फैसले के लिए रख सकता है। यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो विधेयक का प्रभारी सदस्य विधेयक पेश करता है। साधारणतया, एक सदस्य एक अधिवेशन में चार विधेयक पेश कर सकता है।

लोक सभा में कोई विधेयक पेश किए जाने के पश्चात और सदन में उसे विचारार्थ लिए जाने से पूर्व, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति विधेयक के स्वरूप, अविलंबनीयता और महत्व की दृष्टि से विधेयकों का वर्गीकरण करके उन्हें दो श्रेणियों में रखती है, अर्थात श्रेणी "क" तथा श्रेणी "ख"। समिति उन पर चर्चा के लिए समय भी नियत करती है। सदन में विचार करने के प्रयोजन के लिए श्रेणी "क" के वर्ग के विधेयक पहले लिए जाते हैं। और श्रेणी "ख" के वर्ग के विधेयक बाद में लिए जाते हैं। लोक सभा में किसी विशिष्ट श्रेणी में विधेयकों की सापेक्ष पूर्ववर्तिता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है। विधेयक बैलट द्वारा निर्धारित प्राथमिकता के क्रम में कार्य सूची में सम्मिलित किए जाते हैं।[38] शेष मामलों में विधेयक की अवस्थाएं वही हैं जो सरकारी विधेयकों के मामले में होती हैं।

अधीनस्थ विधान (सबोर्डिनेट लेजिस्लेशन)

आधुनिक सभ्यता की जटिलताओं और तेजी से होने वाले औद्योगीकरण के कारण राज्य के लिए आवश्यक हो गया है कि वह अहस्तक्षेप के सिद्धांत का त्याग करके समाज कल्याण के विचार पर जोर दे। परिणाम यह है कि राज्य सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन का अधिकाधिक माध्यम बन गया है। अब सरकार को जो विधान बनाना पड़ता है उसका दायरा इतना व्यापक और स्वरूप इतना विविध होता है कि उससे मानव उपक्रम का कोई पहलू अछूता नहीं रहता। इसके अतिरिक्त, विधि निर्माण की प्रक्रिया अब सरल नहीं रही है, बल्कि अधिकाधिक जटिल एवं तकनीकी स्वरूप की होती जा रही है। ऐसी स्थिति में, विधानमंडल के पास न तो इतना समय होता है कि वह सभी आवश्यक विधियों पर विचार कर सके, चर्चा कर सके और उसका अनुमोदन कर सके, और न ही अपेक्षित विशेषज्ञता होती है कि वह उनके प्रतिक्रियागत एवं तकनीकी ब्यौरों में जा सके। यद्यपि साधारणतया संसद का अधिवेशन वर्ष में छह से सात मास तक चलता है, फिर भी बहुत सा विधान शेष रहता है जिस पर कार्यवाही नहीं की जा सकती। इसीलिए उपबंध किया गया है कि विधानमंडल विधान बनाने की अपनी कुछ शक्तियां किसी अधीनस्थ एजेंसी को प्रत्यायोजित कर सकता है। इसका परिणाम यह है कि विधानमंडल सामान्य रूप की विधियां बनाता है और यह बात सरकार पर छोड़ देता है कि वह उल्लिखित सीमाओं में रहकर विस्तृत नियम एवं विनियम बनाए और विधान के उद्देश्यों को पूरा करे और ऐसी नयी परिस्थितियों का समाधान करें जो विधियां बनाते समय विधानमंडल के समक्ष नहीं थीं। विधानमंडल द्वारा प्रत्यायोजित प्राधिकार के अधिकार क्षेत्र में रहकर किसी अधीनस्थ एजेंसी द्वारा बनाए जाने वाले ऐसे नियमों एवं विनियमों को "अधीनस्थ विधान" कहा

जाता है। कभी कभी इसे "प्रत्यायोजित विधान" भी कहा जाता है।

भारत में प्रत्यायोजन की यह शक्ति विधायी शक्ति का ही तत्व है। विधानमंडल अपने मूल विधायी कृत्य, अर्थात, विधायी नीति का निर्धारण और आचरण के नियम के रूप में उसके निर्माण के कृत्य कार्यपालिका को या किसी अन्य निकाय को प्रत्यायोजित करने में सक्षम नहीं है। ऐसा तभी अनुज्ञेय है जबकि विधायी नीति एवं सिद्धांत पर्याप्त रूप से निर्धारित हों और प्रत्यायुक्त को केवल इतनी शक्ति दी जाए कि वह विधानमंडल द्वारा निर्धारित मार्गदर्शक सिद्धांतों के दायरे में रहकर उप-नीति को लागू करे। दूसरे शब्दों में विधानमंडल अपने द्वारा निर्धारित मूल सिद्धांतों के दायरे में रहकर ब्यौरे तैयार करने के लिए अन्य निकायों या प्राधिकारियों का मात्र प्रयोग कर सकता है।

अधीनस्थ विधान की कभी कभी इस आधार पर जोरदार आलोचना की जाती है कि इस प्रक्रिया से संसद की विधायी शक्तियां प्रशासन अनधिकृत रूप से ग्रहण कर लेता है और इसके परिणामस्वरूप सरकारी अफसरों की "नयी सामंतशाही" कायम हो जाती है। वे न तो संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं और न प्रत्यक्ष रूप से लोगों के प्रति। दूसरी ओर, आज के वातावरण में अधीनस्थ विधान से पूर्णतया बचना असंभव है। इसलिए सबसे आवश्यक बात यह है कि अधीनस्थ विधान की शक्ति के प्रयोग पर निरंतर संसदीय निगरानी एवं नियंत्रण रहे।

इस शक्ति का दुरुपयोग संभव न हो इसके लिए कुछ पूर्वोपायों का उपबंध किया गया है। उदाहरणार्थ, यह निर्धारित है कि "जिस विधेयक में विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन के प्रस्ताव सम्मिलित हों उनके साथ अग्रेतर एक ज्ञापन होगा जिसमें ऐसे प्रस्तावों की व्याख्या होगी और उनकी व्याप्ति की ओर ध्यान दिलाया जाएगा तथा यह भी बताया जाएगा कि वे सामान्य रूप की हैं या अपवादस्वरूप की।[39] इसके अतिरिक्त, यह उपबंध भी किया गया है कि संसद द्वारा किसी अधीनस्थ एजेंसी को प्रत्यायोजित विधायी कृत्यों के अनुसरण में बनाए जाने वाले विनियम, नियम और उपविधियां उस सदन के समक्ष रखे जाएं जहां संशोधन भी पेश किया जा सके। इस प्रकार संसद इन अवस्थाओं में अपने अधिकार का प्रयोग करके छानबीन करती है और नियंत्रण रखती है। इसके अतिरिक्त, ऐसे सभी नियमों और विनियमों की संविधान के उपबंधों के अधिकारातीत होने का तर्क दिए जाने पर न्यायालय जांच कर सकते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि संसद के प्रत्येक सदन की "अधीनस्थ विधान संबंधी समिति" है जो उस सदन के सदस्यों से बनती है और जो यह देखती है कि क्या संसद द्वारा प्रत्यायोजित शक्तियों का, ऐसी शक्तियां प्रत्यायोजित करने वाली विधि के दायरे में रहकर, उचित प्रयोग किया गया है और उसके बाद अपने सदन को उस बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। वास्तव में, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति ही है जो समुचित रूप से इस बात का ध्यान रखती है कि प्रशासन मनमानी शक्तियां ग्रहण न कर ले। इस समिति ने सदा यह सुनिश्चित किया है कि इस प्रकार बनाए जाने वाले

सभी नियम और विनियम न केवल अविलंब संसद के समक्ष प्रस्तुत किए जाएं बल्कि उन्हें रद्द करके या उनमें रूपभेद करने का कानूनी अधिकार संसद के पास रहे।

संदर्भ

1. *देखिए* अध्याय 3
2. निर्देश 19 क
3. निर्देश 19 ख
4. नियम 72
5. नियम 73
6. नियम 64
7. नियम 75
8. नियम 74
9. नियम 258
10. निर्देश 77
11. नियम 302
12. नियम 300 (2)
13. निर्देश 68
14. निर्देश 20 (1) और (3) तथा 21
15. निर्देश 24 और 26
16. नियम 77
17. नियम 79 और 80
18. नियम 93 (1)
19. नियम 94
20. नियम 93 (3)
21. नियम 96 (1)
22. अनु. 108 (1)
23. अनु. 118 (4) और संसद के सदन (संयुक्त बैठक तथा संचारण) नियम, नियम 2
24. वही; नियम 7
25. अनु. 111 और नियम 128; *देखिए* सुभाष सी. काश्यप, एम. पीज़ एंड देयर पेंशंस (संसद सदस्य तथा उनकी पेंशन), **हिन्दुस्तान टाइम्स,** 5 अप्रैल, 1991; रिटर्न द पेंशन बिल (पेंशन विधेयक लौटा दो), **फाइनेंशियल एक्सप्रेस**, 7 अप्रैल, 1991; रिटर्न आफ द पेंशन बिल (पेंशन विधेयक का लौटाया जाना), **हिन्दुस्तान टाइम्स**, 2 अप्रैल, 1992
26. अनु. 110
27. अनु. 109
28. अनु 117 (1)
29. अनु. 117

30. नियम 294
31. अनु. 3
32. अनु. 169
33. नियम 157, 158 और 159
34. अनु. 368 (2)
35. नियम 65, 69 और 70
36. नियम 27 (1)
37. राज्य सभा में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक तथा संकल्पों संबंधी समिति नहीं होती।
38. निर्देश 3 और 7
39. नियम 70

परिशिष्ट 10.1

विधान का परिमाण

पहली से नौवीं लोक सभा

(1952-1991)

वर्ष	पारित अधिनियमों की संख्या	वर्ष	पारित अधिनियमों की संख्या
1952	82	1972	82
1953	58	1973	70
1954	54	1974	68
1955	60	1975	57
1956	106	1976	118
1957	68	1977	48
1958	69	1978	50
1959	63	1979	32
1960	67	1980	72
1961	63	1981	62
1962	68	1982	73
1963	58	1983	49
1964	56	1984	73
1965	51	1985	92
1966	57	1986	71
1967	38	1987	61
1968	67	1988	71
1989	58	1989	38
1970	53	1990	30
1971	87	1991	28*

* संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 1991 को छोड़कर, जिसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त नहीं हुई

11

संसदीय समितियां

संसदीय शासन प्रणाली में विधानमंडल को सरकार की नीतियां निर्धारित करनी होती हैं, विधि निर्माण का कार्य करना होता है और प्रशासन पर निगरानी रखनी होती है। परंतु आधुनिक राज्य में विधान के तथा प्रशासनिक कृत्यों के व्यापक क्षेत्र और उसकी जटिलता के कारण विधानमंडल के लिए विधायी प्रस्तावों की पर्याप्त छानबीन करना और प्रशासन के कार्यों पर निगरानी रखना असंभव हो जाता है। सरकार के पास तो अपने जटिल कार्य करने के लिए विशाल और उन्नत प्रशासन तंत्र और संगठन उपलब्ध होते हैं, जिनमें विशेषज्ञ और अनुभवी सिविल कर्मचारीगण होते हैं, परंतु विधानमंडल में इन सबका नितांत अभाव होता है। प्रश्नों और वाद विवाद जैसे संसदीय उपायों के द्वारा वह प्रशासन पर कहीं कहीं पर ही निगरानी रख सकती है। संसदीय निगरानी अधिक प्रभावी एवं सार्थक हो इस दृष्टि से संसद को ऐसी एजेंसी की आवश्यकता होती है जिसमें संपूर्ण सदन का विश्वास हो। अन्य बातों के साथ साथ, इस उद्देश्य की प्राप्ति संसद अपनी समितियों के माध्यम से करती है जिनमें उसके अपने कुछ सदस्य कार्य करते हैं। भारत में विशेष रूप से यही स्थिति है।

प्रशासनिक कार्य का पुनरीक्षण करने और विविध एवं जटिल विधायी प्रस्तावों और अधीनस्थ विधान की जांच करने के लिए विशेषज्ञता होना एवं बारीकी से छानबीन करना अपेक्षित है जो लोक सभा में होना संभव नहीं है क्योंकि इसके 545 सदस्य हैं। दूसरे, सदन का कार्यभार बहुत अधिक है। इसके पास इतना समय नहीं होता कि वह प्रत्येक मामले की विस्तृत जांच कर सके या उस पर पर्याप्त चर्चा कर सके। समितियों द्वारा तकनीकी एवं अन्य मामलों की पूरी पूरी और व्यापक जांच किए जाने से सदन के समय की बचत होती है और वही समय संसद महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा करने पर लगा सकती है और ब्यौरों में खोकर नीति संबंधी तथा व्यापक सिद्धांतों संबंधी मामलों में संसद की नजर ओझल नहीं होती। तीसरे, समिति के द्वारा प्रायः ऐसे मामलों के संबंध में कार्य किया जाता है जिन पर अधिक गहराई से, सावधानी और शीघ्रता से, प्रचार के जगत से दूर रहकर, शांत और यथासंभव दलगत राजनीति रहित वातावरण में विचार करने की आवश्यकता होती है। भिन्न भिन्न विचारों को स्थान देना और आदान प्रदान की प्रक्रिया द्वारा समझौते करना

समितियों के वातावरण में सदन की अपेक्षा, जहां सदस्य दलगत निष्ठाओं के आधार पर कार्य करते हैं और जहां स्वभावतया सदस्यों में अपनी छवि बनाने की चिंता रहती है, अधिक आसान होता है। चौथी बात यह है कि भारतीय संसद के दोनों सदनों के वास्तविक गठन में अंतर न होने के कारण, राज्य सभा लगभग बराबर का सदन बन गया है। यदि ऐसा न भी होता तो यह भी नहीं कहा जा सकता कि राज्य सभा वातावरण को "शांत" करने वाला या पुनरीक्षण करने वाला परंपरागत सदन है, या वरिष्ठ व्यक्तियों अथवा विशेषज्ञों का सदन है जो जल्दबाजी में या त्रुटिपूर्ण विधान बनाने की रोकथाम करता है। इन परिस्थितियों में विधान संबंधी प्रवर समितियां और संयुक्त समितियां, अन्य बातों के साथ साथ, परंपरागत द्वितीय सदन की भूमिका निभा सकती हैं। पांचवीं बात यह है कि दलीय प्रणाली में, जैसी भारतीय संसद में है, कुछ समितियां ऐसे कृत्यों का पालन करती हैं जो अन्यथा विपक्ष के होते हैं, अर्थात वे कार्यपालिका को सदा सतर्क रखती हैं और मनमानी करने से रोकती हैं। विपक्ष के सदस्य भी अपनी वास्तविक संख्या के बावजूद, सदन की अपेक्षा समितियों में आसानी से कहीं अधिक प्रभावी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, समितियों में सरकार विपक्ष के सदस्यों की कुछ बातें और रचनात्मक सुझाव मानने के लिए आसानी से तैयार हो जाती है। समितियों में सदन के सभी पक्षों का प्रतिनिधित्व होने के बावजूद सदन की अपेक्षा उनकी कार्यवाहियां कम औपचारिक होती हैं और प्रक्रिया अधिक लचीली होती है। इस कारण भी समितियों को सौंपे जाने वाले मामलों पर विचार अधिक व्यापक रूप से विवेकपूर्ण ढंग से होता है। अंतिम बात यह है कि समितियां ऐसे उपयोगी मंचों का काम करती हैं जहां अनुभव एवं योग्यता का प्रयोग होता है जो अन्यथा अप्रयुक्त रह सकते हैं। समितियां भावी मंत्रियों और पीठासीन अधिकारियों के लिए बहुमूल्य प्रशिक्षण का साधन भी होती हैं। वे अनेक सदस्यों को केवल इस बारे में ही प्रशिक्षित नहीं करतीं कि प्रशासन किस प्रकार चलाया जाता है बल्कि दिन प्रतिदिन के कार्यकरण में प्रशासकों के समक्ष आने वाली समस्याओं से भी उन्हें अवगत कराती हैं।[1]

हमारी समिति प्रणाली का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि समितियां एक ओर संसद और लोगों के बीच कड़ी का काम करती हैं तो दूसरी ओर सरकार और लोगों के बीच। समितियों के कारण आम लोगों के लिए, संस्थाओं के लिए और यहां तक कि व्यक्तिगत रूप से नागरिकों के लिए भी संभव है कि लोगों को सीधे प्रभावित करने वाले मामलों पर संसद द्वारा विचार विमर्श में प्रत्यक्ष एवं प्रभावी रूप से भाग ले सकें। समितियों द्वारा विशेषज्ञों से, निकायों और संगठनों से, या समितियों से विचाराधीन उपायों से प्रभावित होने वाले हितों से, ज्ञापन और अभ्यावेदन आमंत्रित करने से, संबंधित पक्षों के प्रतिनिधियों का मौखिक साक्ष्य लेने से और विचाराधीन मामलों को मौके पर अध्ययन करने के लिए दौरे आयोजित करने से संसद के कार्य में लोग भाग ले सकते हैं। इस प्रक्रिया से संसदीय प्रणाली के कार्यकरण के बारे में लोगों को शिक्षित करने और महत्वपूर्ण सार्वजनिक मामलों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने में सहायता मिलती है।

भारत के संविधान में तो संसदीय समितियों के बारे में विशेष रूप से कोई उपबंध नहीं किया गया है परंतु अनेक अनुच्छेदों में इनका उल्लेख है।[2] यह स्पष्ट है कि संविधान के निर्माताओं ने संसदीय समितियों के अस्तित्व को स्वाभाविक मान लिया था और यह बात सदनों पर छोड़ दी थी कि वे अपने अपने प्रक्रिया नियमों में उनके लिए उपबंध करें। लोक सभा के नियमों के अधीन ऐसी प्रत्येक समिति केवल इसी कारण संसदीय समिति नहीं होती कि वह संसद के सदस्यों से बनी है। संसदीय समिति वह है जो—

(क) सदन द्वारा नियुक्त या निर्वाचित की जाये या अध्यक्ष/सभापति द्वारा मनोनीत की जाये;

(ख) अध्यक्ष/सभापति के निदेशाधीन कार्य करती हो;

(ग) अपना प्रतिवेदन सदन को या अध्यक्ष/सभापति को पेश करती हो; और

(घ) लोक सभा अथवा राज्य सभा सचिवालय द्वारा उपलब्ध किए गए कर्मचारीवृंद द्वारा सेवित हो।

ऐसी अन्य समितियां हो सकती हैं जो संसद सदस्यों से बनती हों या जिनमें संसद सदस्य सम्मिलित हों परंतु उपरोक्त शर्तें पूरी न करने के कारण उन्हें संसदीय समितियां नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ, विभिन्न मंत्रालयों और विभागों से संलग्न परामर्शदाता समितियां पूर्णतया संसद सदस्यों से बनती हैं परंतु न तो अध्यक्ष अथवा सभापति द्वारा उनकी नियुक्ति की जाती है और न ही सदन अथवा सदनों द्वारा उनका निर्वाचन किया जाता है; उनके लिए कर्मचारीवृंद भी सदन अथवा सदनों के सचिवालयों द्वारा उपलब्ध नहीं किए जाते और वे अध्यक्ष/सभापति को प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करतीं। वास्तव में, परामर्शदाता समितियां प्रतिवेदन किसी को भी पेश नहीं करतीं बल्कि मंत्रियों के नियंत्रणाधीन विभागों के कार्यकरण में रुचि रखने वाले संसद सदस्यों और मंत्रियों के बीच विचारों के अनौपचारिक आदान प्रदान के लिए केवल मंच का काम करती हैं। इस प्रकार, वे संसदीय समितियां नहीं होतीं।

विभिन्न प्रकार की समितियां

भारत में दो प्रकार की संसदीय समितियां हैं, अर्थात (एक) स्थायी समितियां और (दो) तदर्थ समितियां। स्थायी समितियां वे समितियां है जो प्रत्येक वर्ष या समय समय पर, जैसी भी स्थिति हो, सदन द्वारा निर्वाचित की जाती हैं या अध्यक्ष/सभापति द्वारा मनोनीत की जाती हैं और जो स्थायी स्वरूप की होती हैं। तदर्थ समितियां वे समितियां हैं जो सदन द्वारा या अध्यक्ष/सभापति द्वारा किन्हीं विशिष्ट मामलों पर विचार करने और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए गठित की जाती हैं और उन मामलों पर अपना कार्य पूरा करते ही समाप्त हो जाती हैं।

स्थायी समितियां : प्रत्येक सदन में स्थायी समितियां (और कुछ संयुक्त समितियां) उनके कृत्यों के अनुसार इस प्रकार श्रेणीबद्ध की जा सकती हैं :

1. वित्तीय समितियां (उदाहरणार्थ, लोक सभा की प्राक्कलन समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति और लोक लेखा समिति);
2. दोनों सदनों की विभागों से संबंधित स्थायी संयुक्त समितियां;
3. सदन संबंधी समितियां, अर्थात सदन के दिन प्रतिदिन के कार्य से संबंधित समितियां (उदाहरणार्थ, सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, कार्य मंत्रणा समिति, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति और नियम समिति);
4. जांच समितियां (उदाहरणार्थ, याचिका समिति और विशेषाधिकार समिति);
5. छानबीन समितियां (उदाहरणार्थ, सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति, सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति);
6. सेवा समितियां, अर्थात सदस्यों के लिए सेवाएं और सुविधाएं उपलब्ध करने संबंधी समितियां (उदाहरणार्थ, सामान्य प्रयोजन समिति, आवास समिति, ग्रंथालय समिति और संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति)।

तदर्थ समितियां : ऐसी समितियां मोटे तौर पर दो श्रेणियों में रखी जा सकती हैं :

(क) विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियां जो विशिष्ट विधेयकों पर विचार करने और प्रतिवेदन देने के लिए नियुक्त की जाती हैं। ये समितियां अन्य तदर्थ समितियों से इस कारण भिन्न होती हैं कि इनका संबंध विधेयकों से होता है और इनके द्वारा जिस प्रक्रिया का पालन किया जाता है वह प्रक्रिया नियमों और अध्यक्ष/सभापति द्वारा दिए गए निर्देशों में निर्धारित है।

(ख) वे समितियां जो किसी विशिष्ट मामले की जांच करने और प्रतिवेदन देने के लिए दोनों सदनों द्वारा इस आशय को स्वीकृत करके या अध्यक्ष/सभापति द्वारा समय समय पर गठित की जाती हैं। उदाहरणार्थ, लोक सभा द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत किए जाने पर एक सदस्य श्री एच.जी. मुद्गल के आचरण की जांच करने के लिए 1951 में एक समिति गठित की गई थी। समय समय पर नियुक्त रेलवे अभिसमय समिति, लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति और किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए सदन द्वारा या अध्यक्ष द्वारा या सभापति द्वारा नियुक्त कोई अन्य समिति भी ऐसी समितियों के अन्य उदाहरण हैं।

सदस्यों के लिए वेतन, भत्ते और पेंशन, बोफोर्स तोप सौदा और बैंक[1] प्रतिभूति घोटाला जैसे मामलों के संबंध में दोनों सदनों की प्रमुख संयुक्त समितियां गठित की गईं।

समितियों का गठन

संसदीय समितियों के सदस्य सदन द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत करके नियुक्त या निर्वाचित किए जाते हैं या अध्यक्ष द्वारा अथवा सभापति द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, मनोनीत किये जाते

हैं।[4] किसी विधेयक पर प्रवर या संयुक्त समितियां सदन द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत करके नियुक्त की जाती हैं। सभी वित्तीय समितियों (अर्थात लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति), अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति और लाभ के पदों संबंधी समिति के सदस्य प्रत्येक वर्ष सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। शेष समितियां संबंधित सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा मनोनीत की जाती हैं।

कुछ समितियां प्रत्येक सदन द्वारा अलग से गठित की जाती हैं जबकि अन्य समितियां दोनों सदनों द्वारा संयुक्त रूप से गठित की जाती हैं। जैसा कि संयुक्त समितियों के मामले में होता है, लोक लेखा समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी तथा अनुसूचति जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति और सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति के सदस्य दोनों सदनों में से लिए जाते हैं, लोक सभा से और राज्य सभा से।

सदन में या सदनों में विभिन्न दलों और ग्रुपों की सदस्य संख्या के यथासंभव अनुपात में इनका प्रतिनिधित्व संसदीय समितियों में होता है। आमतौर पर दलों अथवा ग्रुपों के नेताओं द्वारा सुझाए जाने वाले और पीठासीन अधिकारियों द्वारा चुने जाने वाले सदस्यों के नामों के आधार पर प्रत्येक वर्ष समितियों का पुनर्गठन किया जाता है।

संसदीय समिति का सभापति उस सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा जिस सदन की वह समिति हो, समिति के सदस्यों में से नियुक्त किया जाता है। यदि पीठासीन अधिकारी स्वयं उस समिति का सदस्य न हो परंतु उपाध्यक्ष अथवा उपसभापति, जैसी भी स्थिति हो, उसका सदस्य हो तो उसी को समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है।

समितियों की कार्यावधि

संसदीय समिति एक वर्ष से अनधिक अवधि के लिए या अध्यक्ष द्वारा निर्धारित अवधि के लिए या नयी समिति मनोनीत होने तक पद धारण करती है। कार्य मंत्रणा समिति, याचिका समिति, विशेषाधिकार समिति और नियम समिति पुनर्गठित होने तक कार्य करती रहती है जबकि अन्य स्थायी समितियां एक वर्ष से अनधिक अवधि के लिए पद धारण करती हैं। यदि अध्यक्ष/सभापति द्वारा किसी तदर्थ समिति की कार्यावधि निर्धारित न की गई हो तो वह समिति कार्य पूरा होने तक और प्रतिवेदन, यदि कोई हो तो, पेश होने तक पद धारण करती है।[5]

समितियों की प्रक्रिया

समितियों की बैठक संसद भवन में या संसदीय सौध में होती है परंतु विशेष मामलों में अध्यक्ष/सभापति की, जैसी भी स्थिति हो, अनुमति से उनकी बैठकें बाहर भी हो सकती हैं। समिति को मौखिक या लिखित साक्ष्य लेने की शक्ति प्राप्त होती है। समिति व्यक्तियों को साक्ष्य के लिए बुला सकती है, दस्तावेज और अभिलेख मंगा सकती है परंतु यदि कोई

प्रश्न उठता है कि किसी व्यक्ति या साक्ष्य या किसी दस्तावेज का पेश किया जाना समिति के प्रयोजनों के लिए संगत है या नहीं, तो वह प्रश्न अध्यक्ष को निर्दिष्ट किया जाता है जिसका फैसला अंतिम होता है। समिति को निर्दिष्ट मामलों की जांच के लिए मुख्य समिति उपसमितियां भी नियुक्त कर सकती है। उपसमिति का प्रतिवेदन मुख्य समिति को पेश किया जाता है।[6]

समिति की बैठकें गोपनीय होती हैं। कोई सार्वजनिक सुनवाई नहीं होती। समितियों में कार्यवाहियों का संचालन मुख्यतया वैसे ही होता है जैसे सदन में होता है परंतु समितियों में कार्यवाहियां अधिक अनौपचारिक वातावरण में और दलगत भावना रहित आधार पर होती हैं। समिति में विचार विमर्श के दौरान कोई सदस्य किसी विचाराधीन प्रश्न पर एक से अधिक बार बोल सकता है। सभी प्रश्नों का फैसला उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से होता है। किसी मामले पर दोनों पक्षों से समान मत होने की स्थिति में सभापति का दूसरा या निर्णायक मत होता है। उसके पश्चात समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांशों के आधार पर, जिनमें समिति के विचार विमर्शों का सार और साथ ही सिफारिशें दी होती हैं, समिति प्रतिवेदन तैयार करती है। प्रतिवेदन प्रारंभिक हो सकता है या अंतिम। समिति किसी ऐसे विषय पर विशेष प्रतिवेदन दे सकती है जो उसके कार्य के दौरान प्रकाश में आए और जिसे समिति अध्यक्ष के या सदन के ध्यान में लाना आवश्यक समझे, यद्यपि ऐसा विषय समिति के निर्देश-पदों में सम्मिलित न हो।[7]

समिति का प्रतिवेदन उसके सभापति द्वारा या इस प्रयोजन से प्राधिकृत समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा सदन में पेश किया जाता है। जब तक प्रतिवेदन सदन में पेश न हो जाए तब तक उसे गोपनीय माना जाता है; सदन में पेश किए जाने के बाद ही वह सार्वजनिक दस्तावेज बनता है।[8]

(एक) वित्तीय समितियां

संसद का उत्तरदायित्व है वह सरकार द्वारा तैयार किए गए करारोपण के प्रस्तावों और व्यय के अनुमानों की जांच करे और उनका अनुमोदन करे। यद्यपि "बजट अधिवेशन" के लगभग दो मास इस प्रयोजन के लिए लगाए जाते हैं फिर भी चर्चाएं न तो ज्यादा व्यापक होती हैं और न ही गहन। संपूर्ण कार्यकलापों पर विचार करने की उत्सुकता के कारण, संसद की टिप्पणियां, और आलोचना सामान्य और औपचारिक रूप ले लेती हैं और एक ही बात को दोहराने की प्रवृत्ति बन जाती है। समय चूंकि कम होता है, प्रायः अनेक मंत्रालयों और विभागों संबंधी मांगों पर चर्चा हो ही नहीं पाती और "गिलोटिन" का प्रयोग कर दिया जाता है। इसी अधूरे काम को वित्तीय समितियां पूरा करती हैं। संसद की वित्तीय समितियां सरकार के खर्चे की और कार्य निष्पादन की विस्तृत छानबीन करने का काम करती हैं और इस प्रकार वित्तीय मामलों में प्रशासन का संसद के प्रति उत्तरदायित्व सुनिश्चित होता है।

नीति का निर्माण करने की अपेक्षा नीति को कार्य रूप देना कहीं अधिक महत्व रखता है। यदि नीति को उचित ढंग से कार्य रूप नहीं दिया जाता तो नीति का प्रयोजन ही विफल हो सकता है। नीति प्रशासनिक अकुशलता के कारण या उसे कार्य रूप देने के लिए उपलब्ध मशीनरी के उचित संगठन के अभाव के कारण इच्छित उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रह सकती है। अतः यह सदा आवश्यक होता है कि कोई ऐसा निकाय हो जो कार्य रूप में नीति की जांच करे और सरकारी संगठन की, उनकी प्रक्रियाओं और प्रथाओं की छानबीन करे। उनकी कार्यकुशलता और मितव्ययता को देखकर ही उनके कार्य निष्पादन का मूल्यांकन किया जा सकता है क्योंकि दोनों परस्पर निर्भर होते हैं। इसके अतिरिक्त, कोई प्रशासन व्यवस्था नहीं है जो शक्ति के दुरुपयोग, लापरवाही, विलंब, उपेक्षा, पक्षपात आदि जैसे दोषों से शतप्रतिशत मुक्त हो। अनुसंधान पर आधारित अध्ययन के बिना, व्यवस्थित जांच के बिना, संबंधित मंत्रालय या उपक्रम के अधिकारियों के पूर्ण परीक्षण के बिना, प्रशासन के इन पहलुओं और तथ्यों को जानना संभव नहीं होता।

वित्तीय समितियां संसद के प्रहरी के रूप में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। संसद के प्रति प्रशासन का उत्तरदायित्व प्रत्यक्ष नहीं होता, वह मंत्रियों के माध्यम से होता है परंतु समितियों में सिविल अधिकारियों का समितियों से आमना सामना होता है। इस प्रकार इन समितियों का नियंत्रण निरंतर, पूर्ण एवं प्रत्यक्ष होता है जिसमें छानबीन करने के सभी साधन प्रयोग में लाए जाते हैं, जैसे प्रश्नावलियां जारी करना, प्रतिनिधि और गैर-सरकारी संगठनों और जानकारी रखने वाले व्यक्तियों से ज्ञापन मांगना, संगठनों का मौके पर अध्ययन करना और गैर-सरकारी व्यक्तियों एवं अधिकारियों के साथ अनौपचारिक रूप से चर्चा करना और उनका मौखिक साक्ष्य लेना।

तीन वित्तीय समितियां संसद द्वारा अनुमोदित नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में अकुशलताओं, अपव्यय और असावधानी को प्रकाश में लाती हैं। उनकी सिफारिशों का उद्देश्य इन नीतियों और कार्यक्रमों को मितव्ययता से, कुशलता से और शीघ्रता से कार्य रूप देने के लिए प्रशासन को सदा सतर्क बनाए रखता है। इन समितियों के प्रतिवेदनों के कारण इन्हें समाज के सरकारी और गैर सरकारी सभी वर्गों से पर्याप्त सम्मान मिला है। सरकार द्वारा इनका कितना सम्मान किया जाता है यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि सरकार इनकी अधिकांश सिफारिशें स्वीकार कर लेती है। प्रत्येक सिफारिश का सावधानी से विश्लेषण किया जाता है और प्रशासन का सदा यह प्रयास रहता है कि समितियों द्वारा प्रकाश में लाई गई त्रुटियों और कमियों को दूर किया जाए और समितियों द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार कार्य किया जाए।

वित्तीय समितियों ने यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त प्रक्रियाएं विकसित कर ली हैं कि सरकार उनकी सिफारिशों पर उचित ध्यान दे और जो सिफारिशें स्वीकार न की जाएं उन्हें स्वीकार न करने के कारणों से समितियों को अवगत कराया जाये। सिफारिशों को कार्य रूप देने में हुई प्रगति को और समितियों तथा सरकार में जिन मतभेदों का

समाधान नहीं होता उनको "की गई कार्यवाही प्रतिवेदन" के माध्यम से सदन के ध्यान में लाया जाता है। इन समितियों द्वारा की गई सिफारिशों की अनुवर्ती कार्यवाही की विस्तृत एवं प्रभावी प्रक्रिया अन्यत्र विद्यमान संसदीय प्रक्रियाओं को मूल रूप से भारतीय देन है।

तीनों वित्तीय समितियां एक वर्ष के लिए सदन द्वारा निर्वाचित की जाती हैं। मंत्रीगण न तो इन समितियों के सदस्य बन सकते हैं और न ही उन्हें साक्ष्य देने के लिए इनके समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा जा सकता है। इनके सभापति अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। वे प्रक्रिया के आंतरिक नियम स्वयं बना सकती हैं जिनका अध्यक्ष द्वारा अनुमोदन आवश्यक होता है। ये समितियां साधारणतया नीति के प्रश्नों में नहीं जातीं क्योंकि नीतियों का निर्माण करना पूर्णतया संसद के अधिकार क्षेत्र की बात है और किसी समिति से यह आशा नहीं की जाती कि वह संसद द्वारा पहले से अनुमोदित किसी नीति के बारे में फैसला दे। एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व जो तीनों वित्तीय समितियों में पाया जाता है वह यह है कि वे कार्य हो चुकने पर प्रशासन की जांच करती हैं। प्रशासन के दिन प्रति दिन के कार्यों में हस्तक्षेप की संभावना न रहे इस कारण समितियां केवल उन्हीं कार्यों की जांच करती हैं जो पहले से किए जा चुके हों या ऐसे कार्यों की जो किए नहीं गए परंतु जो अन्यथा किए जाने चाहिए थे।

समितियों की सिफारिशों में न तो सरकार को निदेश देने की शक्ति होती है और न ही वे बंधनकारी होती हैं। यही कारण है कि समितियों के निष्कर्ष केवल सिफारिशों के रूप में होते हैं। परंतु समितियों के गठन एवं प्राधिकार के कारण कोई भी मंत्री या अधिकारी उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

प्राक्कलन समिति : इस समिति में लोक सभा के 30 सदस्य होते हैं।[9] लोक लेखा समिति और सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के समान, राज्य सभा के सदस्य इसके साथ सहयोजित नहीं किए जाते। यह समिति "स्थायी मितव्ययता समिति" के रूप में कार्य करती है और इसकी आलोचना और सुझाव सरकारी फिजूलखर्ची पर रोक लगाने का काम करते हैं। यह समिति वार्षिक अनुमानों की विस्तृत जांच करती है ताकि यह—

(क) बताए कि अनुमानों की अंतर्निहित नीति से क्या संगत मितव्ययता, संगठन में सुधार, कार्यकुशलता या प्रशासनिक सुधार लाये जा सकते हैं;

(ख) सुझाव दे कि प्रशासन में कुशलता एवं मितव्ययता लाने के लिए क्या वैकल्पिक नीतियां अपनाई जा सकती हैं;

(ग) जांच करे कि क्या अनुमानों में अंतर्निहित नीति की सीमाओं में रहकर धन ठीक ढंग से लगाया गया है; और

(घ) सुझाव दे कि अनुमान संसद के समक्ष किस रूप में पेश किए जाएं।[10]

स्पष्टीकरण के लिए यह स्मरण रहे कि संसद द्वारा अनुमोदित नीति संबंधी मामलों की समितियों में चुनौती नहीं दी जा सकती। इस बारे में प्राक्कलन समिति की स्थिति अन्य

दो वित्तीय समितियों से थोड़ी भिन्न है। इस मामले में "संसद द्वारा, विधि के द्वारा, या विशिष्ट संकल्पों के द्वारा निर्धारित नीति" और सभी अन्य नीतियों में, जो इस प्रकार निर्धारित नहीं हो, भेद किया गया है। बाद वाले मामलों के संबंध में, समिति किसी ऐसे मामले की जांच खुलकर कर सकती है जो सरकार द्वारा अपने कार्यपालिका कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए नीति के रूप में तय किया गया हो। समिति नीति के कार्यकरण की जांच कर सकती है, संसद द्वारा अनुमोदित नीति की नहीं। इस प्रकार जहां यह पाया जाए कि किसी विशेष नीति के इच्छित परिणाम नहीं निकल रहे हैं और उसके कारण अपव्यय हो रहा है, वहां प्राक्कलन समिति का यह कर्तव्य बनता है कि वह कमियों को प्रकाश में लाए और यह बात संसद के ध्यान में लाए कि नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

लोक लेखा समिति : यह सबसे पुरानी वित्तीय समिति है। इसके 22 सदस्य होते हैं (15 लोक सभा के और 7 राज्य सभा के)। वर्ष 1967 से चली आ रही प्रथा के अनुसार विपक्ष के किसी सदस्य को इस समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है।[11]

लोक लेखा समिति को कभी कभी प्राक्कलन समिति की "जुड़वां बहन" कहा जाता है क्योंकि इन दो समितियों के कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं। प्राक्कलन समिति सार्वजनिक व्यय के अनुमानों संबंधी कार्य करती है, और लोक लेखा समिति मुख्यतया भारत सरकार के व्यय के लिए सदन द्वारा प्रदान की गई राशियों का विनियोग दर्शाने वाले लेखाओं की जांच करती है जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि क्या धन संसद द्वारा प्राधिकृत रूप से खर्च किया गया है और उसी प्रयोजन के लिए खर्च किया गया है जिसके लिए वह प्रदान किया गया था। यदि किसी वित्त वर्ष के दौरान किसी सेवा पर उसके प्रयोजन के लिए सदन द्वारा प्रदान की गई राशि से अतिरिक्त राशि खर्च की गई हो तो समिति उन परिस्थितियों की जांच करती है जिनके कारण ऐसा अतिरिक्त व्यय करना पड़ा हो और उसके बारे में ऐसी सिफारिश करती है जो वह उचित समझे। ऐसे अतिरिक्त व्यय के विनियमन के लिए सरकार द्वारा उसे सदन के समक्ष लाना अपेक्षित होता है।[12]

समिति केवल तकनीकी अनियमितताओं का पता लगाने में ही रुचि नहीं रखती बल्कि राष्ट्र के वित्तीय मामलों के संचालन में अपव्यय, भ्रष्टाचार, अकुशलता या कार्यचालन में कमी के किसी प्रमाण को प्रकाश में लाने में भी रुचि रखती है। यह संबंधित मंत्रालय या विभाग द्वारा की गई फिजूलखर्ची या उचित नियंत्रण के अभाव के निरनुमोदन के रूप में अपनी राय भी व्यक्त कर सकती है या उसकी निंदा कर सकती है।

समिति जांच करने के लिए विषयों का चयन संघ के लेखाओं से संबंधित भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक के लेखापरीक्षा प्रतिवेदनों में से करती है जो संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखे जाते हैं। भारत का नियंत्रक-महालेखापरीक्षक, जो समिति की बैठकों में भाग लेता है, समिति की सहायता करता है।[13]

इस समिति की मोटे तौर पर दो सीमाएं हैं : पहली यह कि नीति के प्रश्न से इसका कोई सरोकार नहीं होता और दूसरी यह कि इसके निष्कर्ष कार्योपरांत होते हैं। दूसरे शब्दों में, समिति अनियमितताएं तभी प्रकाश में ला सकती है जब वे हो चुकी हों और जब क्षति पहुंच चुकी हो। तथापि, समिति की जांच को अधिकारी बहुत गंभीर रूप में लेते हैं। ऐसी समिति का अस्तित्व में होना ही संभाव्य प्रशासनिक अपव्यय और फिजूलखर्ची के लिए रोकात्मक प्रभाव रखता है। समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप, जिनमें नीति को कार्यरूप देने में प्रशासनिक त्रुटियां प्रकाश में लाई जाती हैं, वित्तीय व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं।

सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति : हमारे देश के लिए योजनाबद्ध आर्थिक विकास का मार्ग चुनने से अनेक औद्योगिक, कृषि, वाणिज्यिक आदि उपक्रम स्थापित करना आवश्यक हो गया जिनका नियंत्रण एवं प्रबंध भारत सरकार द्वारा किया जाता है। इस प्रकार अनेक निगम और सरकारी कंपनियां, जिन्हें आमतौर पर "सार्वजनिक उपक्रम" कहा जाता है, अस्तित्व में आई हैं जिनमें भारी धनराशियां लगी हुई हैं। उन पर लगाई गई धनराशियां चूंकि भारत की संचित निधि से ली गई हैं अतः लोक सभा का यह दायित्व हो जाता है कि वह उनके कार्यों पर पर्याप्त नियंत्रण रखे। इस प्रयोजन के लिए संसद द्वारा सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति गठित की गई है जिसके 22 सदस्य हैं, जिनमें से 15 सदस्य लोक सभा द्वारा निर्वाचित हैं और 7 सदस्य राज्य सभा द्वारा। समिति का सभापति अध्यक्ष द्वारा समिति के लोक सभा से निर्वाचित हुए सदस्यों में से नियुक्त किया जाता है।

समिति के कृत्य इस प्रकार हैं : प्रक्रिया नियमों में उल्लिखित सरकारी उपक्रमों के प्रतिवेदनों और लेखाओं की और उन पर नियंत्रक महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों की, यदि कोई हों तो, जांच करना और देखना कि क्या सरकारी उपक्रमों की स्वायत्तता और कार्यकुशलता के संदर्भ में सरकारी उपक्रमों के कार्य समुचित व्यापार सिद्धांतों और विवेकपूर्ण वाणिज्यिक प्रथाओं के अनुसार चलाए जा रहे हैं। समिति ऐसे विषयों या मामलों की भी जांच कर सकती है जो सदन द्वारा या अध्यक्ष द्वारा विशेष रूप से इसे निर्दिष्ट किए जाएं। परंतु समिति ऐसे प्रमुख सरकारी नीति संबंधी मामलों की, जो सरकारी उपक्रमों के व्यापार या वाणिज्यिक कृत्यों से भिन्न हों, या प्रशासन के दिन प्रतिदिन के मामलों की या ऐसे मामलों की जिन पर विचार करने के लिए उस विशेष संविधि द्वारा तंत्र स्थापित किया गया हो जिसके अधीन उपक्रम स्थापित किया गया है, जांच और छानबीन नहीं कर सकती।[14]

समिति द्वारा जांच सामान्य रूप से उपक्रम के मूल्यांकन के स्वरूप की होती है जिसमें सभी पहलू आ जाते हैं, जैसे उत्पादन, सामान्य अर्थव्यवस्था में अंशदान, रोजगार के अवसर पैदा करना, सहायक उद्योगों का विकास, उपभोक्ता के हितों का संरक्षण, इत्यादि। समिति ने विगत काल में परियोजना संबंधी योजना बनाने, सभी क्षेत्रों में प्रबंध व्यवस्था करने, नियंत्रण व्यवस्थाओं, विदेशी सहयोग और उनकी भूमिका एवं उपलब्धियां, इत्यादि जैसे

विभिन्न पहलुओं के व्यापक अध्ययन किए हैं। उन अध्ययनों के परिणामस्वरूप ये तथ्य संसद के और लोगों के ध्यान में लाए गए हैं कि उपक्रमों द्वारा किस प्रकार नगर-क्षेत्र के और कार्यालयों के भवनों पर, अतिथि गृहों पर, जलपान और अधिकारियों के विदेशी दौरों पर और अधिकारियों के विदेशी दौरों पर भारी धनराशियां खर्च की गईं।

(दो) विभागीय समितियां

लोक सभा की नियम समिति ने 1989 में विषयगत विभाग संबंधित स्थायी समितियों के गठन की सिफारिश की। 18 अगस्त, 1989 से पहली बार तीन ऐसी समितियां स्थापित की गईं। ये थीं कृषि समिति, पर्यावरण और वन समिति तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी समिति। नवीं लोक सभा के कार्यकाल (1989-91) में नियम समिति ने सुझाव दिया कि सभी सरकारी विभागों में प्रशासनिक उत्तरदायित्व को प्रशस्त करने के लिए विभिन्न विषयगत समितियों का गठन किया जाये ताकि कोई भी क्षेत्र संसदीय जांच के क्षेत्र से बाहर न रहे। पहले की तीन समितियों के अतिरिक्त सात और विषयगत समितियों का प्रस्ताव नियम समिति ने रखा।

1989 में तीन विषयगत समितियां स्थापित की गई थीं। जिन्होंने दसवीं लोक सभा के कार्यकाल के दौरान विभागों से संबंधित 17 स्थायी समितियों की एक पूर्णांग प्रणाली का रूप ले लिया, जिनके अंतर्गत भारत सरकार के सभी मंत्रालय तथा विभाग आ जाते हैं, उनके कार्य निम्नलिखित हैं :

(i) संबंधित मंत्रालयों[1] विभागों की अनुदानों की मांगों पर विचार करना,
(ii) राज्य सभा के सभापति/लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा भेजे गए विधेयकों का निरीक्षण करना,
(iii) मंत्रालयों की वार्षिक रिपोर्टों पर विचार करना, और
(iv) सभापति/अध्यक्ष द्वारा भेजे गये किन्हीं नीति विषयक प्रलेखों पर विचार करना।

विभागीय समितियां तथा उनके दायित्व-क्षेत्र निम्नानुसार हैं :

विभागीय स्थायी समितियां

क्र0 सं0	समिति का नाम	मंत्रालय/विभाग
		भाग–I
1.	वाणिज्य समिति	(1) वाणिज्य
		(2) कपड़ा
2.	गृह कार्य समिति	(1) गृह कार्य
		(2) विधि, न्याय और कंपनी कार्य
		(3) कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन
3.	मानव संसाधन विकास समिति	(1) मानव संसाधन विकास
		(2) स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण

1	2	3
4.	उद्योग समिति	(1) उद्योग (2) इस्पात (3) खान
5.	विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी, पर्यावरण तथा वन समिति	(1) विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी (2) इलेक्ट्रानिकी (3) अंतरिक्ष (4) सागर विकास (5) जैव-प्रौद्योगिकी (6) पर्यावरण तथा वन
6.	परिवहन तथा पर्यटन समिति	(1) नागर विमानन (2) भूतल परिवहन (3) पर्यटन
7.	कृषि समिति	(1) कृषि (2) जल संसाधन (3) खाद्य प्रसंस्करण
8.	संचार समिति	(1) सूचना तथा प्रसारण (2) संचार
9.	रक्षा समिति	रक्षा
10.	ऊर्जा समिति	(1) कोयला (2) अपरंपरागत ऊर्जा स्रोत (3) विद्युत शक्ति (4) परमाणु शक्ति
11.	विदेश कार्य समिति	विदेश कार्य
12.	वित्त समिति	(1) वित्त (2) योजना (3) कार्यक्रम क्रियान्वयन
13.	खाद्य, नागरिक आपूर्ति और सार्वजनिक वितरण समिति	(1) खाद्य (2) नागरिक आपूर्ति, उपभोक्ता कार्य तथा सार्वजनिक वितरण
14.	श्रम तथा कल्याण समिति	(1) श्रम (2) कल्याण
15.	पेट्रोलियम तथा रसायन समिति	(1) पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस (2) रसायन तथा पेट्रो-रसायन (3) उर्वरक
16.	रेल समिति	रेल
17.	शहरी तथा ग्रामीण विकास समिति	(1) शहरी विकास (2) ग्रामीण विकास

(तीन) सदन संबंधी समितियां

कार्य मंत्रणा समिति : प्रत्येक सदन में एक कार्य मंत्रणा समिति है। लोक सभा में अध्यक्ष सहित इस समिति के 15 सदस्य हैं। अध्यक्ष इस समिति का पदेन सभापति होता है। राज्य सभा में उपसभापति सहित इसके ग्यारह सदस्य हैं। राज्य सभा का सभापति समिति का पदेन सभापति होता है। अध्यक्ष या सभापति जैसी भी स्थिति हो, समिति को मनोनीत करता है और समिति तब तक कार्य करती है जब तक वह पुनर्गठित न हो जाए।

समिति का कृत्य यह सिफारिश करना है कि सरकार द्वारा लाए जाने वाले विधायी तथा अन्य कार्य को निपटाने के लिए कितना समय नियत किया जाए। परंतु राज्य सभा में समिति यह भी सिफारिश करती है कि गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों पर चर्चा के लिए कितना समय नियत किया जाए। समिति ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करती है जो उसे अध्यक्ष द्वारा या राज्य सभा के सभापति द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, समय समय पर सौंपे जाएं। समिति अपने आप भी सरकार से सिफारिश कर सकती है कि किसी विशेष विषय को सदन में चर्चा के लिए लिया जाय और ऐसी चर्चा के लिए समय नियत कर सकती है।

विभिन्न कार्यों के लिए समय नियत करने में सदन की सहायता करने की समिति की भूमिका सदा बहुत महत्वपूर्ण रही है। समिति की बैठकों में वातावरण सौहार्दपूर्ण होता है और सत्ता पक्ष तथा विरोधी पक्ष के बीच आदान प्रदान की भावना बहुत स्पष्ट रही है। यद्यपि समिति में सामान्यता सभी मतों वाले सदस्यों का प्रतिनिधित्व रहता है तथापि उसमें फैसले सदा सर्वसम्मति से लिए गए हैं और समूचा सदन सामान्यतया उनसे सहमत रहा है।

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति : लोक सभा की इस समिति में 15 सदस्य हैं और उपाध्यक्ष इसका सभापति होता है। इस समिति के कृत्य इस प्रकार हैं : गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लोक सभा में पेश किए जाने से पूर्व उनकी जांच करना और ऐसे गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों की जांच करना जिनके मामले में सदन की विधायी क्षमता को चुनौती दी गई हो। इस प्रकार यह समिति गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों के संबंध में उसी कृत्य का पालन करती है जिसका कि कार्य मंत्रणा समिति द्वारा सरकारी कार्य के संबंध में पालन किया जाता है। राज्य सभा में ऐसी कोई समिति नहीं है।

सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति : संविधान में उपबंध किया गया है कि यदि दोनों सदनों में से किसी भी सदन का कोई सदस्य बिना अनुमति के सदन की सभी बैठकों से 60 दिन की अवधि तक अनुपस्थित रहे तो सदन उसका स्थान रिक्त घोषित कर सकता है। सुविधा की दृष्टि से, लोक सभा ने 15 सदस्यों की एक समिति बनाई जो सदन से अनुपस्थिति की अनुमति के लिए सदस्यों के प्रार्थनापत्रों पर विचार करती है। राज्य सभा में ऐसे मामलों पर सदन स्वयं विचार करता है।

इस समिति के कृत्य इस प्रकार हैं : (एक) सदन की बैठकों से अनुपस्थिति की अनुमति के लिए सदस्यों से प्राप्त सभी प्रार्थनापत्रों पर विचार करना, और (दो) ऐसे प्रत्येक मामले की जांच करना जहां कोई सदस्य सदन की बैठकों से, बिना अनुमति के, 60 दिन या इससे अधिक अवधि तक अनुपस्थित रहा हो और इस बारे में प्रतिवेदन देना कि क्या अनुपस्थिति माफ की जानी चाहिए या नहीं अथवा मामले की परिस्थितियों को देखते हुए उचित है कि सदन सदस्य का स्थान रिक्त घोषित करे। समिति सदन के सदस्यों की उपस्थिति के संबंध में ऐसे अन्य कृत्यों का भी पालन करती है जो अध्यक्ष द्वारा समय समय पर उसे सौंपे जाएं।

नियम समिति : प्रत्येक सदन की एक नियम समिति है। लोक सभा में नियम समिति के 15 सदस्य हैं जिनमें अध्यक्ष भी सम्मिलित है जो समिति का पदेन सभापति होता है। राज्य सभा में सभापति और उपसभापति इस समिति के 16 सदस्य हैं। राज्य सभा का सभापति इस समिति का पदेन सभापति होता है।

इस समिति के कृत्य इस प्रकार हैं : (एक) सदन में प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन के मामलों पर विचार करना; और (दो) नियमों में ऐसे किन्हीं संशोधनों की या परिवर्धनों की सिफारिश करना जो आवश्यक समझे जाएं। नियमों में संशोधनों या परिवर्तनों के लिए सुझाव सदन के किसी भी सदस्य द्वारा, किसी मंत्री द्वारा या स्वयं समिति द्वारा दिए जा सकते हैं।

(चार) जांच समितियां

याचिका समिति : संसदीय लोकतंत्र में, जैसा हमारे यहां है, शिकायतें व्यक्त करने और उनका समाधान कराने और लोक महत्व के मामलों पर रचनात्मक सुझाव देने की दृष्टि से संसद में याचिकाएं पेश करने का लोगों का अंतर्निहित अधिकार होता है। इस अधिकार का प्रयोग याचिका समिति के माध्यम से किया जाता है।

प्रत्येक सदन की एक याचिका समिति है। लोक सभा में इस समिति के 15 सदस्य हैं और राज्य सभा में 10 सदस्य। याचिका समिति का कृत्य ऐसी प्रत्येक याचिका की जांच करना है जो सदन में पेश किए जाने के पश्चात समिति को निर्दिष्ट हो जाती है। समिति ऐसा साक्ष्य लेने के उपरांत, जो वह उचित समझे, याचिका में की गई विशिष्ट शिकायतों पर सदन में प्रतिवेदन पेश करती है। समिति या तो समीक्षाधीन विशिष्ट मामले में या भविष्य में ऐसे मामलों की रोकथाम के लिए सामान्य रूप में उपचारात्मक उपायों का सुझाव देती है।

समिति विभिन्न व्यक्तियों से और संघों से प्राप्त पत्रों एवं तारों सहित उन अभ्यावेदनों पर भी विचार करती है जो याचिकाओं संबंधी नियमों के अंतर्गत न आते हों और उनके उचित निबटारे के लिए निर्देश देती है। यह समिति आम आदमी की न्यायोचित शिकायतों को दूर करने के मामले में उसे संसदीय समर्थन प्रदान करने में महत्वपूर्ण कार्य कर चुकी

है। यह उन पीड़ित और दमन के शिकार नागरिकों के लिए वास्तविक राहत का साधन सिद्ध हो चुकी है जिन्हें अन्यत्र कोई उपचार या राहत नहीं मिलती। इस प्रकार यह समिति "आम्बुड्समैन" या "सार्वजनिक शिकायत समिति" का रूप लेने की क्षमता रखती है।

विशेषाधिकार समिति : संसद के प्रत्येक सदन के सदस्यों को व्यक्तिग रूप से और सदन को सामूहिक रूप से कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं जिनसे वे कुछ ऐसे अधिकारों और उन्मुक्तियों के पात्र हैं जिन के बिना सदन और उसके सदस्य अपने कृत्यों का निर्वहन प्रभावी और सुचारु रूप से नहीं कर सकते। जब किसी विशेषाधिकार के भंग होने का प्रश्न उत्पन्न होता है, सदन के उससे निबटने के लिए सक्षम होते हुए भी, उसे सामान्यता जांच के लिए, छानबीन के लिए और प्रतिवेदन देने के लिए विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किया जाता है। यह समिति प्रत्येक सदन में गठित की गई है।

विशेषाधिकार समिति आमतौर पर दोनों सदनों में उनके पीठासीन अधिकारियों द्वारा आमतौर पर प्रत्येक वर्ष गठित की जाती है। लोक सभा में इसके 15 सदस्य हैं और राज्य सभा में 10 सदस्य।

इस समिति के कृत्य अर्द्ध-न्यायिक स्वरूप के हैं और इसमें व्यापक शक्तियां निहित हैं। यद्यपि इसके निष्कर्ष अंततोगत्वा सदन के फैसले के अध्यधीन होते हैं फिर भी इसे सदन का विश्वास प्राप्त होता है और इसकी सिफारिशें शायद ही कभी अस्वीकार की जाएं। यह समिति संसद और संसद सदस्यों की शक्तियों और उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

(पांच) छानबीन समितियां

सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति : सदन में प्रश्नों के उत्तर देते समय या विधेयकों, संकल्पों, आदि पर चर्चाओं के दौरान मंत्रीगण प्रायः आश्वासन देते हैं या वचन देते हैं कि वे मामले पर विचार करेंगे या उस पर कार्यवाही करेंगे या बाद में सदन को पूरी जानकारी देंगे। ऐसे आश्वासनों की क्रियान्विति पर निगरानी रखने के लिए संसद के प्रत्येक सदन में सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति गठित की गई है। लोक सभा में इस समिति के 15 सदस्य हैं और राज्य सभा में इसके 10 सदस्य हैं।

समिति का काम सदन में मंत्रियों द्वारा इस प्रकार दिए गए आश्वासनों की छानबीन करना और सदन को इस बारे में प्रतिवेदन देना है कि ऐसे आश्वासन कहां तक क्रियान्वित किए गए हैं, क्या क्रियान्वयन इस प्रयोजन के लिए आवश्यक कम से कम समय में हुआ है।

अधीनस्थ विधान संबंधी समिति : संसद इस बारे में पूरी निगरानी रखना चाहती है कि जो शक्तियां किसी अधीनस्थ एजेंसी को या किसी प्रशासनिक अधिकारी को प्रत्यायोजित

की गई हैं उनका प्रयोग किस तरह किया गया है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रशासन द्वारा ऐसी शक्ति के दुरुपयोग की संभावना पर प्रभावी एवं निरंतर रोक रहे, सदन के प्रत्येक सदन की अपनी अधीनस्थ विधान संबंधी समिति है। प्रत्येक सदन की समिति के 15 सदस्य हैं जो अध्यक्ष/सभापति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। साधारणतया, समिति प्रत्येक वर्ष पुनर्गठित की जाती है।

समिति का मुख्य कार्य इस बारे में छानबीन करना और सदन को प्रतिवेदन देना है कि क्या संविधान द्वारा प्रदत्त या संसद द्वारा संविधि के माध्यम से प्रत्यायोजित नियम, उपनियम, विनियम, उपविधियां आदि बनाने की शक्तियों का, प्रदत्त या प्रत्यायोजित शक्तियों, जैसी भी स्थिति हो, के दायरे में रहकर प्रयोग किया गया है। समिति ऐसे सभी विधेयकों की भी जांच करती है जिनका उद्देश्य किसी अधीनस्थ प्राधिकारी को विधान बनाने की शक्तियां प्रत्यायोजित करना हो। समिति उनकी जांच यह देखने के लिए करती है कि क्या उनमें नियमों या आदेशों को सभा पटल पर रखने के लिए उपयुक्त उपबंध किए गए हैं। इस प्रकार प्रत्यायोजित प्राधिकार के अधीन पास किए गए नियमों या आदेशों की जांच करते समय समिति का काम अन्य बातों के साथ साथ यह सुनिश्चित करना होता है कि उन नियमों या आदेशों द्वारा कोई कर तो नहीं लगाया जा रहा है और संचित निधि में से किसी व्यय का प्रस्ताव तो नहीं किया जा रहा है;उनसे न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रुकावटें तो नहीं आ रहीं; और उनके प्रकाशन में या उन्हें संसद के समक्ष रखने में अनुचित विलंब तो नहीं हुआ।

यदि समिति इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि विधायी शक्तियां प्रत्यायोजित करने वाले विधेयक में किए गए उपबंध पूर्णतया या अंशतया रद्द कर दिए जाने चाहिए या उनमें कोई संशोधन किया जाना चाहिए तो वह विधेयक पर विचार आरंभ किए जाने से पूर्व सदन को इस आशय का प्रतिवेदन दे सकती है। समिति यह सुनिश्चित करने के लिए बराबर नजर रखती है कि सरकार उसकी सिफारिशों को कार्यान्वित करे।

अपने प्रतिवेदनों के द्वारा समिति ने प्रशासन द्वारा अधिकार के दुरुपयोग के विरुद्ध नागरिकों की रक्षा करने के मुख्य उद्देश्य से प्रशासन को प्राप्त विशाल विवेकाधिकारों को नियंत्रित और विनियमित करने का प्रयास किया है। भारतीय संसद के प्रथम अध्यक्ष श्री मावलंकर का विचार था कि अधीनस्थ विधान संबंधी समिति "सदन के कर्तव्यों की रक्षक" है और वह संसद के आशयों के अनुसार प्रशासन को सीमाओं के भीतर रखती है।

सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति : प्रत्येक अधिवेशन में सरकार संवैधानिक उपबंधों के अनुसरण[15] या प्रश्नों के उत्तर में या विभिन्न मामलों पर संसद सदस्यों को जानकारी देने के लिए स्वतः ही उनके वक्तव्य/विवरण, प्रतिवेदन और पत्र संसद के समक्ष रखती है। इनमें से कुछ प्रतिवेदन/पत्र तो अधीनस्थ विधान संबंधी समिति सहित विभिन्न संसदीय समितियों को निर्दिष्ट हो जाते हैं परंतु ज्यादातर सभा पटल पर रखे गए पत्रों

संबंधी समिति द्वारा विस्तृत जांच के लिए रह जाते हैं यह समिति संसद के प्रत्येक सदन द्वारा गठित की जाती है। लोक सभा में इस समिति के 15 सदस्य हैं और राज्य सभा में 10 सदस्य।

यह समिति सभा पटल पर रखे गए सभी पत्रों की जांच करती है और संविधान के जिस उपबंध के अधीन या अधिनियम, नियम या विनियम के अधीन पत्र सभा पटल पर रखे गए हों उनके अनुपालन में यदि कोई त्रुटियां पाई जाएं तो उनके बारे में, या यदि ऐसे पत्र संसद के समक्ष रखने में अनुचित विलंब हुआ हो तो उसके बारे में. सदन को प्रतिवेदन देती है। इस प्रकार, सामान्य रूप से समिति का उद्देश्य प्रशासन के उन क्षेत्रों में संसदीय नियंत्रण लागू करना है जिनमें 1975 में इस समिति का गठन होने तक वह नहीं था।

अनुसूचति जातियों तथा अनुसूचति जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति : भारत के संविधान में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए अनेक रक्षा उपायों का और उनकी कार्यान्विति पर निगरानी रखने के लिए तंत्र का उपबंध किया गया है। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का आयुक्त, राष्ट्रपति को इस बारे में नियमित रूप से प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है जिन्हें बाद में संसद में चर्चा करने के लिए उसके समक्ष रखा जाता है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त द्वारा की गई सिफारिशों को संसद प्रभावी ढंग से कार्यरूप देना सुनिश्चित कर सके, इस दृष्टि में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति स्थापित की जाती है।

इस समिति के 30 सदस्य हैं, 20 लोक सभा के और 10 राज्य सभा के और ये सदस्य संसद के अलग अलग सदनों द्वारा अपने सदस्यों में से निर्वाचित किए जाते हैं।

समिति के मुख्य कृत्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त के प्रतिवेदन पर विचार करना और संसद में इस बारे में प्रतिवेदन पेश करना है कि उन पर सरकार द्वारा क्या उपाय किए गए हैं या करने अपेक्षित हैं। वास्तव में समिति विभिन्न सेवाओं में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व, उनके कल्याण संबंधी कार्यक्रम के कार्यकरण इत्यादि सहित इन जातियों के कल्याण से संबंधित सभी मामलों की जांच करती है और उनके बारे में प्रतिवेदन पेश करती है। समिति यह भी सुनिश्चित करती है कि इन पिछड़े समुदायों के लिए संवैधानिक रक्षा को प्रभावी ढंग से कार्यरूप दिया जाए।

(छह) सेवाएं उपलब्ध कराने वाली समितियां

संसद की कुछ ऐसी भी समितियां हैं जो सदस्यों को उपलब्ध की जाने वाली विभिन्न प्रकार की सुविधाओं और सेवाओं और संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के कार्यकरण से संबंधित अन्य मामलों की जांच करती हैं। वे समितियां इस प्रकार हैं : सामान्य प्रयोजन

समिति, आवास समिति, ग्रंथालय समिति और संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति।

सामान्य प्रयोजन समिति : प्रत्येक सदन की एक सामान्य प्रयोजन समिति है। संबंधित सदन का पीठासीन अधिकारी समिति का पदेन सभापति होता है। इस समिति में उपाध्यक्ष या उपसभापति, जैसी भी स्थिति हो, सभापति तालिका के सदस्य, उस सदन की सभी स्थायी समितियों के सभापति, मान्यता-प्राप्त दलों/ग्रुपों के नेता और ऐसे अन्य सदस्य होते हैं जो पीठासीन अधिकारी द्वारा मनोनीत किए जाएं।

यह समिति सदन के और सदन के कार्यों से संबंधित ऐसे तदर्थ मामलों पर जो किसी अन्य संसदीय समिति के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते और जो समय समय पर इसे निर्दिष्ट किए जाएं, परामर्श देने के लिए गठित की जाती है।

आवास समिति : संसद के प्रत्येक सदन की एक आवास समिति है जो मुख्यतया सदस्यों के रिहायशी स्थानों संबंधी और खान-पान, चिकित्सा सहायता आदि जैसी अन्य सुविधाओं से संबंधित मामलों के बारे में कार्य करती है।

ग्रंथालय समिति : यह समिति दोनों सदनों की संयुक्त समिति है जिसमें लोक सभा के 6 सदस्य हैं (उपाध्यक्ष सहित) जो अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किए जाते हैं और राज्य सभा के 3 सदस्य हैं जो उसके सभापति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। यह समिति प्रत्येक वर्ष गठित की जाती है। इस समिति का मुख्य कृत्य ग्रंथालय और उसकी सहायता सेवाओं, अर्थात संदर्भ शोध तथा प्रलेखन सेवाओं के प्रयोग में सदस्यों की सहायता करना है। यह पुस्तकों के चयन, ग्रंथालय के लिए नियम बनाने और इसकी भावी योजना आदि से संबंधित मामलों में अध्यक्ष को परामर्श देती है।

संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्ते संबंधी संयुक्त समिति : संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्ते अधिनियम, 1954 के अधीन नियम बनाने के लिए वह संयुक्त समिति गठित की गई थी। इसमें लोक सभा के 10 और राज्य सभा के 5 सदस्य हैं।

इस समिति के कृत्य इस प्रकार हैं : दोनों सदनों के सदस्यों के लिए चिकित्सा, आवास, टेलीफोन और डाक सुविधाओं जैसे मामलों के लिए भारत सरकार से परामर्श करके सामान्य रूप से उनके दैनिक और यात्रा भत्तों आदि की अदायगी को विनियमित करने के लिए उपबंध कराने वाले नियम बनाना।

निष्कष

इस तथ्य के होते हुए भी कि बोफोर्स तोप सौदे के संबंध में संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट कुछ विवादों और प्रश्नों से घिरी रही तथा प्रतिभूति घोटाले के संबंध में संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट पर की गई कार्यवाही की रिपोर्ट के संबंध में भी घोर विवाद

उठ खड़े हुए, सामान्यतया सरकार संसदीय समितियों की सिफारिशों को महत्वपूर्ण मानती है और प्रायः अधिकांश सिफारिशों को स्वीकार करती है। समितियों के प्रतिवेदन प्रशासन में सम्मान की भावना पैदा करते हैं। संसदीय समिति द्वारा बारीकी से छानबीन की संभावना ही प्रशासन पर पर्याप्त प्रभाव रखती है। लापरवाही के, पक्षपात के और अपव्यय के बहुत से काम केवल इसी भय से नहीं किए जाते कि किसी संसदीय समिति द्वारा उनकी जांच की जा सकती है और लोगों के सामने उनका पर्दाफाश किया जा सकता है। समितियों के प्रतिवेदन सदस्यों और आम लोगों के लिए बहुत शैक्षिक महत्व के रहे हैं।

इसमें संदेह नहीं है लोक सभा की समितियां भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की सहायक अंग सिद्ध हुई हैं। निरंतर सतर्क रहकर और सरकारी विभागों के कार्यकरण के न्यायोचित एवं रचनात्मक मूल्यांकन से समितियों ने संसद के प्रभावी कार्यकरण में विशिष्ट योगदान किया है और देश में संसदीय संस्थानों को सामान्य रूप से सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इधर काफी समय से विभिन्न क्षेत्रों में यह विचार रखा जा रहा था कि भारतीय संसद की समिति व्यवस्था में और सुधार करने तथा उसे सक्षम और सशक्त बनाने की आवश्यकता थी। आधुनिक राज्य के कार्य क्षेत्र की बढ़ती हुई व्यापकता और जटिलता के कारण यह और भी जरूरी हो गया। 1989 तक हमारी संसद में विषयगत अथवा विभागीय समितियों जैसी कोई चीज नहीं थी। इसी प्रकार की समितियों के माध्यम से संसद सरकारी कार्यकलापों पर तीखी नजर रख सकती है और अपने विषय क्षेत्र के अंदर आने वाले कार्यपालिका के विधायी, बजट और अन्य सभी प्रस्तावों पर विचार विनिमय कर सकती है। जो 17 विभागीय समितियां बनी हैं और काम कर रही हैं, उनका प्रथम संकल्पन और गठन संसद के इतिहास में एक प्रमुख घटना माना जायेगा। आशा की जा सकती है कि इन समितियों के कारण प्रशासन की जवाबदेही और संसद की निगरानी प्रक्रिया और जांच व्यवस्था को नया बल और नयी दिशा मिलेगी।

मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व की संकल्पना अथवा संसद की स्थिति को किसी प्रकार भी कमजोर किये बिना सभी विषयों-मंत्रालयों और विभागों के लिए संसदीय समितियों की संपूर्ण एकीकृत व्यवस्था स्वयं सरकार को अधिक प्रभावी बना सकती है क्योंकि नीतियों के वास्तविक कार्यकरण में आने वाली कठिनाइयों को उजागर कर, ये समितियां सरकार को एक नयी अंतर्दृष्टि दे सकती हैं, संसद को प्रशासनिक कार्यकलापों की जांच पड़ताल के लिये अधिक सक्षम और पैने उपकरण उपलब्ध करा सकती हैं तथा संसद की विधायी एवं पर्यालोचन भूमिका तथा प्रतिनिधिक भूमिका के बीच आवश्यक तालमेल बैठा सकती हैं। साथ ही संसद और सरकार दोनों के लिए लाभकारी बहुमूल्य समय की बचत करा सकती हैं।

सदन के वाद विवाद में प्रचार माध्यमों का विशेष महत्व रहता है किंतु समितियां अधिक शांतिपूर्ण, गंभीर और चकाचौंध से मुक्त वातावरण में, दलगत राजनीति से ऊपर

उठकर, कुछ ठोस विचार करने और सार्थक सुझाव पेश करने में सफल हो सकती हैं। समितियों में विभिन्न दलों के सदस्य एक दूसरे के दृष्टिकोणों को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं और आवश्यक आदान प्रदान के द्वारा परस्पर-विरोधी हितों के बीच उचित सामंजस्य और समझौता स्थापित कर प्रभावी निर्णय ले सकते हैं, किंतु, इन समितियों की और संसद के प्रति प्रशासन की जवाबदेही की व्यवस्था की सफलता अंततः निर्भर करती है सरकार के द्वारा सहयोग और समिति को यथासमय पूरे तथ्य और सूचना देने पर, समिति सचिवालय के कर्मचारियों की निष्ठा, योग्यता और निष्पक्षता पर तथा सदस्यों के समिति कार्य में यथेष्ट रुचि लेने पर।

सरकार के समस्त कार्यकलाप 17 विभागीय समितियों के अंतर्गत आ जाते हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन समितियों की वजह से सरकार के कार्यकलाप की छानबीन सुनिश्चित करने के विद्यमान साधनों में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। ये इस बात के संकेत हैं कि हमारी संसदीय प्रणाली में प्रभावी परिवर्तन की संभावना है। आशा की जाती है कि आने वाले समय में, ये समितियां अपनी उद्दिष्ट भूमिका को पूरा करेंगी तथा संसदीय चौकसी को एक सजीव वास्तविकता बना देंगी।

भारत की संसदीय समिति प्रणाली में आगे और सुधार लाते समय याद रखने की सबसे बड़ी बात यह है कि संसदीय राजनीतिक व्यवस्था में समितियां स्थापित करने का यह उद्देश्य नहीं होता और न ही कभी होना चाहिए कि वे विधानमंडल अथवा कार्यपालिका के मुकाबले में शक्ति के सुदृढ़ अथवा स्वतंत्र केंद्र बनें। समितियों की भूमिका पूरक और सहायक होती है और एक मित्रतापूर्ण समालोचक की या आंतरिक प्रबंध लेखापरीक्षा की होती है। समिति व्यवस्था में सुधार इस उद्देश्य से किये जाने चाहिए कि वे उनको सौंपे जाने वाले इस कार्य को प्रभावी ढंग से कर सकें।[16]

संदर्भ

1. *देखिए* सुभाष काश्यप, **कमेटीज इन इंडियन लोक सभा** इन जॉन डी. लीज़ एंड मालकम शॉ (सं.) **कमेटीज इन लेजिसलेचर : ए कम्पेरेटिव स्टडी**, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, 1979, पृ. 279-300
2. अनु. 88 और 105
3. काश्यप, ऊपर उद्धृत, पृ. 297
4. नियम 254
5. नियम 256 और 258
6. नियम 267, 270 और 263 तथा निर्देश 50 (1), 56 और 57
7. नियम 266, 268, 261, 262, 276 और 277
8. नियम 279(1) और निर्देश 68(1), 71 क (1-3), 55 और 65(1)
9. नियम 309, 311 और 312 ख और निर्देश 99(1)

10. नियम 310 और निर्देश 98
11. समिति पहली बार मांटेगु-चेम्सफोर्ड रिफार्म्स 1919 के अधीन वर्ष 1921 में स्थापित की गई थी। 1954-55 से पूर्व इसके 15 सदस्य थे जो केवल लोक सभा से ही लिए गए थे।
12. नियम 308
13. नियम 308(3)
14 नियम 312 की चौथी अनुसूची और नियम 312 क का परंतुक (एक-तीन)
15. स्वायत्तशासी और सांविधिक निकायों के वार्षिक प्रतिवेदन, समय समय पर नियुक्त होने वाली समितियों तथा आयोगों के प्रतिवेदन, राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश, सांविधिक नियम और आदेश कुछ श्रेणियों के पत्र हैं जो सभा पटल पर रखे जाते हैं।
16. आगे अध्ययन के लिए देखिये सुभाष काश्यप, ए न्यू पार्लियामेंटरी इनीशिएटिव—सबजैक्ट बेस्ड कमेटीज ऑफ पार्लियामेंट, **इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली**, 6 अक्तूबर, 1990; बजट एंड पार्लियामेंट—नीड फॉर इनोवेशंस, **इकॉनॉमिक टाइम्स**, 3 मार्च, 1991; ए केस फॉर बजट कमेटीज, **नेशनल हेरल्ड**, 16 नवंबर 1990; कमेटीज मस्ट वैट डिमांड्स फार ग्रांट्स, **टाइम्स ऑफ इंडिया**, 8 मई 1992; सबजैक्ट बेस्ड पार्लियामेंटरी पैनेल्स 1 और 2, **फाइनेंशियल एक्सप्रेस**, 2-3 अक्तूबर, 1992

12

सेवाओं की व्यवस्था और सचिवालय

विधानमंडल द्वारा अनुमोदित नीतियों को कार्यरूप देने में या उनके प्रशासन में विधानमंडल का कोई दखल नहीं होता। फिर भी, लोगों के प्रतिनिधि निकाय के रूप में विधानमंडल उनकी प्रभुसत्ता का प्रतीक होता है। उसे लोगों के हितों का ध्यान रखना होता है और यह सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाने होते हैं कि प्रशासन संविधान के दायरे में रह कर कार्य करे।

यदि देश के विधानमंडल को और सदस्यों को बिना भय या पक्षपात के अपने अधिकारों का प्रयोग करना है और अपने दायित्वों का निर्वहन करना है तो उन्हें इतनी स्वतंत्रता अवश्य होनी चाहिए कि वे सरकार की त्रुटियों को प्रकाश में ला सकें जिससे सरकार की नीतियों की और उसके कार्यनिष्पादन की सार्वजनिक रूप से छानबीन हो सके। विधानमंडल और विधायक इस कृत्य का निर्वहन प्रभावी रूप से और योग्यता से तभी कर सकते हैं जब उनका अपना सचिवालय हो जो कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त हो। यदि संसदीय लोकतंत्र को लोगों के अधिकतम हित में काम करना है तो सचिवालय का स्वतंत्र होना आवश्यक है क्योंकि सदस्य विधानमंडल में ही सरकार की नीतियों को चुनौती देते हैं और उन पर खर्चा करते हैं और यह फैसला सचिवालय की सहायता से पीठासीन अधिकारी ही करता है कि किसी प्रश्न या चर्चा को गृहीत किया जाये या नहीं। यदि पीठासीन अधिकारी के फैसले कार्यपालिका के प्रभाव में आकर किये जाते हैं तो संसदीय लोकतंत्र का आधार ही खतरे में पड़ जाता है।

भारतीय विधानमंडल के लिए "सरकार से स्वतंत्र और असंबद्ध" पृथक सचिवालय का विचार जनवरी, 1926 में तब प्रभावी रूप से सामने आया जब विट्ठल भाई पटेल द्वारा आयोजित भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में केंद्रीय विधान सभा के लिए पृथक कार्यालय स्थापित करने के लिए प्रस्तुत किया गया एक संकल्प स्वीकृत हुआ। उसके बाद, 22 सितंबर, 1928 को तत्कालीन केंद्रीय विधान सभा में सुप्रसिद्ध नेता मोतीलाल नेहरू ने एक संकल्प पेश किया जिसका समर्थन एक अन्य प्रसिद्ध नेता लाला लाजपत राय ने किया और उस संकल्प का उद्देश्य पृथक सभा विभाग का गठन

करना था। वह संकल्प स्वीकृत किया गया। वास्तव में वही संकल्प "सभा विभाग के सृजन और उसके प्राधिकार का स्रोत" बना। उसके परिणामस्वरूप, गवर्नर-जनरल के विभाग में 10 जनवरी, 1929 को "विधान सभा विभाग" नामक पृथक विभाग स्थापित किया गया और विधान सभा का "प्रेजीडेंट" उसका वास्तविक प्रमुख बना।

स्वतंत्रता के बाद की स्थिति

26 जनवरी, 1950 तक उस विभाग का नाम वही रहा और उस दिन जब भारत का संविधान लागू हुआ और अस्थायी संसद बनी तो नाम बदल कर "संसद सचिवालय" रख दिया गया। 1952 में नये संविधान के अधीन दो अलग अलग सदन कौंसिल आफ स्टेट्स (राज्य सभा) और हाउस आफ द पीपुल (लोक सभा) बन जाने के बाद भी हाउस आफ द पीपुल के सचिवालय का नाम संसद सचिवालय रहा, परंतु कौंसिल आफ स्टेट्स के लिए "कौंसिल आफ स्टेट्स सचिवालय" नाम का नया सचिवालय स्थापित किया गया। उनके नाम 1954 में बदलकर हिंदी में क्रमशः लोक सभा सचिवालय और राज्य सभा सचिवालय रखे गये।

संवैधानिक उपबंध

दोनों सदनों के लिए पृथक और स्वतंत्र सचिवालय स्थापित करने का मूल उद्देश्य यह सुनिश्चित करना रहा है कि संसद के प्रति कार्यपालिका की जिम्मेदारी और प्रशासन के उत्तरदायित्व के सिद्धांतों का प्रभावी एवं पूर्ण प्रयोग हो। वास्तव में स्वयं भारत के संविधान में इस महत्वपूर्ण आवश्यकता को माना गया है। अनुच्छेद 74 और 75 में उपबंध है कि प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगी और अनुच्छेद 98 के प्रथम खंड में उपबंध है कि प्रत्येक सदन के लिए पृथक अधिकारी और कर्मचारी होंगे और उसमें दोनों के साझे पदों के सृजन की भी अनुमति दी गयी है। इस अनुच्छेद के खंड 2 द्वारा संसद को दोनों सदनों के सचिवालयों के कर्मचारियों की भर्ती और सेवा-शर्तों को विनियमित करने के लिए विधियां बनाने का प्राधिकार दिया गया है। खंड 3 में उपबंध किया गया है कि जब तक संसद द्वारा ऐसी विधियां नहीं बनाई जातीं तब तक राष्ट्रपति संबंधित पीठासीन अधिकारियों का परामर्श लेने के पश्चात भर्ती और सेवा-शर्तों को विनियमित करने के लिए नियम बना सकता है। संविधान के अनुच्छेद 98 के खंड 2 के अधीन संसद ने अब तक कोई विधान पास नहीं किया है। परंतु पहली अक्तूबर, 1955 को अनुच्छेद 98 के खंड 3 के अनुसरण में, राष्ट्रपति द्वारा अध्यक्ष के परामर्श से लोक सभा सचिवालय (भर्ती तथा सेवा शर्तें) नियम 1955 बनाये गये थे और प्रख्यापित किये गये थे। राष्ट्रपति द्वारा राज्य सभा सचिवालय के लिए ऐसे ही नियम 1957 में सभापति के परामर्श से बनाये गये थे और प्रख्यापित किये गये थे।

पृथक भर्ती तथा सेवा-शर्तें

संसद के सचिवालयों में नियुक्त लोगों की भर्ती और सेवा-शर्तें उपरोक्त नियमों द्वारा विनियमित होती हैं। वे प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा अपने अपने सचिवालय में भर्ती करते हैं।[2] इस प्रकार, ये सचिवालय सभापति या अध्यक्ष के, जैसी भी स्थिति हो, मार्गदर्शन और नियंत्रण में स्वतंत्र सचिवालयों के रूप में कार्य करते हैं। सुस्थापित प्रथाओं के अनुसार, भारत सरकार द्वारा अपने मंत्रालयों और विभागों के लिए अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सेवा-शर्तों से संबंधित आदेश स्वतः ही लोक सभा सचिवालय और राज्य सभा सचिवालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों पर लागू नहीं हो जाते। ऐसे सभी सरकारी आदेशों की जांच की जाती है और यदि उन्हें उपयुक्त पाया जाये तो यह फैसला किया जाता है, उनके उपबंध दोनों सचिवालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों पर पूर्णतः लागू किये जायें और उन्हें इस प्रकार अपनाये जाने के आदेश सरकार से परामर्श किये बिना, भर्ती तथा सेवा-शर्तों संबंधी आदेश के रूप में जारी किये जाते हैं। परंतु यदि किसी वित्तीय आदेश में कोई रूपभेद या परिवर्तन करना आवश्यक समझा जाये तो वित्त मंत्रालय से परामर्श करने के पश्चात उन्हें अपनाये जाने के आदेश जारी किये जाते हैं। यदि विधानमंडल सचिवालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अपनी सेवा के भविष्य के लिए और पदोन्नतियों, वेतनमानों इत्यादि के लिए गृह मंत्रालय, वित्त मंत्रालय या सरकार के किसी अन्य विभाग पर निर्भर करना पड़ता तो स्पष्ट है कि वे कार्यपालिका के मुकाबले में स्वत्रंत नहीं रह सकते थे।

संसद के दोनों सदनों का बजट

संसद के सदस्यों और अधिकारियों के वेतन तथा भत्तों और उनको मिलने वाली सुविधाओं पर किये जाने वाले खर्च के मामले में भी स्वतंत्रता की स्थिति बनाये रखी गई है। ये खर्च भारत की संचित निधि में से किये जाते हैं। भारत सरकार के अन्य मंत्रालयों की तरह, राज्य सभा और लोक सभा के संबंध में अलग अनुदानों की मांगें संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखी जाती हैं। संसद प्रत्येक वर्ष विनियोग अधिनियमों के द्वारा उस खर्च की मंजूरी देता है। दोनों सदनों की और उनके सचिवालयों की मांगों पर सदन में कटौती प्रस्ताव पेश करने की अनुमति नहीं है।

उदाहरणार्थ, लोक सभा के बजट अनुमान लोक सभा सचिवालय द्वारा संकलित किये जाते हैं और महासचिव के अनुमोदन के पश्चात अध्यक्ष द्वारा नियुक्त एक तदर्थ समिति के समक्ष रखे जाते हैं। उपाध्यक्ष और वित्तीय समितियों के सभापति उस तदर्थ समिति के सदस्य होते हैं। उसके पश्चात समिति की सिफारिशों के साथ, यदि कोई हो तो, वे अनुमान केंद्रीय बजट में सम्मिलित करने के लिए वित्त मंत्रालय को प्रेषित किये जाते हैं। वित्त मंत्रालय की किसी विभागीय समिति द्वारा या संसद की किसी अन्य समिति द्वारा उनकी जांच नहीं की जाती।

कृत्यात्मक आधार पर मोटे तौर पर कार्य का विभाजन

सचिवालयों की स्वतंत्रता और कार्य कुशलता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति ने, एक दूसरे से परामर्श करके, अगस्त, 1973 में संसद की एक समिति नियुक्त की थी जिसका उद्देश्य यह था कि वह विशेष रूप से भारत सरकार द्वारा नियुक्त तीसरे वेतन आयोग की, जिसने उसी वर्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया था, सिफारिशों के प्रकाश में, संसदीय अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतनमानों और मेवा की अन्य शर्तों के पुनरीक्षण के मामले में उन्हें परामर्श दे।[3] अपने विचार-विमर्शों में, समिति ने दोनों सचिवालयों के स्वतंत्र स्वरूप को और इनके कृत्यों एवं उत्तरदायित्वों की विशिष्टता को ध्यान में रखा। समिति ने दोनों सचिवालयों को अधिक कार्यकुशल एवं मितव्ययी बनाने के लिए वैज्ञानिक आधार पर इनके पुनर्गठन की सिफारिश की। उसके परिणामस्वरूप, सचिवालयों का निम्नलिखित सेवाओं के रूप में कृत्यात्मक पुनर्गठन किया गया :

(1) **विधायी सेवा** जो विधान, प्रश्नों, कार्यसूची तैयार करने आदि जैसे सदन से संबंधित कार्य करती है;

(2) **वित्तीय समिति सेवा** जो तीनों वित्तीय समितियों को और रेलवे अभिसमय समिति को सचिवालयी सहायता उपलब्ध कराती है और इनसे संबंधित सभी कार्य करती है;

(3) **एक्जीक्यूटिव तथा प्रशासन सेवा** जो प्रशासनिक और सामान्य मामलों से संबंधित और सदस्यों तथा अधिकारियों और कर्मचारियों को वेतन तथा भत्तों की अदायगी और अन्य सुविधाओं से संबंधित कार्य करती है;

(4) **ग्रंथालय, संदर्भ, शोध, प्रलेखन तथा सूचना सेवा** जो अद्यतन और पूरी तरह सुसज्जित ग्रंथालय तथा कुशल शोध एवं संदर्भ सेवाओं के द्वारा भारत में और विदेशों में प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं से संसद सदस्यों को सुपरिचित रखती है और दोनों सदनों लोक सभा और राज्य सभा के समक्ष आने वाले विधायी उपायों एवं अन्य मामलों पर संदर्भ सामग्री उपलब्ध कराती है ताकि सदस्य अपने अपने सदन में होने वाले वाद विवाद में प्रभावी रूप से भाग ले सकें;

(5) **शब्दशः आशुलेखन (रिपोर्टिंग), वैयक्तिक सचिव तथा आशुलिपिक सेवा** जो संसदीय कार्यवाहियों और समितियों की कार्यवाहियों का आशुलेखन करती है और अधिकारियों के लिए आशुलिपिक सहायता की व्यवस्था करती है;

(6) **संसदीय भाषांतरकार सेवा** जो लोक सभा की तथा इसकी समितियों की कार्यवाहियों के समानांतर अथवा साथ साथ अनुवाद के लिए उत्तरदायी है;

(7) **मुद्रण, प्रकाशन, लेखन-सामग्री, विक्रय, भंडार, वितरण सेवा** जो (क) मुद्रण, रोटा प्रिंटिंग और जिल्द बांधने के कार्य (ख) लेखन-सामग्री और भंडार, रिकार्ड रखने (ग) विक्रय और (घ) प्राप्ति तथा वितरण के कार्य करती है;

(8) **संपादकीय तथा अनुवाद सेवा** जो वाद विवाद का संपादन करती है और वाद विवाद के सारांश तैयार करती है, वाद विवाद, प्रतिवेदनों और संसदीय पत्रों का अनुवाद करती है;

(9) **सुरक्षा, द्वारपाल तथा सफाई सेवा** जो संसद भवन के अंदर और बाहर सुरक्षा के उपायों की देखरेख करती है और परिसरों का उचित रख रखाव सुनिश्चित करती है;

(10) **क्लर्क, टाईपिस्ट, रिकार्ड सार्टर और दफ्तरी सेवा;** और

(11) **संदेशवाहक सेवा** जो अन्य सभी सेवाओं द्वारा अपेक्षित सहायक कर्मचारियों के रूप में कार्य करती है।

इस प्रकार दोनों सचिवालयों का समूचा ढांचा कृत्यात्मक आधार का है जिसमें सेवी वर्ग और पर्यवेक्षण के स्तर कम से कम रखे गये हैं और कार्य का आयोजन, जहां कहीं संभव है, "डेस्क आफिसर" प्रणाली पर आधारित है ताकि सचिवालयों में कार्य ईकाइयां छोटी और ठोस हों और उत्तरदायित्व के अनावश्यक विस्तार के बिना कार्य शीघ्र हो और गुणवत्तापूर्ण हो[1]

संसद ग्रंथालय तथा सूचना सेवा

भारतीय संसद दावा कर सकती है कि इसके पास बहुत ही कुशल सूचना सेवा सहित एक उत्तम संसदीय पुस्तकालय है। कार्यात्मक दृष्टि से इसे संसद ग्रंथालय तथा संदर्भ, अनुसंधान, प्रलेखन और सूचना सेवा कहा जाता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य एक अद्यतन, तथा सुसज्जित पुस्तकालय और कुशल अनुसंधान तथा संदर्भ सेवाएं बनाए रखकर संसद सदस्यों को देश-विदेश के दैनिक घटनाक्रम की पूरी जानकारी उपलब्ध कराना है।

इस समय इस पुस्तकालय में 15 लाख से अधिक पुस्तकें हैं। अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं के लगभग 300 भारतीय तथा विदेशी समाचारपत्र और 1100 के करीब पत्र-पत्रिकाएं नियमित रूप से पुस्तकालय में आती हैं। इसके साथ दुर्लभ पुस्तकों, कला पुस्तकों आदि का विशाल संग्रह है। सब से पुरानी छपी हुई पुस्तक 1871 की है। किंतु, पुस्तकालय की सर्वाधिक मूल्यवान धरोहर संविधान सभा द्वारा यथा स्वीकृत तथा इसके सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित भारत के संविधान की हिंदी तथा अंग्रेजी में मूल सुलिखित प्रति है।

समय समय पर तथा विशिष्ट अवसरों पर, संसद ग्रंथालय रुचि के विषयों पर पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन करता है। संदर्भ तथा प्रलेखन प्रभाग अन्य बातों के साथ साथ

संसद सदस्यों से प्राप्त होने वाले संदर्भों का प्रतिपादन करने के लिए पूरी तरह से सुसज्जित है। 1970 में संदर्भ प्रभाग ने 700 संदर्भ प्राप्त तथा प्रतिपादित किये। इसकी तुलना में 1990 के दौरान इनकी संख्या बढ़कर 3,627 तथा 1990 के दौरान 5,167 हो गई।

अनुसंधान तथा सूचना प्रभाग संसद सदस्यों की सूचना संबंधी अपेक्षाओं का पहले से अनुमान लगा लेता है और उचित समय पर वस्तुनिष्ठ सूचना सामग्री जैसे विवरणिकाएं, सूचना बुलेटिन, पृष्ठभूमि टिप्पण, तथ्य-पत्र आदि जारी करके उन्हें विभिन्न राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों के वर्तमान घटनाक्रम से अवगत कराने का सतत प्रयास करता है।

प्रेस तथा लोक संपर्क प्रभाग लोक सभा सचिवालय के प्रेस तथा लोक संपर्क से संबंधित सारे कार्य की देखभाल करता है, जिसमें, मुख्य रूप से, प्रेस, सरकारी प्रचार संगठनों और जन प्रचार माध्यमों (मीडिया) के साथ निरंतर संपर्क बनाये रखना सम्मिलित होता है। यह लोक सभा की प्रेस दीर्घा से संबंधित सभी मामलों को भी देखता है, जिन में विभिन्न संसदीय घटनाओं तथा कार्यकलापों के संबंध में प्रेस विज्ञप्तियां जारी करना शामिल है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई समुन्नति के साथ चलने की दृष्टि से, संसद ग्रंथालय सूचना प्रणाली ने 1987 में कम्प्यूटर केंद्र की स्थापना करके कम्प्यूटरीकृत सूचना सेवा के क्षेत्र में एक शुरुआत की। संसद ग्रंथालय सूचना प्रणाली का डैटाबेस संसद सदस्यों, संसद के अधिकारियों, समितियों, अनुसंधान तथा संदर्भ कर्मिकों और अन्य कर्मचारियों की तात्कालिक संदर्भ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अभिकल्पित किया गया है। कम्प्यूटरों में संग्रहीत सूचना तथा तत्काल पुनः प्राप्ति के लिए उपलब्ध आधार-सामग्री में संसद के दोनों सदनों में प्रश्न-उत्तर तथा वाद विवाद के विषयसूचक संदर्भ, विधेयक, सदस्यों के जीवन-वृत्त, संविधान सभा के वाद विवाद, सदस्यों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, संसदीय समितियों के संबंध में सूचना, अध्यक्ष के निर्णय तथा उसकी समुक्तियां आदि सम्मिलित हैं। इस प्रणाली के डैटाबेस में सम्मिलित कुछ संसदीय कार्यकलापों से संबंधित आधार-सामग्री राज्य विधान मंडलों के अनुरोध पर भी उपलब्ध की जाती है। कुछ राज्य विधानमंडलों ने अपने कम्प्यूटर एन ई सी एस-1000 को मेरानल इन्फार्मेटिक्स सेंटर नेटवर्क के माध्यम से जोड़कर संसद पुस्तकालय सूचना प्रणाली की कुछ आधार-सामग्री को प्राप्त करने की पहले से व्यवस्था कर ली है। संसदीय ग्रंथालय सूचना प्रणाली नेशनल इन्फार्मेटिक्स सेंटर नेटवर्क से जुड़ी हुई है और इस प्रणाली के अंतर्गत समूचे देश में जिला सूचना केंद्रों के साथ संवादों का आदान प्रदान किया जा सकता है। कुछ अंतर्राष्ट्रीय डैटाबेसों के साथ भी इसके सीधे संपर्क हैं।

प्रलेखन सेवा का मुख्य कार्य पुस्तकालय में प्राप्त होने वाली तथा रखी जाने वाली सभी पुस्तकों, रिपोर्टों, पत्र-पत्रिकाओं, समाचारपत्रों की कतरनों और प्रलेखों को ठीक स्थान पर रखना, उनका संग्रह करना और उनका विषयगत वर्गीकरण अथवा सूचीकरण करना और तत्पश्चात संसद सदस्यों को उनके दिन प्रतिदिन के संसदीय कार्य में प्रयोग के लिए संबंधित सामग्री के सारांश उपलब्ध कराना है। सभी प्रमुख विषयों के संबंध में प्रलेखन

कार्ड तैयार किये जाते हैं तथा कार्ड सूची-दराजों में रखे जाते हैं और संसदीय पुस्तकालय सूचना प्रणाली के डैटाबेस में भी भरे जाते हैं। प्रलेखन अनुभाग एक पाक्षिक पत्रिका, **पार्लियामेंटरी डाक्युमेंटेशन** भी निकालता है।

संदर्भ तथा अनुसंधान कार्य के एक महत्वपूर्ण सहायता-साधन के रूप में यह सेवा अंग्रेजी तथा हिंदी दोनों भाषाओं के कुछ चुने हुए समाचारपत्रों की संपादकीय टिप्पणियों, लेखों तथा मुख्य समाचारों का एक व्यापक संग्रह भी रखती है। समाचारपत्रों की ये कतरनें कालानुक्रम में अलग फोल्डरों में रखी जाती हैं और सदस्य पुस्तकालय में इनका अध्ययन कर सकते हैं या इनकी सहायता ले सकते हैं।

ग्रंथालय की नई इमारत : जैसे सभी जगह पुस्तकालयों को स्थान की कमी का सामना करना पड़ता है, उसी तरह संसद ग्रंथालय के पास भी स्थान की अत्यधिक कमी है। जल्दी ही संसद ग्रंथालय एक विशाल नई इमारत में चला जायेगा, जिसे संसद ज्ञानपीठ का नाम दिया गया है। इसकी आधारशिला 15 अगस्त, 1987 को रखी गई थी और यह आजकल निर्माणाधीन है।

संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण केंद्र

संसदीय लोकतंत्र ने कुछ ऐसी उन्नत प्रक्रियाओं और कार्यपद्धतियों का विकास किया है जो न तो जल्दी ग्रहण की जा सकती हैं और न ही जल्दी समझी जा सकती हैं। इसलिए लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के कार्यकरण में भिन्न भिन्न स्तरों पर काम करने वालों, जैसे नीति निर्माताओं, विधायकों, प्रशासकों और ऐसे ही विभिन्न अन्य कार्यकर्ताओं को संसदीय संस्थाओं के सिद्धांतों, साधनों और कार्यपद्धतियों में प्रशिक्षण दोनों आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त, यह भी आवश्यक है कि उनके दृष्टिकोण को संसदीय लोकतंत्र की आवश्यकताओं एवं उत्तरदायित्वों तथा उसके वातावरण के अनुकूल बनाया जाये। यह सुनिश्चित करने का दायित्व भी मूलतः संसद का ही है कि आवश्यक अध्ययन किये जाते रहे हैं और अपेक्षित प्रबोधन एवं प्रशिक्षण देने का कार्य भी किया जाता रहे।

संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण केंद्र लोक सभा सचिवालय के एक प्रभाग के रूप में 1976 में स्थापित किया गया था। इसका उद्देश्य विधायकों और अधिकारियों को संसदीय संस्थाओं के विभिन्न विषयों, कार्य पद्धतियों एवं प्रक्रियाओं में पैदा होने वाली समस्याओं की दृष्टि से अध्ययन और क्रमबद्ध प्रशिक्षण के संस्थागत अवसर उपलब्ध कराने की काफी समय से महसूस की जा रही आवश्यकता पूरी करना है।

केंद्र के क्रियाकलाप इस प्रकार हैं : संसद सदस्यों और राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के लिए विचार गोष्ठियां और प्रबोधन कार्यक्रम आयोजित करना; संसद के सचिवालयों और राज्य विधानमंडलों के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करना; भारत सरकार के वरिष्ठ और मध्यम स्तर के अधिकारियों और भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, भारतीय पुलिस सेवा और अनेक अन्य अखिल

भारतीय तथा केंद्रीय सेवाओं के परिवीक्षाधीन अधिकारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करना। देश भर के विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए माडल संसदें आयोजित करना और इस प्रयोजन के लिए विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को प्रशिक्षण देना; राज्य विधानमंडलों के सदस्यों और प्रशासनिक अधिकारियों, छात्रों और अन्य व्यक्तियों के लिए अध्ययन दौरे आयोजित करना; और भारत तथा विदेशी संसदों के संसदीय तथा विधानमंडलों के अधिकारियों को संयोजित करना भी केंद्र के क्रियाकलापों में शामिल है। संसदीय अधिकारियों के लिए संसदीय इंटर्नशिप कार्यक्रम और अंतर्राष्ट्रीय विधायी प्रारूप पाठ्यक्रम (इंटरनेशनल लेजिस्लेटिव ड्राफ्टिंग) इस केंद्र के दो नवीनतम नियमित पाठ्यक्रम हैं जो मुख्यतया विदेशियों के लिए हैं।

संसदीय संग्रहालय तथा अभिलेखागार

भारत ने संसदीय संस्थाओं को हमेशा अधिकतम महत्व दिया है। पिछले कुछ समय से, इस क्षेत्र में देश की बहुमूल्य विरासत को वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए बचाने, उनका संग्रह करने और उनके संरक्षण के लिए सभी आवश्यक संसाधनों को प्रयोग में लाने के प्रयास किये जा रहे हैं। इस क्षेत्र में शुरुआत वर्ष 1976 में की गई जब लोक सभा सचिवालय ने संसदीय संस्था के, इसके क्रियाकलापों के और इसकी महान विभूतियों के इतिहास का प्रामाणिक, विस्तृत, पूर्ण एवं अद्यतन चित्रीय रिकार्ड सुरक्षित रखने के लिए फोटो तथा फिल्मों का संसदीय अभिलेखागार स्थापित किया। संसदीय संग्रहालय तथा अभिलेखागार स्थापित करने के प्रस्ताव का लोक सभा की सामान्य प्रयोजन समिति ने पहली अगस्त, 1984 को अनुमोदन किया।

संसदीय संग्रहालय तथा अभिलेखागार का मूल उद्देश्य यह है कि संविधान तथा संसद से संबंधित वर्तमान काल के और भूतकाल के सभी बहुमूल्य अभिलेखों, ऐतिहासिक दस्तावेजों एवं वस्तुओं को, भावी पीढ़ियों के लिए, समय के साथ साथ और उपेक्षा के कारण नष्ट होने से बचाया जाये ताकि उनसे लोग संसदीय संस्थाओं तथा राजनीतिक प्रणाली के इतिहास और विकास को बेहतर समझ सकें। इसके विकास के वर्तमान चरण में, यह उपरोक्त विस्तृत दस्तावेज, वस्तुएं आदि प्राप्त करने, जो सामग्री इसके पास उपलब्ध है उसका समुचित परिरक्षण करने और चयनित सामग्री को प्रदर्शनार्थ रखने की ओर ध्यान दे रहा है। यथासमय, इसका विचार संसदीय संस्थाओं के विषय में जानकारी का प्रसार करने के उद्देश्य से और संसद के विकास में, इनके क्रियाकलापों में और इसकी उपलब्धियों में रुचि पैदा करके संसद की समुचित छवि बनाने और इसके प्रति सम्मान को बढ़ावा देने के लिए अन्य कार्य करने का है।[4]

राष्ट्रीय उपलब्धियों का केंद्र (हाल आफ नेशनल एचीवमेंट्स)

लोक सभा की सामान्य प्रयोजन समिति ने पहली अगस्त, 1984 को राष्ट्रीय उपलब्धियों का

केंद्र (हाल आफ नेशनल एचीवमेंट्स) स्थापित करने के लिए एक प्रस्ताव का अनुमोदन किया जिसका उद्देश्य विशेष रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र द्वारा विविध क्षेत्रों में की गई प्रगति की संपूर्ण तस्वीर पेश करना है। प्रदर्शनियों, माडलों, फोटो और अन्य दृश्य सामग्रियों के द्वारा भारत की उपलिब्धयों का एक विशाल दृश्य पेश करने का प्रस्ताव है। इस केंद्र का मूल उद्देश्य यह है कि दिल्ली आने वाले विदेशी संसदीय प्रतिनिधियों के सदस्यों के समक्ष तथा यहां आने वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों, छात्रों, पर्यटकों और अन्य लोगों के समक्ष श्रव्य-दृश्य साधनों के द्वारा देश की पूर्ण एवं प्रभावशाली तस्वीर पेश की जाये।

संसदीय अधिकारियों की भूमिका

नवीनतम प्रौद्योगिकीय आविष्कारों और सरकारी कार्य के बढ़ते हुए क्षेत्र एवं जटिलताओं के साथ साथ हमारी संसद के सदनों के सचिवालयों में कार्य करने के लिए अधिक योग्य एवं उपयुक्त प्रशिक्षण प्राप्त व्यावसायिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों की आवश्यकता की ओर हाल के वर्षो में कुछ ध्यान दिया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रत्येक विधानमंडल के लिए पर्याप्त एवं कुशल अधिकारी एवं कर्मचारी आवश्यक होते हैं।

विधानमंडल के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के दायित्वों को देखते हुए यह आवश्यक है कि उनमें उच्च कोटि की योग्यता एवं तत्परता हो, कुशलता एवं विशेषज्ञता हो और विविध अनुभव हों और इन सब बातों के साथ साथ मितव्ययता का गुण भी हो। संसद के दोनों सदनों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को चूंकि संसद सदस्यों की सेवा करनी होती है अतः वे उच्च प्रतिभा रखने वाले, पूर्णतया सत्यनिष्ठ, अपेक्षित योग्यताएं रखने वाले और प्रशिक्षण प्राप्त होने चाहिए। उन्हें अपने महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के लिए पूरी योग्यता, होशियारी और अनुभव से काम लेना होता है।

संसद के सचिवालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का परम उद्देश्य सदस्यों की सहायता करना है जिससे कि वे विधायकों के रूप में यथासंभव अधिक से अधिक प्रभावी और कुशल ढंग से अपने कृत्यों का निर्वहन कर सकें। एक संसदीय अधिकारी का सब से बड़ा कर्तव्य यह है कि वह सदन की सेवा और सहायता करे और सभी मामलों में निष्पक्ष एवं न्यायोचित दृष्टिकोण अपनाये। उसे यह निश्चित कर लेना चाहिए कि अध्यक्ष को दी जाने वाली तथ्यात्मक जानकारी पूर्णतया सही हो, और किसी मामले से संबंधित सभी संगत विनिर्णय एवं पूर्वोधारण पीठासीन अधिकारी के समक्ष रखे जायें ताकि उसे सही फैसले करने में सुविधा हो। जहां तक सदस्यों का परामर्श देने का प्रश्न है, संसदीय अधिकारियों से यह अपेक्षित नहीं है कि वे अकारण ही कोई परामर्श दें। जब संसदीय अधिकारी से विशेष रूप से कहा जाय कि वह संसदीय कार्य से संबंधित किसी मामले पर परामर्श दे तभी उसे तथ्यात्मक जानकारी सदस्यों को उपलब्ध करनी चाहिए और उस पर अपनी राय नहीं देनी चाहिए।

संसदीय अधिकारियों को इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि सदस्य की विचारधारा क्या है या वह किस राजनीतिक दल से संबंध रखता है। सदस्य का दल कोई भी हो, योग्यताएं कुछ भी हों और जीवन में दर्जा कुछ भी हो, संसदीय अधिकारी के लिए प्रत्येक सदस्य लोगों का सम्माननीय प्रतिनिधि है जिसके साथ उसे आदर से और धैर्य से पेश आना है। सदन के सेवक के नाते, संसदीय अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह सभी सदस्यों से समान रूप से पेश आये। यह सदा स्मरण रखते हुए कि सभी सदस्य उससे समान एवं निष्पक्ष सहायता पाने के अधिकारी हैं, उसे प्रत्येक सदस्य की, जो अपने संसदीय कर्तव्यों के सिलसिले में उससे सहायता मांगे, कुशल ढंग से सेवा करनी होती है।

अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए अधिकारी को अपने कार्यक्षेत्र में विशेष ज्ञान प्राप्त होना आवश्यक है। उसे संगत नियमों एवं प्रथाओं का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है और प्रक्रियाओं की जटिलताओं एवं बारीकियों की भी पूरी जानकारी होना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि वह सभी महत्वपूर्ण मामलों और नाजुक समस्याओं से अवगत रहे ताकि ऐसा न हो कि अकस्मात ही कोई स्थिति आ जाये जिसके लिए वह तैयार न हो, जैसाकि प्रायः होता है। यदि कोई स्थिति या कोई कठिन समस्या अचानक ही सामने आ जाये तो उसे इस योग्य होना चाहिए कि वह तुरंत और कुशलता से उससे निबट सके। इस प्रकार, काम निबटाने में तत्परता और त्रुटिहीनता संसदीय अधिकारी के कार्यचालन के मुख्य तत्व हैं।[5]

यह आवश्यक है कि संसदीय अधिकारियों और कर्मचारियों में संसदीय कार्यव्यवहार के सिद्धांतों की जानकारी हो और उनमें खोजी एवं जिज्ञासु भाव पैदा किया जाये। संक्षेप में कुछ मार्गदर्शी सिद्धांत इस प्रकार हैं :

(1) संसद की संस्था और लोगों के प्रतिनिधियों के प्रति सम्मान;
(2) सदस्यों की सेवा के प्रति अटूट प्रतिबद्धता, चाहे वे किसी भी दल के हों;
(3) सदस्यों और अन्य लोगों के साथ व्यवहार में समर्पण, शिष्टता, आत्म-नियंत्रण, धैर्य, शांत भाव और सहिष्णुता;
(4) सुस्पष्टता और त्रुटिहीनता और अध्यक्ष के समक्ष पूर्ण तथ्य रखने और निष्पक्ष परामर्श देने की आदत;
(5) फैसले करने में और काम निबटाने में तत्परता अर्थात काम करने की ऐसी पद्धति जिसमें कोई काम कल पर न छोड़ा जाये;
(6) सजगता, चेहरे पर मुस्कान और किसी की बात सुनने का धैर्य;
(7) दलगतरहित, निष्पक्ष दृष्टिकोण—एक संसदीय अधिकारी को सभी क्रियाकलापों में भाग लेते हुए भी निर्लेप होना चाहिए; और
(8) ऐसे समाधान ढूंढ़ने की योग्यता जो केवल सैद्धांतिक रूप से ही सही न हों बल्कि व्यावहारिक भी हों।

संसद के सचिवालय गतिशील और विकासशील संस्थाएं हैं जिनके लिए अपेक्षित है कि वे सांसदों की बढ़ती हुई एवं परिवर्तनशील आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निरंतर ध्यान देते रहें। सचिवालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों को सदा सतर्क रहना पड़ता है और बराबर सोचते रहना होता है कि सदस्यों तथा संसदीय संस्थाओं की सेवा करने के तरीकों में क्या सुधार लाये जाने चाहिए। संसदीय संस्थाओं की सेवा में सुधार की गुंजाइश सदा रहती है। भारत की संसद उत्तम कार्य निष्पादन के लिए गर्व का अनुभव कर सकती है और इसका श्रेय प्रशिक्षण की प्रक्रियाओं और सुविधाओं को जाता है। वह यह भी आशा रखती है कि आने वाले वर्षों की उपलब्धियां इससे भी बेहतर होंगी।[6]

संदर्भ

1. केंद्रीय विधान सभा के अध्यक्ष को उस समय "प्रेजीडेंट" कहा जाता था।
2. विस्तृत चर्चा के लिए *देखिए* राष्ट्रमंडल संसदों के क्लार्क्स-एट-द-टेबल की सोसाइटी की अक्तूबर, 1985 में ससकॉटून, कनाडा, में हुई बैठक में **रिक्रूटमेंट एंड ट्रेनिंग आफ पार्लियामेंटरी स्टाफ** विषय पर डा. सुभाष काश्यप द्वारा प्रस्तुत किया गया मुख्य पत्र। वह **द पार्लियामेंटरी,** 67, संख्या 3 जुलाई, 1986 में पृ. 134-36 पर भी प्रकाशित हुआ।
3. चौथे वेतन आयोग द्वारा जून, 1986 में प्रतिवेदन पेश किए जाने के उपरांत एक ऐसी ही समिति नियुक्त की गई। समिति से इस बारे में परामर्श देने के लिए कहा गया कि चौथे वेतन आयोग की सिफारिशों पर सरकार के फैसलों के संदर्भ में राज्य सभा सचिवालयों के सभी श्रेणियों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के वेतन तथा भत्तों, अवकाश एवं पेंशन लाभों के ढांचे में क्या परिवर्तन करना वांछनीय है।
4. सुभाष काश्यप, **पार्लियामेंटरी म्यूजियम एंड आरकाईव्ज**, दिल्ली, 1985
5. *देखिए* काश्यप, **रिक्रूमेंट एंड ट्रेनिंग आफ पार्लियामेंटरी स्टाफ**, ऊपर उद्धृत
6. वही

13

शिष्टाचार और आचरण संहिता

प्रत्येक नए सदन का अपना स्वरूप होता है, परंतु शिष्टाचार के कुछ ऐसे नियम और प्रथाएं हैं जो प्रत्येक सदन के लिए समान होती हैं। विधानमंडल एक क्लब मात्र नहीं होता। अतः उसके सदस्यों के आचरण में उच्च स्तर की गरिमा, शालीनता, परस्पर सम्मान की भावना और भद्रता के गुण होने चाहिए जो उस स्थान के अनुकूल हों जहां राजनीतिक व्यवस्था की स्पर्धी शक्तियां संगठित हो कर पारस्परिक प्रभाव के लिए आमने सामने आती हैं। सदन में कार्य व्यवस्थित ढंग से, निर्बाध रूप से और कुशलतापूर्वक निबटाया जाये और विविध विचारधाराओं को महत्व मिले, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज के सर्वोच्च विचार विमर्शी मंच के वातावरण का गंभीर एवं गरिमापूर्ण होना अनिवार्य है। सदन से बाहर भी सदस्यों से आशा की जाती है कि वे अपने पद की गरिमा के अनुकूल आचरण का स्तर बनाये रखेंगे।

संसद के दिन-प्रतिदिन के कार्यकरण में सदस्यों द्वारा निजी व्यवहार में शिष्टाचार संबंधी कुछ नियमों का पालन करना केवल इसलिए बहुत महत्वपूर्ण नहीं होता कि सदन का कार्य निर्बाध रूप से और शिष्टता से चलता रहे बल्कि इसलिए भी कि संसद और इसके सदस्यों की गरिमा बनी रहे। ये नियम दोनों सदनों के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों पर आधारित हैं और प्रथाओं तथा पीठासीन अधिकारियों द्वारा समय समय पर दिये गये विनिर्णयों से धीरे धीरे इनका विकास हुआ है।[1]

सदन में व्यवहार

जब बैठक आरंभ होती है : जब सदन का अधिवेशन चल रहा हो तो सदन के प्रति सदस्यों के व्यवहार का पहला नियम, जिसका उन्हें पालन करना चाहिए, यह है कि बैठक प्रारंभ होने के लिए जो समय निर्धारित हो उससे और मध्याह्न भोजन के पश्चात उसके पुनः समवेत होने के समय से कुछ मिनट पूर्व वे अपने स्थान ग्रहण कर लें। उसके उपरांत जब मार्शल अध्यक्ष के आगमन की घोषणा करता है और अध्यक्ष लोक सभा चैंबर में प्रवेश करता है तो सदस्यों को आपस में बातचीत बंद कर देनी चाहिए और अपने अपने स्थानों पर खड़े हो जाना चाहिए और अध्यक्ष स्वयं जब सदन के दोनों ओर नमन करता है तो सदस्यों

को भी अध्यक्ष पीठ के समक्ष नमन करना चाहिए, जो सदस्य उसी समय सदन में प्रवेश करें, उन्हें तब तक मार्ग में खामोशी से खड़े रहना चाहिए जब तक कि अध्यक्ष अपना स्थान ग्रहण न कर ले। ऐसा सदन के प्रति और अध्यक्ष-पीठ के प्रति सम्मानस्वरूप किया जाता है।

जब सदन की बैठक आरंभ हो जाये तो प्रत्येक सदस्य को मर्यादा से और ऐसे ढंग से लोक सभा चैंबर में प्रवेश करना और वहां से प्रस्थान करना चाहिए कि उससे सदन की कार्यवाही में बाधा न आये। लोक सभा चैम्बर में प्रवेश करते समय, वहां से प्रस्थान करते समय और अपना स्थान ग्रहण करते समय और उसे छोड़ते समय सदस्य को अध्यक्ष-पीठ के समक्ष नमन करना चाहिए।[2] यह सम्मान समूचे सदन के प्रति होता है न कि अध्यक्ष-पीठ पर आसीन व्यक्ति के प्रति। सदन से बाहर सभी निकायों एवं प्राधिकारियों के लिए अध्यक्ष सदन का प्रतिनिधित्व करता है। सदन के सामूहिक स्वरूप के प्रतीक के रूप में अध्यक्ष-पीठ के प्राधिकार का सम्मान करना संसदीय आचरण का मूल सिद्धांत है।

बोलते समय आचरण : एक प्रमुख सिद्धांत यह है कि एक समय में केवल एक सदस्य को बोलना चाहिए या प्रश्न पूछने चाहिए और पीठासीन अधिकारी को यह अधिकार है कि वह सदस्यों को एक एक करके बोलने के लिए पुकार सकता है। जब कोई सदस्य बोलना चाहे तो उसे पीठासीन अधिकारी का ध्यान आकर्षित करने के लिए अपने स्थान पर खड़े हो जाना चाहिए। पीठासीन अधिकारी का ध्यान आकर्षित करने के लिए हाथ हिलाना साधारण संसदीय प्रथा नहीं मानी जाती। किसी भी सदस्य को तब तक नहीं बोलना चाहिए जब तक वह पीठासीन अधिकारी का ध्यान आकर्षित नहीं कर लेता और पीठासीन अधिकारी उसे बोलने के लिए नहीं कहता। और, जब खड़े हुए सदस्यों में किसी एक को अध्यक्ष बोलने की अनुमति दे दे तो अन्य सबको तुरंत बैठ जाना चाहिए।[3]

किसी सदस्य को बोलने के अपने अधिकार का प्रयोग सदन के कार्य में बाधा डालने के लिए नहीं करना चाहिए। सदस्यों द्वारा आपस में तर्क-वितर्क करने या किसी अन्य सदस्य के भाषण पर या मंत्री के वक्तव्य पर बराबर टिप्पणियां करते रहने की अध्यक्ष द्वारा निंदा की गई है। जब कोई सदस्य सदन में बोल रहा हो और कोई अन्य सदस्य वाद विवाद के दौरान पीठासीन अधिकारी की अनुमति से औचित्य का प्रश्न उठाने के लिए या वैयक्तिक स्पष्टीकरण के लिए खड़ा हो जाये तो भाषण करने वाले सदस्य को अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए।

यदि कोई सदस्य सदन के समक्ष किसी मामले पर टिप्पणी करना चाहता हो या भाषण दे रहे किसी अन्य सदस्य से, सदन के विचाराधीन किसी मामले के बारे में, स्पष्टीकरण के लिए या किसी व्याख्या के प्रयोजन से, प्रश्न पूछना चाहता हो तो उसे पीठासीन अधिकारी के माध्यम से प्रश्न पूछना चाहिए। सदस्य को अपने नियत स्थान से और खड़े होकर बोलना चाहिए। परंतु यदि कोई सदस्य रोग या दुर्बलता के कारण असमर्थ हो तो उसे अध्यक्ष द्वारा बैठकर बोलने की अनुमति दी जाती है।[4]

किसी सदस्य को बोलते समय सदन के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से संबोधित न करके सदा पीठासीन अधिकारी को संबोधित करना चाहिए और पीठासीन अधिकारी के माध्यम से ही अन्य सदस्यों से कुछ कहना चाहिए।[5] यह सिद्धांत मात्र एक औपचारिकता प्रतीत हो सकती है परंतु इसका सख्ती से पालन किया जाता है ताकि वाद विवाद सदस्यों के बीच वार्तालाप का रूप न ले ले। यह निर्णय दिया गया है कि सदस्य एक दूसरे को ऐसे संबोधित करें जैसाकि वे किसी तीसरे व्यक्ति की बात कर रहे हों। इसी प्रकार मंत्रियों का उल्लेख उनके नामों से न करके सरकारी पदनामों से किया जाना होता है।

यदि पीठासीन अधिकारी ऐसा महसूस करे कि कोई सदस्य निरंतर असंगत बातें कह रहा है या अपने तर्कों को अथवा उससे पहले बोल चुके किसी सदस्य द्वारा दिये गये तर्कों को अनुचित ढंग से दोहराता जा रहा है तो वह सदस्य को अपना भाषण वहीं समाप्त करने के लिए निर्देश दे सकता है।[6] सदस्यों को अपने तर्क दोहराने नहीं चाहिए, सिवाय उस स्थिति के जबकि किसी बात पर जोर देने के लिए ऐसा करना नितांत आवश्यक हो। यदि कोई सदस्य पीठासीन अधिकारी के कहने की परवाह न करते हुए भाषण जारी रखता है तो वह निर्देश दे सकता है कि उस सदस्य के कथन कार्यवाही-वृत्तांत में सम्मिलित नहीं किये जाएंगे।

सदस्य अपने भाषणों में न्यायालयों के विचाराधीन किन्हीं मामलों का उल्लेख नहीं कर सकते। परंतु यह नियम विशेषाधिकार के मामलों पर, या जहां सदन के अपने सदस्यों के संबंध में सदन के अनुशासनात्मक अधिकार क्षेत्र का प्रश्न हो वहां लागू नहीं होता। ऐसे मामलों में, पीठासीन अधिकारी और सदन द्वारा प्रत्येक मामले पर उसके गुणावगुणों के आधार पर विचार किया जाता है।

किसी भी सदस्य से यह आशा नहीं की जाती है कि वह संसद के दोनों सदनों में किसी भी सदन के आचरण या उसकी कार्यवाही के बारे में या किसी राज्य के विधानमंडल के आचरण या उसकी कार्यवाही के बारे में आपत्तिजनक पदावलियों का प्रयोग करे। सदस्य सदन के किसी फैसले पर, ऐसे फैसले को रद्द करने के किसी प्रस्ताव को छोड़कर, आक्षेप नहीं कर सकते।[7] किसी सदस्य को किसी अन्य सदस्य या मंत्री के विरुद्ध मानहानिकारक या अपराधारोपक स्वरूप का लांछन लगाने की दृष्टि से उसका वैयक्तिक रूप से उल्लेख नहीं करना चाहिए या उसकी सद्भावना पर आपत्ति नहीं करनी चाहिए। सदस्यों को सरकारी अधिकारियों का नाम लेकर उनका उल्लेख नहीं करना चाहिए क्योंकि वे अपनी रक्षा में कुछ कहने के लिए वहां उपस्थित नहीं होते। सदस्यों को उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों पर आरोप नहीं लगाने चाहिए या उन पर आक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि चर्चा उचित रूप से रखे गये मूल प्रस्ताव पर आधारित न हो।[8]

सदस्यों को संसदीय भाषा का प्रयोग करना चाहिए और जो शब्द और पदावलियां वे प्रयोग करें वे देशद्रोहात्मक, राजद्रोहात्मक या मानहानिकारक कदापि नहीं होनी चाहिए। यद्यपि सरकार की आलोचना करने पर कोई रोक नहीं है, फिर भी सदस्यों को इस

अधिकार का प्रयोग सदन के कार्य में रुकावट डालने के लिए नहीं करना चाहिए।

सदस्यों को आपत्तिजनक या अध्यक्ष-पीठ पर लांछन लगाने वाली पदावलियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। औचित्य, शिष्टता या शालीनता की मांग है कि सदस्य बोलते समय व्यंग्यपूर्ण, अपमानजनक या अनुचित शब्दों या पदावलियों का प्रयोग न करें। यदि कोई शब्द और वाक्यांश मानहानिकारक, अशिष्ट, असंसदीय या अभद्र हों तो पीठासीन अधिकारी उन्हें वृत्तांत से निकालने के आदेश दे सकता है।

कोई भी सदस्य सदन में, अपने प्रथम भाषण के सिवाय, अन्यथा लिखा हुआ भाषण नहीं पढ़ सकता यद्यपि वह अपनी लिखी हुई टिप्पणियां देखकर अपनी याद ताजा कर सकता है। इसके अतिरिक्त, जब सदस्य को आंकड़े अथवा उद्धरण पेश करने हों तो वह अपनी टिप्पणियों से पढ़ सकता है। लिखित भाषणों के विरुद्ध इस नियम का उद्देश्य यह है कि वाद विवाद का रुचिकर रूप बना रहे। वाद विवाद ऐसी चर्चा होती है जिससे विचारों का विचारों से और तर्कों का तर्कों से संघर्ष होता है। पहले से तैयार किये गये निश्चित भाषणों का उन बातों से संबंध नहीं होता जो सदन में पहले कही गई हों। यदि हम चाहते हैं कि वाद विवाद सजीव हो जिसमें बातों को दोहराया न जाय और तर्क केवल विचाराधीन मुद्दों तक ही सीमित रहें तो यह आवश्यक हो जाता है कि लिखित भाषणों पर रोक लगे। परंतु यह बात मंत्रियों पर लागू नहीं होती जो लिखित पाठ से नीति संबंधी वक्तव्य पढ़ सकते हैं और, जब आवश्यक समझें, तैयार किये गये भाषण भी पढ़ सकते हैं।

जब कोई सदस्य बोल रहा हो : वाद-विवाद प्रभावपूर्ण हो इसके लिए भाषण सुनने वालों का आचरण उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि भाषण करने वालों का और इसलिए इस बारे में भी नियम हैं।

विरोधी दृष्टिकोण के प्रति सहनशील होना संसदीय शिष्टाचार का आधार है। सदन ऐसे विषयों पर चर्चा करता है जो आमतौर पर जटिल और कभी कभी विवादास्पद होते हैं। ऐसा न तो स्वाभाविक ही होगा और न वांछनीय कि उन पर असहमति न हो। अतः यह आवश्यक है कि विचार-विमर्श परस्पर आदान प्रदान की भावना से प्रेरित हों। जब कोई सदस्य बोल रहा हो तो किसी अन्य सदस्य को अव्यवस्थित ढंग से उसमें अंतर्बाधा नहीं डालनी चाहिए। हाजिरजवाबी वाली या अन्यथा संगत टिप्पणियों का प्रायः बुरा नहीं माना जाता। किसी बात को स्पष्ट करने या अध्यक्ष के माध्यम से जानकारी लेने, किसी भाषण को समझने या किसी वक्तव्य को मीठे ढंग से चुनौती देने की कभी कभी होने वाली अंतर्बाधाएं तो ठीक हैं परंतु बार बार की जाने वाली अंतर्बाधाओं से बोलने वाले सदस्य के तर्क की श्रृंखला टूट जाती है और उनसे कार्यवाही में अव्यवस्था आ जाती है। इसके अतिरिक्त, बार बार प्रश्न पूछ कर अंतर्बाधाएं करना संसदीय प्रथा नहीं है और ऐसी अंतर्बाधाओं की अध्यक्ष-पीठ द्वारा निंदा की गई है। निरंतर अंतर्बाधाएं कार्यवाही में बिगाड़ पैदा करती हैं और संपूर्ण सदन की गरिमा समाप्त करती हैं। यदि बोलने वाला

सदस्य पसंद नहीं करता तो उसके भाषण में बाधा नहीं डालनी चाहिए। उसके भाषण के बारे में कोई भी मुद्दा उसके भाषण समाप्त करने के पश्चात उठाया जा सकता है। सदस्यों को लोक सभा चैंबर में साधारणतया एक-दूसरे से बातें नहीं करनी चाहिए, परंतु यदि ऐसा आवश्यक हो जाये तो बहुत धीमी आवाज से ऐसा कर सकते हैं जिससे कि सदन की कार्यवाही में बाधा न हो।[10] किसी सदस्य को कोई ऐसी पुस्तक, समाचारपत्र या पत्र नहीं पढ़ना चाहिए जिसका सदन की कार्यवाही से संबंध न हो या जो सदन की कार्यवाही के लिए आवश्यक न हो।[11] किसी सदस्य को अध्यक्ष-पीठ की ओर पीठ करके न तो खड़ा होना चाहिए न बैठना चाहिए। किसी सदस्य को अध्यक्ष-पीठ और ऐसे सदस्य के बीच में, जो भाषण दे रहा हो, नहीं गुजरना चाहिए। इस नियम को भंग करने पर अध्यक्ष-पीठ द्वारा कड़ी आपत्ति की जाती है।[12]

हर समय केवल अपनी ही आवाज सुनते रहने का आकर्षण बड़ा प्रबल होता है परंतु एक अच्छा सांसद दूसरों की आवाज भी अवश्य सुनता है और जब स्वयं न बोल रहा हो तो उसे सदन में चुप बैठे रहना चाहिए।

दर्शक और गैलरियां : दर्शक गैलरी में बैठे अजनबियों का सदन में उल्लेख करना नियम-विरुद्ध ठहराया गया है। परंतु, समुचित मामलों में, अध्यक्ष-पीठ द्वारा सदन के विशेष बाक्स में विशिष्ट विदेशी मेहमान दर्शकों की उपस्थिति का उल्लेख किया जा सकता है और ऐसे अवसरों पर सदस्य अपनी मेज थपथपाकर उन विशिष्ट मेहमानों का अभिवादन कर सकते हैं। परंतु, साधारणतया, उस समय करतल ध्वनि नहीं करनी चाहिए जब कोई विशिष्ट मेहमान किसी गैलरी में या विशेष बाक्स में प्रवेश करता है। सदन में किसी सदस्य को प्रेस में अपने प्रचार की दृष्टि से नहीं बोलना चाहिए और न ही इसी दृष्टि से किसी बात का उल्लेख या अपील करनी चाहिए।[13]

सदन में सामान्य आचरण : संसद के परिसरों में भूख हड़ताल करने, धरना देने, या किसी प्रकार का प्रदर्शन करने या कोई धार्मिक कार्य करने की अनुमति नहीं है। इसके अतिरिक्त, संसदीय प्रथाओं के अनुसार सदस्य सदन में शस्त्र नहीं ला सकेंगे; कोट कंधे पर लटकाकर लोक सभा चैंबर में प्रवेश नहीं कर सकते; अपनी टोपियां, कोट, जैकेट, या शालें सदन में डेस्कों पर नहीं रख सकते; लोक सभा चैंबर में छड़ी नहीं ला सकते जब तक कि वृद्धावस्था होने या शारीरिक दुर्बलता जैसी विशेष परिस्थितियों में उन्हें साथ रखने की अनुमति न दी दी गई हो; लोकसभा चैंबर में धूम्रपान नहीं कर सकते, सदन में कोई नारे नहीं लगा सकते या उद्गार व्यक्त करने वाले विशेष शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकते; या इसी प्रकार का कोई ऐसा अन्य काम नहीं कर सकते; सदन में अपने स्थानों पर ध्वज या प्रतीक नहीं लगा सकते; सदन के अंदर टेप-रिकार्डर नहीं ला सकते या उसे चला नहीं सकते; मार्ग में खड़े होकर अन्य सदस्यों से बात नहीं कर सकते; वाद विवाद के दौरान कोई साक्ष्य वस्तु नहीं ला सकते या सदन में प्रदर्शन नहीं कर सकते; संसद भवन के परिसरों में कोई साहित्य, प्रश्नावली या इश्तिहार आदि वितरित नहीं कर सकते जब तक कि पहले से लिखित

में अनुमति न ले ली हो; और वाद विवाद के दौरान कोई हल्की फुल्की हरकत नहीं कर सकते या ऐसा मजाक नहीं कर सकते जिसमें कटाक्ष का तत्व हो। सदस्यों को स्वयं अध्यक्ष-पीठ के पास नहीं जाना चाहिए, यदि आवश्यक हो तो उन्हें पटल अधिकारियों के पास चिट भेजनी चाहिए। इसके अलावा, सदस्यों को भाषण करने के तुरंत पश्चात लोक सभा चैंबर से बाहर नहीं चले जाना चाहिए। ऐसा करना शिष्ट संसदीय आचरण नहीं है। प्रत्येक सदस्य को अपने भाषण पर अन्य सदस्यों की जो टिप्पणियां हों उन्हें भी सुनना चाहिए, विशेष रूप से, जब कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य की या मंत्री की आलोचना करता है तो उस सदस्य या मंत्री को यह आशा करने का अधिकार है कि आलोचक उसका उत्तर सुनने के लिए सदन में उपस्थित रहे। जब वह सदस्य या मंत्री आलोचक की बातों का उत्तर दे रहा हो तो उस समय आलोचक का सदन में न उपस्थित होना संसदीय शिष्टाचार का उल्लंघन है।

सदन की मर्यादा एवं गरिमा बनाये रखने के लिए सदस्यों से अपेक्षित है कि वे कोई छिछोरी बात न करें। महिला सदस्यों से आशा की जाती है कि वे सदन में बुनाई जैसे कोई काम न करें।

अध्यक्ष के खड़े होने पर प्रक्रिया : जब कभी अध्यक्ष सदन को संबोधित करने के लिए खड़ा होता है तो सदस्यों के लिए यह अनिवार्य है कि वह उसे शांतिपूर्वक सुनें और किसी भी सदस्य को जो उस समय बोल रहा हो या बोलने वाला हो, अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए।[14] यह सुमान्य संसदीय प्रथा है कि जैसे ही अध्यक्ष बोले के लिए खड़ा होता है या 'शांति', 'शांति' कहकर सदन को संबोधित करता है तो प्रत्येक सदस्य को अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए। जब अध्यक्ष सदन को संबोधित कर रहा हो तो सदस्यों को व्यवस्था का प्रश्न उठाने के लिए खड़ा नहीं होना चाहिए। जब अध्यक्ष खड़ा हो और सदन को संबोधित कर रहा हो तो किसी भी सदस्य को सदन में एक ओर से दूसरी ओर नहीं जाना चाहिए, खड़ा नहीं होना चाहिए, चलना नहीं चाहिए, लोक सभा चैंबर में प्रवेश नहीं करना चाहिए या लोक सभा चैंबर से प्रस्थान नहीं करना चाहिए।

किसी सदस्य का आर्थिक हित

जब किसी ऐसे मामले का फैसला सदन द्वारा किया जाना हो जिसमें किसी सदस्य का वैयक्तिक, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित है तो उस सदस्य से आशा की जाती है कि वह, उस मामले पर कार्यवाही में भाग लेते समय, अपने हित की घोषणा करे। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विचार विमर्शों में निष्पक्षता रहे और ऐसा न हो कि वैयक्तिक, आर्थिक या प्रत्यक्ष के आधार पर उस सदस्य के मत पर आपत्ति की जाय। इसी प्रकार समिति के किसी सदस्य का किसी ऐसे मामले में ऐसा हित हो जिस पर समिति को विचार करना हो तो उस सदस्य को उस मामले में अपने हित के बारे में अध्यक्ष को बताना चाहिए।[15]

मान्यताएं एवं प्रथाएं

सदस्यों द्वारा सदन में संसदीय शिष्टाचार के जिन नियमों का पालन करना होता है उनके अतिरिक्त बहुत-सी मान्यताएं एवं प्रथाएं हैं जो संसदीय जीवन में उचित स्तर बनाए रखने और सदन तथा इसके सदस्यों की गरिमा बनाए रखने के लिए समान महत्व रखती हैं। अतः संसद सदस्यों से आशा की जाती है कि वे सदन के अंदर ही नहीं सदन के बाहर भी आचरण का एक स्तर बनाए रखेंगे।[16] सदस्यों का आचरण प्रथा के प्रतिकूल या सदन की गरिमा के लिए अपमानजनक या किसी भी तरह उस स्तर के विपरीत नहीं होना चाहिए जिसकी संसद अपने सदस्यों से आशा रखती है।

"एक सदस्य का आचरण" शब्दों के व्यापक अर्थों की पूरी व्याख्या नहीं की गई है और प्रत्येक मामले में यह निर्धारण करना सदन के अधिकार क्षेत्र में है कि क्या किसी सदस्य का व्यवहार अनुचित रहा है या ऐसा व्यवहार रहा है जो संसद के सदस्य के लायक नहीं। अतः यद्यपि किसी विशेष मामले में ये तथ्य 'विशेषाधिकार भंग के या सदन की अवमानना के' किसी मान्य शीर्षक के अंतर्गत न भी आयें तो भी सदन किसी सदस्य के आचरण को अनुचित और सदन की गरिमा के लिए अपमानजनक मान सकता है।

सदन को अपने सदस्यों के सदाचार के लिए उन्हें दंड देने का अधिकार होता है सदन अपने सदस्यों के आचरण की, चाहे वह आचरण सदन के भीतर हो या बाहर, छानबीन करने के अपने अधिकार का प्रयोग करता है। सदन को अपने सदस्यों के अव्यवस्थित आचरण के लिए और अन्य अवमाननाओं के लिए, चाहे वे सदन के भीतर की गई हों या सदन की चारदीवारी से बाहर, उन्हें दंड देने की शक्ति भी प्राप्त है।

कुछ अधिक महत्वपूर्ण मान्यताएं एवं प्रथाएं इस प्रकार हैं :[17]

(1) अध्यक्ष-पीठ द्वारा दिये गये विनिर्णयों की, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, सदन के भीतर या बाहर, आलोचना नहीं की जानी चाहिए। सदन की कार्यवाही का संचालन करने का प्राधिकार अध्यक्ष-पीठ को चूंकि सदन द्वारा स्वयं प्रदान किया गया है, अतः सदन के नियमों एवं प्रथाओं की अध्यक्ष-पीठ द्वारा की जाने वाली व्याख्या को मानना होता है, चाहे कोई सदस्य उससे कितना ही असंतुष्ट क्यों न हो या वह व्याख्या किसी सदस्य की व्यक्तिगत अभिरुचि के कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हों।

(2) अध्यक्ष के कक्ष में उसके साथ हुई किसी सदस्य की चर्चाओं का उस सदस्य द्वारा प्रेस में प्रचार नहीं किया जाना चाहिए।

(3) किसी सूचना का तब तक प्रचार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि अध्यक्ष उसे गृहीत न कर ले और उसे सदस्यों को परिचालित न कर दिया जाय। किसी प्रश्न की सूचना का उस दिन तक कोई प्रचार नहीं किया जाना चाहिए जिस दिन सदन में प्रश्न का उत्तर दिया जाये।

(4) सदस्यों को विश्वास में लेकर दी गई या संसदीय समिति के सदस्य होने के नाते उन्हें दी गई जानकारी किसी को प्रकट नहीं की जानी चाहिए या उन सदस्यों द्वारा, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, अपने व्यवयाय में, जैसे संपादकों के रूप में या समाचारपत्रों के संवाददाताओं के रूप में या व्यापार फर्मों के मालिकों के रूप में उसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

(5) सदस्यों को अपने निर्वाचकों की ओर से किन्हीं अपर्याप्त या निराधार तथ्यों के आधार पर या तथ्यों की सच्चाई का पता लगाये बिना कोई कार्यवाही नहीं करनी चाहिए और न ही उन्हें किसी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायतों के समर्थक के रूप में अपना प्रयोग करने देना चाहिए। साधारणतया, विधायक को अपने निर्वाचकों की शिकायतों के बारे में पहले संबंधित मंत्री को लिखना चाहिए या उससे बात करनी चाहिए। यदि किसी शिकायत का स्वरूप सामान्य प्रकार का हो तो वह प्रश्नकाल में या किसी अन्य तरीके से सदन में उठा सकता है। परंतु, व्यक्तिगत मामले सदन के समक्ष नहीं लाये जा सकते। यदि विधायक सोचता है कि मामला न्यायोचित और वैध है परंतु साधारण तरीके से न्याय मिलने में विलंब हो जायेगा तो वह संबंधित अधिकारी या कर्मचारी से मिलकर मामला उसके ध्यान में ला सकता है, परंतु ऐसा मर्यादापूर्वक और ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए कि उसमें दबाव डालने या अनुचित प्रभाव का प्रयोग करने की बात न हो।

(6) सदस्यों को ऐसे प्रमाणपत्र नहीं देने चाहिए जो तथ्यों पर आधारित न हों, सरकार द्वारा उनको आवंटित रिहायशी स्थानों को आगे किराये पर देकर लाभ नहीं अर्जित करना चाहिए, या ऐसे मामलों में सरकारी अधिकारियों या मंत्रियों पर अनुचित प्रभाव नहीं डालना चाहिए जिनमें उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष वित्तीय हित हो।

(7) कोई सदस्य जिस व्यक्ति या संगठन की ओर से कोई काम करने का इच्छुक हो उससे उस काम के बदले में किसी भी प्रकार का आतिथ्य प्राप्त नहीं करना चाहिए।

(8) किसी सदस्य को अपने किसी संबंधी के लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए जिसमें वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हित रखता हो, नौकरी दिलाने के लिए या किसी काम के ठेके दिलाने के लिए सरकारी अधिकारियों को सिफारिशी पत्र नहीं लिखने चाहिए या अन्यथा उनसे नहीं कहना चाहिए।

(9) किसी सदस्य को किसी सरकारी कर्मचारी को प्रलोभन देकर उससे कोई ऐसी सरकारी जानकारी अनधिकृत रूप से प्राप्त नहीं करनी चाहिए जो अन्यथा उस कर्मचारी को अपने साधारण कृत्यों का पालन करते हुए नहीं देनी चाहिए, और न ही ऐसे व्यक्ति को सार्वजनिक महत्व के मामलों पर

और नीति पर अपने वरिष्ठ अधिकारियों के विरुद्ध कुछ कहने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए।

(10) किसी सदस्य को किसी ऐसे मामले में जिसमें कि वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वित्तीय हित रखता हो, सरकारी अधिकारियों या मंत्रियों पर अनुचित प्रभाव नहीं डालना चाहिए।

(11) किसी सदस्य को किसी ऐसी फर्म, कंपनी या संगठन के लिए जिसके साथ उसका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संबंध हो, सरकार से कारोबार प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

(12) किसी सदस्य को वकील के रूप में या कानूनी सलाहकार के रूप में या न्यायाभिकर्ता के रूप में किसी मंत्री के समक्ष या किसी ऐसे कार्यपालिका अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं होना चाहिए जो अर्द्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो।

(13) सदस्य के रूप में अपने पद का कार्य-निष्पादन करते हुए भ्रष्टाचार में लिप्त होने का उसका आचरण सदन द्वारा विशेषाधिकार भंग माना जाता है। अतः सदन में अथवा किसी समिति में प्रस्तुत किए गए अथवा प्रस्तुत किए जाने वाले किसी विधेयक, संकल्प अथवा मामले के पक्ष में बोलने अथवा उसका विरोध करने के लिए लिया गया कोई शुल्क, प्रतिकर अथवा प्रतिफल विशेषाधिकार भंग माना जाता है। यदि कोई सदस्य किसी व्यक्ति से उसके किन्हीं दावों की सदन में वकालत करने के लिए प्रतिफल प्राप्त करने हेतु कोई समझौता करता है तो यह भी उस सदस्य का कदाचार अथवा उसके द्वारा विशेषाधिकार का भंग किया जाना माना जाता है।

दुर्भाग्यवश, पिछले कुछ समय से सदन के अंदर तथा बाहर दोनों जगह सदस्यों के आचरण तथा शिष्टाचार के स्तर में ह्रास होने की भावना जोर पकड़ती जा रही है। जब आये दिन, मछली बाजार के से दृश्यों के बाद तथा बिना कोई कार्य किये सदनों को स्थगित कर दिया जाये तब सोचना पड़ता है कि क्या ये संस्थाएं सरकारी खजाने से उन पर इतना ज्यादा व्यय किये जाने के बावजूद कहीं निस्सार और निरर्थक तो नहीं होती जा रहीं। यह भी देखने में आया है कि हमारे निर्वाचित प्रतिनिधियों में से बहुत से प्रतिनिधि जनता के साथ अपने व्यक्तिगत आचरण, संबंध और व्यवहार में आचार-संहिता के आधारभूत प्रतिमानों का पालन नहीं करते। किसी लोकतंत्र में प्रतिनिधियों के सम्मान में ह्रास से बड़ी अफसोस तथा चिंता की बात और क्या हो सकती है ?

संदर्भ

1. सुभाष काश्यप, **मिनिस्टर्ज एंड लेजिस्लेचर्ज**, मेट्रोपोलिटन, नयी दिल्ली-1982, पृ. 44-50
2. नियम 349 (तीन)
3. नियम 350; निर्देश 115 क (2)
4. नियम 351
5. नियम 349 (छह)
6. नियम 356
7. नियम 352 (तीन) और (चार)
8. नियम 353
9. नियम 532 (दो) और (पांच)
10. नियम 349 (आठ)
11. वही (एक)
12. वही (चार)
13. वही (दस) और (ग्यारह)
14. नियम 361 (1)
15. नियम 371
16. काश्यप, ऊपर उद्धृत, पृ.139-40
17. सदस्य निर्देशिका (आठवां अंग्रेजी संस्करण)

14

संसदीय विशेषाधिकार

"विशेषाधिकार" का अर्थ है व्यक्तियों के किसी वर्ग विशेष को या कुछ व्यक्तियों को प्राप्त कोई अधिकार या स्वतंत्रता या कोई उन्मुक्ति जो शेष लोगों को प्राप्त न हो। विधि के रूप में इसका अर्थ है सभी लोगों पर लागू होने वाले किसी शुल्क, भार, हाजिरी या दायित्व से छूट। विशेषाधिकार की परिभाषा इस तरह की जा सकती है कि यह एक ऐसा अधिकार है जो अन्य लोगों को प्राप्त नहीं है।

संसदीय विशेषाधिकार संसद के विशेषाधिकार नहीं हैं क्योंकि संसद तो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से बनती है जबकि संसदीय विशेषाधिकार केवल सदनों को, उनकी समितियों को और उनके सदस्यों को ही प्राप्त हैं। संसदीय विशेषाधिकार वे विशिष्ट अधिकार हैं जो संसद के दोनों सदनों को, उसके सदस्यों को और समितियों को प्राप्त हैं और जिनके बिना वे अपने कृत्यों का यथोचित और निर्बाध निर्वहन नहीं कर सकते। विशेषाधिकार इस दृष्टि से दिये जाते हैं कि संसद के दोनों सदन, उनकी समितियां और सदस्य स्वतंत्र रूप से काम कर सकें, और उनकी गरिमा बनी रहे और वे बिना रोक टोक के अपने कृत्यों का निर्वहन कर सकें। व्यवहार में, विशेषाधिकारों से कुछ शक्तियां और उन्मुक्तियां मिलती हैं। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि कानून की नजरों में साधारण नागरिकों के मुकाबले में विशेषाधिकार प्राप्त सदस्यों की स्थिति भिन्न होती है जब तक कि स्वयं संसद के हित में ऐसी भिन्न स्थिति होने के उपयुक्त कारण न हों। जहां तक विधियों के लागू होने का संबंध है, सदस्य लोगों के प्रतिनिधि होने के साथ साथ साधारण नागरिक भी होते हैं। मूल विधि यह है कि संसद सदस्यों सहित सभी नागरिक कानून की नजरों में बराबर माने जाने चाहिए। संसद सदस्यों को साधारण नागरिकों की तरह अधिकार और स्वतंत्रताएं प्राप्त हैं। सिवाय उस स्थिति के जबकि वे संसद में अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। सदस्यों को केवल उसी समय और उसी सीमा तक विशेषाधिकार उपलब्ध हैं जिस समय और जिस सीमा तक वे संसद के लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहे होते हैं और अपने संसदीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर रहे होते हैं। सदस्यों के विशेषाधिकारों के कारण उन्हें समाज के प्रति अपने साधारण दायित्वों से किसी भी प्रकार की छूट नहीं मिलती। जो दायित्व अन्य नागरिकों के हों वही उनके भी होते हैं और शायद सदस्य होने के नाते कुछ अधिक होते हैं।

इस प्रकार, किसी सदस्य को किसी प्रकार की आक्रामक अथवा परेशान किए जाने की कार्यवाही के विरुद्ध विशेषाधिकार तभी उपलब्ध होता है जबकि संसद सदस्य के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय उसके लिए कोई बाधा उपस्थित की जाए या किसी प्रकार उसको परेशान किया जाए। ऐसे मामलों में जबकि सदस्य किसी संसदीय कर्तव्य का निर्वहन नहीं कर रहे थे और उस समय पर उन पर आक्रमण किया गया, यह निर्णय दिया गया कि विशेषाधिकार भंग नहीं हुआ या सदन की अवमानना नहीं हुई। इसी प्रकार, यदि किसी संसद सदस्य के किये गये अपमान या उस पर लगाए गए आक्षेप का सदन के सदस्य के रूप में उसके आचरण या चरित्र से संबंध नहीं है और वह सदन के कार्य के वास्तविक निष्पादन में उत्पन्न मामलों पर आधारित नहीं है तो संसद के विशेषाधिकार का मामला नहीं बनता। इसके अतिरिक्त, किसी सदस्य को देश की साधारण विधियों के प्रवर्तन से छूट नहीं होती और एक विशिष्ट मामले में यह निर्णय दिया गया है कि किसी सदस्य को, सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होने वाली विधि द्वारा प्राधिकृत रूप से डाक को सेंसर करने और टेलीफोन पर होने वाली बातों को बीच में सुनने के बारे में कोई विशिष्ट विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है।

संवैधानिक उपबंध : अधिक महत्वपूर्ण संसदीय विशेषाधिकार संविधान के अनुच्छेद 105 में उल्लिखित हैं। इनमें प्रमुख हैं संसद में वाक्-स्वातंत्र्य और संसद के किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिये गये किसी मत के संबंध में उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकने के अधिकार। राज्यों के बारे में ऐसा उपबंध अनुच्छेद 194 में किया गया है। उनमें से कुछ विशेषाधिकार कतिपय संविधियों में और लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन संबंधी नियमों में उल्लिखित हैं और कुछ अन्य इस देश में विकसित प्रथाओं पर और पूर्वीधारणाओं पर आधारित हैं।

संविधान के अनुच्छेद 105 में यह उपबंध है :

(1) इस संविधान के उपबंधों के और संसद की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों और स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुए, संसद में वाक्-स्वातंत्र्य होगा।

(2) संसद में या उसकी किसी समिति में संसद के किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी और इसी प्रकार संसद के किसी सदन के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी रिपोर्ट, पत्र, मतों या कार्यवाहियों के प्रकाशन के संबंध में किसी न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति होगी।

(3) अन्य बातों में संसद के प्रत्येक सदन और प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी जो संसद, समय समय पर, विधि द्वारा परिनिश्चित करे और जब तक वे इस प्रकार परिनिश्चित नहीं की जाती हैं तब तक वही होंगी जो संविधान (चवालीसवां

संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 15 के प्रवृत्त होने से ठीक पहले उस सदन की और उसके सदस्यों और समितियों की थीं।

(4) जिन व्यक्तियों को इस संविधान के आधार पर संसद के किसी सदन या उसके किसी समिति में बोलने का और उसकी कार्यवाहियों में अन्यथा भाग लेने का अधिकार है, उनके संबंध में खंड (1), खंड (2) और खंड (3) के उपबंध उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार वे संसद के सदस्यों के संबंध में लागू होते हैं।

आरंभ में अधिनियमित किये गये संविधान के उपबंधों में व्यवस्था थी कि संसद के सदस्यों के विशेषाधिकार तब तक वही रहेंगे जो संविधान के प्रारंभ में ब्रिटिश हाउस आफ कामंस के, उसके सदस्यों के और समितियों के थे जब तक कि हमारी संसद, विधि द्वारा, पूर्णतया या अंशतया उनको परिभाषित नहीं करती। दूसरे शब्दों में, यदि संसद किसी समय किसी विशिष्ट विशेषाधिकार के संबंध में कोई उपबंध अधिनियमित करती है तो ब्रिटेन के पूर्वीधारण उस सीमा तक हमारी संसद पर लागू नहीं होंगे। परंतु 1978 में खंड (3) में संशोधन करके यह उपबंध किया गया कि संविधान में उल्लिखित विशेषाधिकारों के अलावा विशेषाधिकारों के संबंध में, संसद के प्रत्येक सदन की, उसके सदस्यों की और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां वही होंगी जो संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 के प्रवृत्त होने से (20 जून, 1979 से) तुरंत पूर्व उस सदन की, उसके सदस्यों की और समितियों की थीं। इस संशोधन द्वारा वस्तुतया ब्रिटिश हाउस आफ कामंस के सभी निर्देशों को लोप करके केवल शाब्दिक परिवर्तन किए गए हैं, पर सार वही रहता है। दूसरे शब्दों में संविधान में उल्लिखित शक्तियों और विशेषाधिकारों के अलावा प्रत्येक सदन को, उसकी समितियों को और सदस्यों को व्यवहार में वही शक्तियां और विशेषाधिकार प्राप्त हैं जो 26 जनवरी, 1950 को ब्रिटिश हाउस आफ कामंस को प्राप्त थे।

जैसाकि संविधान (संशोधन) विधेयक पर चर्चा का उत्तर देते हुए तत्कालीन विधि मंत्री ने कहा था, अनुच्छेद 105 (3) में संशोधन करने का प्रयोजन यह था "कि मूल उपबंध में ब्रिटिश हाउस आफ कामंस का उल्लेख किया गया था। अब भारत जैसा स्वाभिमानी देश अपने पावन संवैधानिक दस्तावेज में किसी विदेशी संस्था का उल्लेख नहीं करना चाहेगा...... इस खंड के द्वारा यह शाब्दिक परिवर्तन किया जा रहा है ताकि एक विदेशी संस्था का उल्लेख न रहे"।

मुख्य विशेषाधिकार : संसदीय विशेषाधिकारों की सूचियां तैयार की जा सकती हैं और वास्तव में तैयार की भी गई हैं परंतु ऐसी कोई भी सूची पूर्ण नहीं है। संसद के प्रत्येक सदन के, उसके सदस्यों और समितियों के महत्वपूर्ण विशेषाधिकार ये कहे जा सकते हैं :—

(1) संसद में वाक्-स्वातंत्र्य [संविधान का अनुच्छेद 105 (1)]

(2) संसद में या उसकी किसी समिति में किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात

या दिए गए किसी मत के संबंध में उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कार्यवाही किए जाने से उन्मुक्ति [संविधान का अनुच्छेद 105 (2)];

(3) किसी व्यक्ति द्वारा संसद के किसी सदन के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी रिपोर्ट, पत्र, मतों या कार्यवाहियों के प्रकाशन के संबंध में उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कार्यवाही किए जाने से उन्मुक्ति [संविधान का अनुच्छेद 105 (2)]

(4) संसद की कार्यवाहियों की जांच करने के संबंध में न्यायालयों पर रोक (संविधान का अनुच्छेद 122);

(5) सदन के अधिवेशन के दौरान और उसके प्रारंभ होने से 40 दिन पूर्व और उसके समाप्त होने के बाद 40 दिन तक दीवानी मामलों में सदस्यों का गिरफ्तार न किया जा सकना (सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 135 क);

(6) जूरी के सदस्यों के रूप में कार्य करने के दायित्व से सदस्यों को छूट;

(7) किसी सदस्य की गिरफ्तारी, नजरबंदी, दोषसिद्धि, कारावास और रिहाई के बारे में तुरंत सूचना प्राप्त करने का सदन का अधिकार (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, छठा संस्करण, नियम 229 और 230);

(8) अध्यक्ष की अनुमति प्राप्त किए बिना सदन के परिसर में गिरफ्तारी और कानूनी आदेशिका की तामील पर रोक (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचलान नियम, छठा संस्करण, नियम 232 और 233);

(9) सदन की किसी गोपनीय बैठक की कार्यवाहियां या फैसले प्रकट करने पर रोक (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, छठा संस्करण, नियम 252);

(10) सदन के सदस्य या अधिकारी सदन की अनुमति के बिना सदन की कार्यवाहियों के संबंध में किसी न्यायालय में साक्ष्य नहीं देंगे या दस्तावेज पेश नहीं करेंगे (दूसरी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति का प्रथम प्रतिवेदन जो लोक सभा द्वारा 13 सितंबर, 1957 को स्वीकृत किया गया);

(11) सदन के सदस्य या अधिकारी सदन की अनुमति के बिना दूसरे सदन के या उसकी किसी समिति के समक्ष या राज्य विधानमंडल के किसी सदन के या उसकी किसी समिति के समक्ष साक्षियों के रूप में उपस्थित नहीं होंगे और उन्हें संबंधित दोनों की सम्मति के बिना ऐसा करने पर मजबूर नहीं किया जा सकता (दूसरी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति का छठा प्रतिवेदन जो लोक सभा द्वारा 17 सितंबर, 1958 को स्वीकृत किया गया);

(12) सभी संसदीय समितियों को किसी समिति द्वारा जांच के प्रयोजन के लिए संगत व्यक्तियों को बुलाने, पत्रों एवं अभिलेखों को मंगाने की शक्ति प्राप्त है। किसी संसदीय समिति द्वारा किसी साक्षी को बुलाया जा सकता है और

उसे किसी समिति के प्रयोग के लिए अपेक्षित दस्तावेज पेश करने के लिए कहा जा सकता है (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, छठा संस्करण, नियम 269 और 270);

(13) किसी संसदीय समिति के समक्ष किसी साक्षी को जांच के समय समिति उसे शपथ दिला सकती है या प्रतिज्ञान करा सकती है (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, छठा संस्करण, नियम 272);

(14) किसी संसदीय समिति के समक्ष दिया गया साक्ष्य और उसका प्रतिवेदन तथा कार्यवाहियां किसी के द्वारा तब तक प्रकट या प्रकाशित नहीं की जा सकतीं जब तक कि उन्हें सभा-पटल पर नहीं रख दिया जाता (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, छठा संस्करण, नियम 275)।

उपरोक्त विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के अतिरिक्त, प्रत्येक सदन को कतिपय आनुषंगिक शक्तियां भी प्राप्त हैं जो उसके विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के संरक्षण के लिए आवश्यक हैं। वे शक्तियां निम्नलिखित हैं :—

(1) व्यक्तियों को, चाहे वे सदस्य हों या नहीं हों, विशेषाधिकार भंग करने के कारण या सदन की अवमानना के कारण सुपुर्दगी की शक्ति;

(2) साक्षियों को उपस्थित होने के लिए बाध्य करने और पत्र एवं अभिलेख मंगाने की शक्ति;

(3) अपनी प्रक्रिया और अपने कार्य के संचालन को स्वयं विनियमित करने की शक्ति (संविधान का अनुच्छेद 118);

(4) अपने वाद विवाद और कार्यवाही-वृत्तांत के प्रकाशन पर रोक लगाने की शक्ति (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, छठा संस्करण, नियम 249); और

(5) बाहर के व्यक्तियों की सदन में उपस्थिति पर रोक लगाने की शक्ति (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, छठा संस्करण, नियम 248)।

सबसे महत्वपूर्ण संसदीय विशेषाधिकार संसदीय कर्तव्यों का पालन करते समय वाक्-स्वातंत्र्य है। अनुच्छेद 19 द्वारा सभी नागरिकों को बोलने की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है परंतु अनुच्छेद 105 और 194 में विधानमंडलों के सदस्यों के बोलने की स्वतंत्रता के अधिकार पर विशेष बल दिया गया है। अनुच्छेद 19 के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य का अधिकार युक्तियुक्त निर्बंधनों के अध्यधीन है, उदाहरणार्थ, अपमान संबंधी विधि के अध्यधीन यदि कोई साधारण व्यक्ति कोई अपमानजनक बात कहता है तो उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है परंतु यदि कोई संसद सदस्य सदन में या उसकी समितियों में बोलता है तो उसके विरुद्ध इस आधार पर कार्यवाही नहीं की जा सकती कि उसका भाषण अपमानजनक या मानहानिकारक था।

सदस्यों को लोगों की शिकायतें व्यक्त करनी होती हैं और लोक महत्व के विभिन्न

मामले उठाने होते हैं। ऐसा करते हुए सदस्यों के लिए कोई रुकावटें नहीं होनी चाहिए और उन्हें अपने मन की बात कहने और अपने विचार व्यक्त करने की छूट होनी चाहिए। सदन में या संसद की समितियों में सदस्यों को पूरी आजादी होती है कि वे जो चाहे कहें और शर्त केवल इतनी है कि उन्हें सदन के या संबंधित समिति के आंतरिक अनुशासन में रहना होता है। इसके अतिरिक्त बाहर का कोई प्राधिकारी उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं रखता। संसद के सदनों में और समितियों में सदस्य अपने कृत्यों का निर्वहन बिना किसी भय या पक्षपात के कर सकें इसके लिए वाक्-स्वातंत्र्य पूर्णतया आवश्यक है। जब तक सदस्यों को यह उन्मुक्ति प्राप्त न हो कि उनके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती जब तक उनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे निर्बाध एवं स्पष्ट रूप से अपनी बात कह सकेंगे। अतः संविधान में उपबंध किया गया है कि किसी संसद सदस्य द्वारा संसद के सदनों में या उसकी किसी समिति में कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में या, संसद के अलावा, किसी प्राधिकारी के समक्ष कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। संसद सदस्य द्वारा संसद में या उसकी किसी समिति में कही गई किसी बात के कारण उसे परेशान करना या उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही करना भी विशेषाधिकार का भंग करना है। इसी तरह, किसी सदस्य द्वारा संसद में या उसकी किसी समिति में कही गई किसी बात के संबंध में उसके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही करना विशेषाधिकार भंग करना है। किसी सदस्य द्वारा संसद में कही गई किसी बात के कारण उसे किसी न्यायालय में या संसद के बाहर किसी एजेंसी में चुनौती नहीं दी जा सकती।

"सर्चलाईट" के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि अनुच्छेद 105 के अधीन सदस्यों को प्रदत्त वाक्-स्वातंत्र्य का अधिकार केवल संविधान के उन्हीं उपबंधों के, जो संसद की प्रक्रिया को विनियमित करते हैं, और सदन के नियमों एवं स्थायी आदेशों के अध्यधीन हैं, परंतु अनुच्छेद 19 (2) के अधीन किसी विधि द्वारा किसी साधारण नागरिक के वाक्-स्वातंत्र्य पर लगाये जाने वाले किन्हीं निर्बंधनों से मुक्त हैं। सदस्यों द्वारा अपने संसदीय कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए कही गई किसी बात या किये गये किसी कार्य के संबंध में संसद से बाहर कोई जांच सदस्यों के अधिकारों में गंभीर हस्तक्षेप होगा। यद्यपि किसी सदस्य द्वारा सदन में दिये गये किसी भाषण से न्यायालय की अवमानना होती हो फिर भी किसी न्यायालय में उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। न्यायालय चूंकि संसद से बाहर का प्राधिकरण है अतः उसे ऐसे मामले की जांच करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। अनुच्छेद 122 में संसद की कार्यवाहियों की न्यायालयों द्वारा किसी जांच की विशेष रूप से मनाही है।

परंतु बाहरी प्रभाव या हस्तक्षेप से उन्मुक्तता का यह अर्थ नहीं है कि संसद की चारदीवारी के भीतर बेरोक टोक बोलने का अधिकार है। यह अधिकार संविधान के उपबंधों के अध्यधीन है। उदाहरणार्थ, अनुच्छेद 121 में उपबंध है कि उच्चतम न्यायालय या किसी

उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के, उसके कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए, आचरण के विषय में संसद में कोई चर्चा, उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रस्ताव पर ही होगी, अन्यथा नहीं। सदन के प्रक्रिया नियमों के नियम 352 और 353 में, अन्य बातों के साथ साथ किसी व्यक्ति के विरुद्ध अनुचित आरोप लगाने पर रोक लगाई गई है और सदन के सदस्यों या मंत्रियों द्वारा गलत वक्तव्य दिये जाने पर उपचारात्मक उपायों का उपबंध किया गया है। जब कोई सदस्य किसी प्रतिबंध का उल्लंघन करता है तो अध्यक्ष उसे अपना भाषण वहीं समाप्त करने के लिए निदेश दे सकता है या आदेश दे सकता है कि सदस्य द्वारा प्रयोग में लाये गये मानहानिकारक, अशिष्ट, असंसदीय या अभद्र शब्द वापस लिए जाएं या उन्हें सदन के कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिया जाए। जब कोई सदस्य उक्त आदेश का घोर उल्लंघन करता है तो अध्यक्ष उसे सदन से बाहर चले जाने का निदेश भी दे सकता है और/अथवा सदस्य को सदन की सेवा से निलंबित करने की कार्यवाही आरंभ कर सकता है।

कोई सदस्य न केवल उस समय गिरफ्तार नहीं किया जा सकता जबकि उस सदन का, जिसका कि वह सदस्य हो, अधिवेशन चल रहा हो या जबकि उस संसदीय समिति की, जिसका वह सदस्य हो, बैठक चल रही हो या जब कि दोनों सदनों की संयुक्त बैठक चल रही तो, बल्कि संसद के अधिवेशन के प्रारंभ से 40 दिन पूर्व और उसकी समाप्ति से 40 दिन पश्चात या जबकि वह सदन को आ रहा हो या सदन से बाहर जा रहा हो, तब भी उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यदि कोई सदस्य संसद या उसकी किसी समिति का कोई कार्य करने के लिए नयी दिल्ली आ रहा हो तो नयी दिल्ली से बाहर किसी स्थान पर उसे परेशान किया जाना या कोई बाधा उपस्थित किया जाना भी विशेषाधिकार को भंग करना होगा।

इस विशेषाधिकार का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सदस्य सुरक्षित पहुंच जाएं और संसद में नियमित रूप से उपस्थित हों। यद्यपि सदस्यों को केवल दीवानी मामलों में गिरफ्तारी से उन्मुक्ति प्राप्त हैं और आपराधिक मामलों में या निवारक निरोध विधि के अधीन गिरफ्तारी से उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है, तथापि सदन को किसी सदस्य की गिरफ्तारी, नजरबंदी, दोषसिद्धि, कारावास और रिहाई के बारे में तुरंत सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। संबंधित प्राधिकारी का यह कर्तव्य बनता है कि वह लोक सभा के किसी सदस्य की प्रत्येक गिरफ्तारी, नजरबंदी या कारावास की सूचना तुरंत अध्यक्ष को दे। यदि कोई प्राधिकारी ऐसा नहीं करता तो सदन के विशेषाधिकार के भंग होने का मामला बन जाता है। ऐसी सूचना यथासमय, शीघ्र से शीघ्र दी जानी होती है। चाहे सदस्य देश के किसी भी भाग में गिरफ्तार हों उसकी सूचना तार भेज कर अवश्य दी जानी चाहिए और बाद में पत्र द्वारा उसकी पुष्टि की जानी चाहिए।

यह निर्धारित है कि संसद के परिसरों के भीतर, अध्यक्ष/सभापति की अनुमति के बिना, दीवानी या आपराधिक कोई कानूनी आदेशिका—कोई "समन" दिये नहीं जा सकते और कोई सदस्य गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। संसद के परिसरों के भीतर यह उन्मुक्ति

किसी गैर-सरकारी व्यक्ति को भी प्राप्त होती है। इस प्रकार अध्यक्ष/सभापति की अनुमति के बिना संसद भवन के अंदर किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया जा सकता क्योंकि संसद के परिसरों में केवल संसद के सदन के या अध्यक्ष/सभापति के आदेशों का पालन होता है और अन्य किसी सरकारी प्राधिकारी के या स्थानीय प्रशासन के आदेश का पालन नहीं होता। यहां तक कि धारा 144 भी संसद के परिसरों में लागू नहीं की जा सकती। यदि प्राधिकारी कभी ऐसा करने की सोचें तो वह विशेषाधिकार भंग करने और सदन की अवमानना करने का मामला बन जाएगा। यह अलग बात है कि संसद के परिसरों के भीतर अध्यक्ष का कोई आदेश लागू हो जो धारा 144 के उपबंधों के समान हो।

सदस्य आपराधिक मामलों में जूरी के सदस्य के रूप में कार्य करने के दायित्व से मुक्त हैं। यद्यपि जहां कहीं जूरी की प्रणाली विद्यमान हो वहां प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य बनता है कि वह जूरी के सदस्य के रूप में सेवा करे, परंतु संसद के सदस्यों और राज्य विधानमंडलों के सदस्यों को इस मामले में छूट दी गई है।

विधानमंडल सचिवालय के किसी अधिकारी को या किसी अन्य व्यक्ति को, सदन की अनुमति के बिना, किसी सदन की कार्यवाही के संबंध में साक्ष्य देने या कोई दस्तावेज पेश करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार किसी सदस्य को, उस सदन की अनुमति के बिना जिसका वह सदस्य हो, दूसरे सदन के समक्ष साक्षी के रूप में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

सभी संसदीय समितियों को यह शक्ति प्राप्त है कि वे व्यक्तियों को बुला सकती हैं और पत्र एवं अभिलेख मंगवा सकती हैं। किसी समिति के समक्ष किसी साक्षी के निम्न प्रकार के आचरण से विशेषाधिकार भंग होता है और समिति की अवमानना होती है :—

(1) प्रश्नों के उत्तर देने से इंकार करना;

(2) टाल मटोल करना या जानबूझकर गलत साक्ष्य देना या सच्चाई छिपाना या समिति को गुमराह करना;

(3) समिति के साथ हल्के फुल्के ढंग से पेश आना और अपमानजनक उत्तर देना; और

(4) समिति द्वारा की जाने वाली जांच से संबंधित किसी सारवान दस्तावेज को नष्ट करना या क्षतिग्रस्त करना।

संसद की समितियां वैसे ही सम्मान की अधिकारी हैं जैसे कि स्वयं संसद है। अतः यदि कोई व्यक्ति किसी संसदीय समिति के फैसलों पर या आचरण पर आक्षेप करता है तो उसे विशेषाधिकार भंग करना और सदन की अवमानना करना माना जाता है।

इसके अतिरिक्त, विशेषाधिकर विधि के अंग के रूप में, हिरासत में लिये गये किसी सदस्य को यह अधिकार है कि वह किसी संसदीय समिति के अध्यक्ष/सभापति के साथ

बिना रुकावट के पत्राचार कर सकता है। हिरासत में लिये गये किसी व्यक्ति द्वारा इस प्रकार संबोधित पत्र आदि को प्रशासनिक प्राधिकारियों द्वारा रोका नहीं जा सकता।

जब कोई मामला किसी संसदीय समिति के विचाराधीन हो और वह समिति उस प्रयोजन के लिए प्रतिदिन अपनी बैठकें कर रही हो तो संसद के किसी सदस्य सहित किसी भी व्यक्ति को उस मामले के बारे में कोई वक्तव्य नहीं देना चाहिए या टिप्पणी नहीं करनी चाहिए या उसे प्रकाशित नहीं करना चाहिए। किसी संसदीय समिति के विचाराधीन किसी मामले पर सार्वजनिक रूप से टिप्पणियां करना बहुत अनुचित है और वह सदन की अवमानना भी हो सकती है। किसी समिति के कार्यवाही-वृत्तांत को या उसे प्रस्तुत किए गए किसी दस्तावेज या पत्र को प्रकाशित करना भी सदन का विशेषाधिकार भंग करना माना जा सकता है।

विशेषाधिकार भंग : सामूहिक रूप से सदन के या उसकी समितियों के या व्यक्तिगत रूप से उसके सदस्यों के किसी विशेषाधिकार, अधिकार या उन्मुक्ति की किसी व्यक्ति द्वारा या प्राधिकारी द्वारा आलोचना करने या उसके प्रति असम्मान प्रदर्शित करने से विशेषाधिकार भंग हो सकता है। यह ऐसा अपराध है जिसके लिए सदन द्वारा दंड दिया जा सकता है। मूल सिद्धांत यह है कि सदनों, समितियों या संसद के सदस्यों द्वारा अपने कर्तव्यों और कृत्यों का प्रभावी और कुशल ढंग से और बिना भय या पक्षपात के निर्वहन करने में बाधा उपस्थित करने वाला, रुकावट डालने वाला या आड़े आने वाला कोई भी कार्य संसदीय विशेषाधिकार भंग करने वाला माना जाएगा। इस प्रकार, सदन की बैठक में उपस्थित होने के लिए किसी सदस्य को जाने से रोकना विशेषाधिकार भंग का मामला होगा। सदन को जानबूझकर गुमराह करना या सदन को जानबूझ कर गलत जानकारी देना भी गंभीर अपराध है। इसके अतिरिक्त, विशिष्ट विशेषाधिकारों को भंग करना, सदन के प्राधिकार और गरिमा के विरुद्ध अपराध करना, जैसे उसके वैध आदेशों को न मानना या उसका, उसके सदस्यों का या अधिकारियों का उस नाते अपमान करना भी सदन की अवमानना के रूप में दंडनीय है।

सदन की अवमानना : सामान्य रूप से ऐसी कोई भी कार्यवाही करना या न करना सदन की अवमानना हो सकती है जो संसद के किसी सदन, या उसकी समितियों या उसके सदस्यों या उसके अधिकारियों के लिए अपने कृत्यों एवं कर्तव्यों के कुशल एवं प्रभावी निर्वहन में बाधा उपस्थित करती है या जिसकी प्रवृत्ति, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, सदन की, उसकी समितियों की या उसके सदस्यों की गरिमा या सम्मान कम करने की होती है। विशेषाधिकार भंग और सदन की अवमानना में बहुत थोड़ा-सा अंतर है। साधारणतया ऐसा हो सकता है कि विशेषाधिकार भंग होने से सदन की अवमानना होती है। इसी तरह सदन की अवमानना होने से विशेषाधिकार भंग हो सकता है। परंतु सदन की अवमानना के आशय अपेक्षतया व्यापक हैं। विशेष रूप से विशेषाधिकार भंग किये बिना सदन की अवमानना हो सकती है। वास्तव में, अवमानना शब्द की निश्चित परिभाषा करना कठिन है। किसी परिस्थिति

में कोई विशेष कार्य अवमानना हो सकता है तो किसी अन्य परिस्थिति में वही कार्य अवमानना नहीं भी हो सकता। दूसरे शब्दों में, इस बात का फैसला संसद का संबंधित सदन ही कर सकता है कि अवमानना की गई है या नहीं।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि संसद के दोनों सदनों और उनकी समितियों की सर्वोच्चता, प्राधिकार या गरिमा पर किया गया कोई भी प्रहार उनकी अवमानना है। कुछ कार्य जो सदन की अवमानना समझे जा सकते हैं इस प्रकार हैं :—

सदनों, उनकी समितियों या उनके सदस्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले भाषण और लेखनियां जिन का उद्देश्य उन्हें बदनाम करना या लोगों की नजर में उनकी प्रतिष्ठा कम करना हो;

अध्यक्ष/सभापति द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वहन में उसके चरित्र या निष्पक्षता को चुनौती देना;

किसी संसदीय समिति द्वारा अपने प्रतिवेदन में पक्षपात किये जाने का आरोप लगाना;

कार्यवाहियों को गलत ढंग से प्रकाशित करना;

पीठासीन अधिकारी द्वारा कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिये गये अंशों को और सदन के गुप्त अधिवेशनों की कार्यवाहियों को प्रकाशित करना;

सदन में सदस्यों के आचरण के कारण उन्हें परेशान करना या सदस्यों के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करते समय उनके लिए बाधा उपस्थित करना या जब वे सदन या उसकी समिति की बैठक में उपस्थित होने के लिए जा रहे हैं या वहां से आ रहे हों तो उस समय उनके लिए बाधा उपस्थित करना;

सदस्यों को उनके संसदीय आचरण से प्रभावित करने के लिए उन्हें घूस की पेशकश करना;

सदस्यों के संसदीय आचरण के संबंध में उन्हें डराना;

किसी सदस्य द्वारा या साक्षी द्वारा सदन के समक्ष या उसकी किसी समिति के समक्ष जानबूझकर गलत या गुमराह करने वाला साक्ष्य या सूचना देना; और

सदन के समक्ष या उसकी किसी समिति के समक्ष उपस्थित होने वाले किसी साक्षी के लिए बाधा डालना या उसे परेशान करना।

ऐसे मामले जिनसे विशेषाधिकार भंग नहीं होता : कुछ ऐसी संसदीय पद्धतियां, मान्यताएं तथा प्रथाएं हैं जिनका कि सदस्यों और अन्य संबंधित लोगों द्वारा पालन किया जाना चाहिए। परंतु उन पद्धतियों और प्रथाओं का उल्लंघन करने से तकनीकी रूप में विशेषाधिकार भंग नहीं होता या अवमानना नहीं होती यद्यपि ऐसा उल्लंघन अनुचित हो सकता है। उदाहरणार्थ, औचित्य की मांग है कि जब सदन का अधिवेशन चल रहा हो तो नीति संबंधी वक्तव्य सदन से बाहर नहीं देने चाहिए; सरकारी अधिकारियों और अन्य लोगों द्वारा सार्वजनिक समारोहों में संसद के सदस्यों के प्रति उचित शिष्टता दिखानी चाहिए; जो संसदीय समितियां दौरे पर हों उन्हें उचित सुविधाएं दी जानी चाहिए और उनके साथ शिष्टता से पेश आना चाहिए; परंतु औचित्य की इन बातों के उल्लंघन से संसदीय विशेषाधिकार भंग नहीं होता।

विशेषाधिकार भंग, अवमानना आदि के लिए दंड : संसद का प्रत्येक सदन अपने विशेषाधिकारों का स्वयं ही रक्षक होता है। जिस व्यक्ति को विशेषाधिकार भंग करने या सदन की अवमानना करने के लिए दोषी पाया जाए, सदन उसकी भर्त्सना करके या ताड़ना करके या निर्धारित अवधि के लिए कारावास द्वारा दंडित कर सकता है। स्वयं अपने सदस्यों के मामले में सदन अन्य दो प्रकार के दंड दे सकता है, अर्थात सदन की सेवा से निलंबित करना और निष्कासित करना। किसी सदस्य को एक निर्धारित अवधि के लिए सदन की सेवा से निलंबित किया जा सकता है या किसी अति गंभीर मामले में उसे सदन से निष्कासित किया जा सकता है।

साधारणतया, जिन मामलों में विशेषाधिकार भंग होने या अवमानना होने का अपराध गंभीर नहीं होता वहां संबंधित व्यक्ति को सदन की "बार" में बुलाया जा सकता है, और सदन के आदेश से अध्यक्ष या सभापति द्वारा, जैसे भी स्थिति हो, उसकी ताड़ना या भर्त्सना की जाती है। ताड़ना करना सबसे नरम किस्म का दंड है और भर्त्सना करना अधिक गंभीर किस्म का दंड है जिसके द्वारा सदन की अप्रसन्नता व्यक्त की जाती है। सदन अपराधियों को ऐसी अवधि के लिए कारावास का दंड दे सकता है तो साधारणतया सदन के अधिवेशन की अवधि से अधिक नहीं होती। जैसे ही सदन का सत्रावसान होता है, बंदी को मुक्त कर दिया जाता है। दर्शकों द्वारा दर्शक गैलरी से नारे लगा कर और/अथवा इश्तिहार फैंक कर सदन की अवमानना करने के कारण, दोनों सदनों ने, समय समय पर, अपराधियों को सदन के उस दिन स्थगित होने तक कारावास का दंड दिया है।

सदन का दांडिक अधिकार क्षेत्र अपने सदस्यों तक और उसके सामने किये गये अपराधों तक ही सीमित न होकर सदन की सभी अवमाननाओं पर व्याप्त होता है, चाहे अवमानना सदस्यों द्वारा की गई हो या ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो सदस्य न हों। इससे भी कोई अंतर नहीं पड़ता कि अपराध सदन के भीतर किया गया है या उस के परिसर से बाहर। सदन का विशेषाधिकार भंग करने या उसकी अवमानना करने के कारण व्यक्तियों को दंड देने की सदन की यह शक्ति संसदीय विशेषाधिकार की नींव है। यही शक्ति है जिसके कारण संसद के विशेषाधिकार वास्तविकता का रूप लेते हैं और, जहां तक इसके अधिकारों के संरक्षण का और गरिमा और प्राधिकार बनाए रखने का संबंध है, यही शक्ति इसके प्रभुसत्ता पूर्ण स्वरूप पर बल देती है।

परंतु विशेषाधिकार भंग होने पर सदन की अवमानना होने के कारण सदन की दांडिक शक्तियों का प्रयोग बहुत ही गंभीर मामलों में किया जाता है जहां संसद की संस्था के प्रति असम्मान की भावना पैदा करने और संसद में लोगों का विश्वास समाप्त करने के लिए जानबूझ कर प्रयास किया गया हो। सदन की ऐसी परंपरा भी रही है कि सदन का विशेषाधिकार भंग करने या सदन की अवमानना करने के दोषी व्यक्तियों द्वारा स्पष्ट रूप से और बिना किसी शर्त के दिल से व्यक्त किया गया खेद सदन द्वारा स्वीकार कर

लिया जाता है और साधारणतया सदन अपनी गरिमा को देखते हुए ऐसे मामलों पर अग्रेतर कार्यवाही न करने का फैसला करता है।

विशेषाधिकार के प्रश्नों संबंधी प्रक्रिया : विशेषाधिकार के प्रश्नों के संबंध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के नियम 222 से 228 और 313 से 316 में निर्धारित है। जो सदस्य विशेषाधिकार का कोई प्रश्न उठाना चाहता हो उसे महासचिव को अपने इस आशय की सूचना देनी होती है। ऐसी सूचना दिन की बैठक के प्रारंभ होने से पहले देनी होती है। यदि उठाया जाने वाला प्रश्न किसी दस्तावेज पर आधारित हो तो सूचना के साथ वह दस्तावेज संलग्न होना चाहिए। उस सूचना की जांच करने के बाद यदि अध्यक्ष का विचार हो कि विशेषाधिकार भंग होने का प्रथम दृष्टया कोई मामला नहीं बनता या कि उठाया जाने वाला मामला नियमाकूल नहीं है तो मामला उठाने के लिए वह अपनी सम्मति देने से इंकार कर सकता है। संबंधित सदस्य को अध्यक्ष के फैसले की सूचना दे दी जाती है। अध्यक्ष के इस फैसले की कि उसने सदन में मामला उठाने के लिए अपनी सम्मति रोक ली है, सूचना सदस्य को दे दिये जाने के पश्चात सदस्य को सदन में मामला उठाने की अनुमति नहीं होती। परंतु यदि सदस्य उससे संतुष्ट न हो तो वह अपने मामले की व्याख्या करने के लिए अध्यक्ष के कक्ष में उससे मिल सकता है। यह प्रक्रिया इसलिए निर्धारित है कि जो मामला प्रथम दृष्टया गृहीत करने योग्य न हो उसे उठाने से सदन का समय व्यर्थ न जाए। जहां मामला अविलंबनीय स्वरूप का हो और सूचना देने का समय न हो तो अध्यक्ष, लिखित पूर्व सूचना के बिना, सदस्य को विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति दे सकता है।

इस प्रश्न का फैसला केवल सदन कर सकता है कि जिस मामले की शिकायत की गई है क्या वह वास्तव में विशेषाधिकार भंग का या सदन की अवमानना का मामला है, क्योंकि केवल सदन ही अपने विशेषाधिकार का स्वामी है अध्यक्ष जब किसी मामले को विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में सदन में उठाए जाने के लिए अपनी सम्मति देता है तो वह केवल यही विचार करता है कि क्या वह मामला अग्रेतर जांच योग्य है और क्या उसे सदन के समक्ष लाया जाना चाहिए। विशेषाधिकार का प्रश्न किसी सदस्य द्वारा शीघ्रातिशीघ्र उठाया जाना चाहिए और उसमें सदन का हस्तक्षेप अपेक्षित होना चाहिए। यदि अध्यक्ष समझता है कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है तो वह स्वयं ही उसे विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट कर सकता है। या उसे सदन में उठाये जाने के लिए अपनी सम्मति दे सकता है। अध्यक्ष द्वारा सम्मति प्रदान किए जाने के पश्चात सदस्य, अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर, विशेषाधिकार भंग होने का प्रश्न उठाने के लिए सदन की अनुमति मांगता है। ऐसी अनुमति मांगते समय, संबंधित सदस्य को विशेषाधिकार के प्रश्न से संगत केवल छोटा सा वक्तव्य देने की अनुमति दी जाती है। यदि अनुमति दिये जाने पर आपत्ति की जाती

है तो अध्यक्ष उन सदस्यों से अपने स्थान पर खड़े होने के लिए अनुरोध करता है जो अनुमति दिए जाने के पक्ष में हैं। तदनुसार, यदि पच्चीस या पच्चीस से अधिक सदस्य खड़े होते हैं तो यह मान लिया जाता है कि सदन ने वह मामला उठाने की अनुमति दे दी है। अध्यक्ष घोषणा करता है कि अनुमति दी जाती है; अन्यथा अध्यक्ष सदस्य को सूचित करता है कि वह मामला उठाने के लिए सदन ने अनुमति नहीं दी है।

सदन में विशेषाधिकार का कोई प्रश्न उठाने की अनुमति केवल वही सदस्य मांग सकता है जिसने विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचना दी हो। वह किसी अन्य सदस्य को उसकी ओर से ऐसा करने के लिए प्राधिकृत नहीं कर सकता। विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को कार्य सूची में दर्ज अन्य कार्य मदों से वरीयता दी जाती है। तदनुसार, विशेषाधिकार का कोई प्रश्न उठाने के लिए अनुमति प्रश्नकाल के पश्चात और कार्य की अन्य मदों के विचारार्थ लिए जाने से पूर्व मांगी जाती है। परंतु अवलिंबनीय मामले, जिनके लिए सदन को तुरंत हस्तक्षेप अपेक्षित हो, प्रश्नों के निपटाए जाने के पश्चात सदन की बैठक के दौरान किसी भी समय उठाने की अध्यक्ष द्वारा अनुमति दी जाती है, परंतु ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं।

सदन द्वारा अनुमति प्रदान किए जाने के पश्चात सदन मामले पर स्वयं विचार कर सकता है और फैसला कर सकता है या उसकी जांच करने, छानबीन करने और प्रतिवेदन देने के लिए उसे विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट कर सकता है। परंतु सामान्य प्रथा यह है कि शिकायत का मामला समिति को निर्दिष्ट कर दिया जाता है और सदन समिति का प्रतिवेदन प्राप्त होने तक अपना फैसला स्थगित रखता है। सदन यदि यह देखता है कि कोई मामला बहुत तुच्छ है या जब अपराधी माफी मांग लेता है तो सदन स्वयं यह फैसला करके मामले को निपटा देता है कि उस पर अग्रेतर कार्यवाही करना आवश्यक नहीं रहा।

समिति का प्रतिवेदन सदन में प्रस्तुत हो जाने के पश्चात समिति का सभापति या समिति का कोई सदस्य या कोई भी अन्य सदस्य प्रस्ताव रख सकता है कि प्रतिवेदन पर विचार किया जाए। प्रतिवदेन पर विचार किए जाने के पश्चात समिति का सभापति या समिति का कोई भी अन्य सदस्य या कोई अन्य सदस्य प्रस्ताव कर सकता है कि प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों के साथ सदन सहमत है या असहमत है या संशोधनों के साथ सहमत है। इस प्रस्ताव को कि विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया जाए, वही प्राथमिकता दी जाती है जो लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के नियम 225 के अधीन विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को दी जाती है। अग्रेतर कार्यवाही समिति के प्रतिवेदन पर सदन के फैसले के अनुसार की जाती है।

व्यवहार में संसद के सदन विशेषाधिकार भंग के मामलों में सदा अधिकतम उदार रहे हैं। अब तक कुछ ही मामलों में कार्यवाही की गई है। जहां व्यक्तियों द्वारा या प्रेस द्वारा विशेषाधिकार भंग किया गया या अवमानना की गई, संसद के सदनों ने ऐसे बहुत

ही कम मामलों में सख्त दृष्टिकोण अपनाया है। अधिकांश मामलों में उनका यही विचार रहा है कि प्रत्येक तुच्छ और महत्वहीन मामले की ओर ध्यान देना सदन की गरिमा के अनुकूल नहीं है और इससे उन लोगों या तत्वों को अनुचित महत्व मिलेगा जो ऐसी स्थितियां उत्पन्न करते हैं।

केवल संसद ही अपने विशेषाधिकारों की निर्णायक : कभी कभी तथाकथित 'उच्चतम न्यायालय के निर्णय' का उल्लेख किया जाता है जिसकी रिपोर्ट ए.आई.आर. 1965 उच्चतम न्यायालय 745 में प्रकाशित हुई थी। वास्तव में वह कोई निर्णय नहीं था बल्कि भारत के राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन 26 मार्च, 1964 को निर्दिष्ट किए गए विशेष मामले पर उच्चतम न्यायालय की राय थी। वह मामला विशेषाधिकार भंग करने और सदन की अवमानना करने के कारण उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा श्री केशव सिंह को कारावास का दंड और उन को मुक्त किये जाने के लिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दायर की गई उनकी रिट याचिका के बारे में था जिसके कारण अनेक घटनाएं घटीं और राज्य विधानमंडलों और उनके सदस्यों की शक्तियों एवं विशेषाधिकारों के संबंध में उच्च न्यायालय और उनके न्यायधीशों की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र संबंधी विधि के महत्वपूर्ण और जटिल प्रश्न उठ खड़े हुए थे।

भारत में न्यायालयों ने यह बात मानी है कि किसी विशेष मामले में विशेषाधिकार भंग हुआ है या नहीं हुआ है इस प्रश्न का फैसला करने का अधिकार केवल संसद या राज्य विधानमंडल के सदन को है। यह भी निर्णय दिया गया है कि अवमानना करने के कारण दंड देने की सदन की शक्ति वैसी ही है जैसे कि हाउस आफ कामंस की है और कि उस शक्ति के प्रयोग की छानबीन करने के लिए कोई न्यायालय अक्षम होगा।

1959 में, **सर्चलाईट मामले में** उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया :—

"अनुच्छेद 194 के खंड (2) के उपबंधों के अनुसार खंड (1) में निर्दिष्ट वाक्-स्वातंत्र्य उस वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य से भिन्न है जिस की गारंटी अनुच्छेद 19 (1) (क) के अधीन दी है और उसमें अनुच्छेद 19 के खंड (2) द्वारा परिकल्पित किसी विधि द्वारा किसी भी तरह कमी नहीं की जा सकती।"

"अनुच्छेद 105 (2) और 194(2) के उपबंध संवैधानिक विधियां हैं न कि संसद या राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाई गई साधारण विधियां और वे उसी प्रकार सर्वोच्च हैं जिस प्रकार भाग तीन (मूल अधिकारों से संबंधित अनुच्छेद) के उपबंध हैं।"

"सुसंगत अर्थान्वयन का सिद्धांत अवश्य अपनाया जाना चाहिए और उसी प्रकार अर्थ लगाये जाने चाहिए, कि अनुच्छेद 19 (1) (क) के उपबंध, जो सामान्य हैं, अनुच्छेद 194 (1) के और इसके खंड (3) के बाद वाले भाग, जो विशेष हैं, के अधीन होने चाहिए।"

1965 में, उच्चतम न्यायालय ने, 1964 के उपरोक्त विशेष रूप से निर्दिष्ट मामलों में (केशव सिंह के मामले में) अपनी परामर्शदात्री राय में ये टिप्पणियां कीं :

"**सर्चलाईट मामले में** बहुमत के निर्णय का यह अर्थ लगाना सही नहीं होगा कि उसके द्वारा सामान्य सिद्धांत निर्धारित किया गया है कि जहां कहीं अनुच्छेद 194 (3) के बाद वाले भाग के उपबंधों और भाग 3 में प्रत्याभूत मूल अधिकारों के किसी भी उपबंध के बीच टकराव हो तो बाद में उल्लिखित उपबंध पहले उल्लिखित उपबंधों के अधीन होगा। अतः बहुमत के निर्णय का यही अर्थ लगाना चाहिए कि यह फैसला दिया गया है कि अनुच्छेद 19 (1) (क) लागू नहीं होगा और अनुच्छेद 21 लागू होगा।"

"अनुच्छेद 194 के खंड (3) में किये गये उपबंधों के प्रभाव के संबंध में जब कभी ऐसा प्रतीत हो कि उक्त उपबंधों और मूल अधिकारों संबंधी उपबंधों के बीच टकराव है तो सुसंगत अर्थान्वयन का नियम अपनाकर उक्त टकराव का समाधान करने का प्रयास करना होगा"

यहां यह बता दिया जाए कि **सर्चलाईट मामले में** उच्चतम न्यायालय का निर्णय अभी तक अंतिम है और उस मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित मार्गदर्शी सिद्धांत ऐसे सभी मामलों में लागू होने वाले माने गये हैं।

भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के 11 और 12 जनवरी, 1965 को मुंबई में हुए सम्मेलन में उच्चतम न्यायालय की राय पर विचार किया गया। सम्मेलन ने सर्वसम्मति से एक संकल्प स्वीकृत किया जिसमें यह विचार व्यक्त किया कि संविधान के निर्माताओं के आशय पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए, जिससे किसी संदेह की गुंजाइश न रहे, अनुच्छेद 105 और 194 में उपयुक्त संशोधन किये जाने चाहिए ताकि विधानमंडलों, उनके सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियां किसी भी मामले में संविधान के किसी अन्य अनुच्छेद के अध्यधीन या अधीन न समझी जायें।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने **केशव सिंह मामले में** 10 मार्च, 1965 के अपने निर्णय में, अर्थात उच्चतम न्यायालय की परामर्शदात्री राय प्राप्त होने के पश्चात दिये गये निर्णयों में, ये टिप्पणियां कीं :

(1) "प्राधिकार के अनुसार और संविधान के संगत उपबंधों के संगत उपबंधों पर विचार करने पर, हमारी राय है कि यही उचित है कि विधान सभा को, अनुच्छेद 194 (3) के कारण, अपनी अवमानना किये जाने पर दंड देने की वही शक्ति प्राप्त है जो कि हाउस आफ कामंस को प्राप्त है।"

(2) "हमारी राय है कि संविधान के अनुच्छेद 22 (2) के उपबंध सक्षम प्राधिकारी द्वारा दोषसिद्धि के और कारावास का दंड लागू किए जाने के

अनुसरण में नजरबंदी पर लागू नहीं हो सकते।"

(3) "हम चूंकि पहले ही निर्णय दे चुके हैं कि विधान सभा को अपनी अवमानना किये जाने के कारण प्रार्थी को दंड देने की शक्ति प्राप्त है और चूंकि विधान सभा ने अनुच्छेद 208 (1) के अधीन अपनी प्रक्रिया तथा कार्य संचालन के नियम बनाये हैं, अतः प्रार्थी का दंडित किया जाना और उसको वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित किया जाना संविधान के अनुच्छेद 21 के अर्थों मे विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुकूल ही ठहराया जा सकता है।"

(4) "एक बार जब हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि विधान सभा को उसकी अवमानना किये जाने के कारण दंड देने और प्रार्थी पर दंड को लागू करने की शक्ति है और ऐसा करना उसके अधिकार क्षेत्र में है तो हम दंड के सही होने, उसके औचित्य या वैधता के प्रश्न में नहीं जा सकते। यह न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन किसी याचिका में, विधान सभा द्वारा उसकी अवमानना किये जाने के कारण प्रार्थी को दंडित करने के फैसले के विरुद्ध अपील का फैसला नहीं कर सकता। विधान सभा अपनी प्रक्रिया स्वयं निर्धारित करती है और इस प्रश्न का फैसला केवल वही कर सकती है कि उसकी अवमानना की गई है या कि नहीं की गई है।"

इस निर्णय के परिप्रेक्ष्य में सरकार ने फैसला किया कि संविधान में संशोधन करना अवश्यक नहीं है। सरकार का विचार था कि उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई राय और इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के प्रकाश में विधानमंडल और न्यायपालिका स्वयं अपनी प्रथाएं विकसित करेंगी।

संसदीय विशेषाधिकार और प्रेस : प्रेस को प्रायः संसद का विस्तार कहा जाता है। प्रेस संसदीय विधान और चर्चाओं का सार लोगों को बताता है और संसद में जो कुछ होता है उससे लोगों को अवगत कराता है। संविधान में प्रेस की स्वतंत्रता का स्पष्ट रूप से कोई उपबंध नहीं है परंतु संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (क) के अधीन नागरिकों को प्रत्याभूत "वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य" के मूल अधिकार में यह अंतर्निहित है। न्यायिक निर्णयों द्वारा यह तय किया गया है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य में प्रेस की स्वतंत्रता सम्मिलित है। सदन की कार्यवाही से निकाले गये अंश प्रकाशित करना विशेषाधिकार भंग करना और सदन की अवमानना करना है। संसद के प्रत्येक सदन की कार्यवाहियों के प्रकाशन से संबंधित सभी व्यक्तियों को, यदि ऐसा प्रकाशन सदन द्वारा या सदन के प्राधिकार से किया जाय, संविधान के अधीन, किसी न्यायालय में कार्यवाही से पूर्ण उन्मुक्ति प्रदान की गई है (अनुच्छेद 105) (2) परंतु यह उन्मुक्ति संसदीय कार्यवाहियों की रिपोर्ट समाचारपत्रों में प्रकाशित करने के मामले में प्रदान नहीं की गई है, चाहे वे सदन

के किसी सदस्य द्वारा प्रकाशित की जायें या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, जब तक कि किसी सदन द्वारा ऐसे प्रकाशन के लिए स्पष्टतया प्राधिकृत किया न गया हो। संसद के प्रत्येक सदन की किसी कार्यवाही की मूल रूप से सही रिपोर्ट समाचारपत्रों में प्रकाशित करने या वायरलैस टेलीग्राफी द्वारा प्रसारित करने के लिए सांविधिक संरक्षण दिया गया है बशर्ते कि वह रिपोर्ट सार्वजनिक हित में हो और दुर्भावना से न की गई हो (संविधान का अनुच्छेद 361 क)।

उक्त संरक्षण इस सीमा के साथ प्रदान किया गया है कि सदन को अपने वाद विवाद या कार्यवाहियां प्रकाशित करने पर नियंत्रण रखने और यदि आवश्यक हो तो उनके प्रकाशन पर रोक लगाने और अपने आदर्शों का उल्लंघन करने वालों को दंड देने की शक्ति प्राप्त है। साधारणतया, सदन की कार्यवाहियों की रिपोर्ट प्रकाशित करने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाये जाते। परंतु यदि रिपोर्ट दुर्भावना से की गई हो या किन्हीं सदस्यों के भाषणों को जानबूझ कर गलत रूप दिया गया हो या छिपाया गया हो तो वह विशेषाधिकार भंग करना और सदन की अवमानना करना होगा और दोषी व्यक्ति को दंड दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त, प्रेस पर रोक लगाई गई है कि वह किसी संसदीय समिति की कार्यवाही या उसके समक्ष दिये गये साक्ष्य या उसके समक्ष प्रस्तुत किये गये किसी दस्तावेज का कोई अंश तब तक प्रकाशित नहीं करेगा जब तक वह कार्यवाही या साक्ष्य या दस्तावेज सदन में पेश न किया जाय। प्रेस पर यह भी रोक है कि वह सदन की किसी गुप्त बैठक की कार्यवाहियां या फैसले तब तक प्रकट नहीं कर सकता जब तक कि सदन द्वारा उनकी गोपनीयता पर लगी रोक हटाई नहीं जाती। ऐसे प्रकाशन या प्रकटीकरण को सदन के विशेषाधिकार का घोर भंग माना जाता है। इसी प्रकार, वाद विवाद के ऐसे अंशों को प्रकाशित करना जिन्हें अध्यक्ष के आदेश से सदन के कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिया गया हो विशेषाधिकार भंग करना और सदन की अवमानना करना है और तदनुसार दंडनीय है।

यह प्रश्न प्रायः उठाया जाता है कि जो लेखक, वक्ता या व्यंग्य-चित्रकार विधानमंडलों की कमियों की सही आलोचना करता है क्या उसके विरुद्ध कार्यवाही करने के मामले में भी विधानमंडलों के विशेषाधिकार अंतर्ग्रस्त होते हैं। निःसंदेह संसद को या किसी विधानमंडल को किसी ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण लेख, भाषण इत्यादि के विरुद्ध जिसके द्वारा उसके कार्यकरण पर या उसके सदस्यों या समितियों के कार्यकरण पर आक्षेप किया गया हो, कार्यवाही करने का अधिकार है। परंतु यदि आलोचना न्यायोचित और सद्भावनापूर्ण हो तो कोई कार्यवाही नहीं की जाती।

लोक सभा द्वारा विशेषाधिकार के मामलों में सामान्य रूप से वही रुख अपनाया जाता है जो हाउस आफ कामंस का रहता है।

हाउस आफ कामंस की संसदीय विशेषाधिकार संबंधी प्रवर समिति, 1967 ने निम्नलिखित सिफारिश की थीं :—

"हाउस को अपने दांडिक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग (क) किसी भी स्थिति में यथासंभव कम से कम करना चाहिए, (ख) तभी करना चाहिए जब वह संतुष्ट हो जाय कि ऐसा करना आवश्यक है जिससे कि हाउस को, उसके सदस्यों को या उसके अधिकारियों को ऐसी अनुचित रुकावट से या रुकावट डालने के प्रयास से या रुकावट डालने की धमकी से, जिससे उनके अपने अपने कृत्यों के पालन में काफी हस्तक्षेप हो रहा हो या होने की संभावना हो, युक्तियुक्त संरक्षण मिल सके"।

उसके बाद, हाउस आफ कामंस की विशेषाधिकार समिति ने अपने तीसरे प्रतिवेदन (1976-77) में उक्त सिफारिश को दोहराया और हाउस आफ कामंस ने उसे 6 फरवरी, 1978 को स्वीकार किया।

दूसरी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने अपने तेरहवें प्रतिवेदन में अन्य बातों के साथ साथ यह टिप्पणी की थी :—

"कोई भी प्रेस को या किसी नागरिक को न्यायोचित टिप्पणी करने के अधिकार से वंचित नहीं करेगा। परंतु यदि टिप्पणियों में संसद में सदस्यों के आचरण के कारण उनकी व्यक्तिगत रूप से आलोचना की गई हो या यदि टिप्पणियों की भाषा अशिष्ट या अपमानजनक हो तो उन्हें न्यायोचित टिप्पणियां या आलोचना नहीं माना जा सकता। प्रेस आयोग (1954) का भी यह विचार था कि 'अशिष्ट या अपमानजनक भाषा में की गई टिप्पणी अनुचित है।' गैर-जिम्मेदाराना सनसनीवाद भी न्यायोचित टिप्पणी की परिभाषा में नहीं आता"।

छठी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने अपने चौथे प्रतिवेदन में यह विचार व्यक्त किया था :—

"समिति जानती है कि प्रेस की स्वतंत्रता वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के मूल अधिकार का अभिन्न अंग है जिसकी गारंटी संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (क) के अधीन सभी नागरिकों को दी गई है। समिति इस बात को महत्वपूर्ण मानती है कि संसदीय प्रणाली में संसद की कार्यवाहियों की न्यायोचित ढंग से और वफादारी से प्रकाशित करने की प्रेस को पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। परंतु यदि प्रेस की स्वतंत्रता का प्रयोग दुर्भावना से किया जाता है तो संसद का कर्तव्य हो जाता है कि वह ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करे। इसके साथ ही समिति का विचार है कि संसदीय विशेषाधिकार के कारण विचारों की निर्बाध अभिव्यक्ति या न्यायोचित टिप्पणी में कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए या उसे निरुत्साहित नहीं किया जाना चाहिए"।

सातवीं लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने अपने प्रथम प्रतिवेदन में अन्य बातों के साथ साथ यह विचार व्यक्त किये :—

"समिति का विचार है कि यदि लोकतंत्रात्मक प्रणाली में शक्ति का प्रयोग संयम

से किया जाय तो उससे सभी की गरिमा बढ़ती है; जितना शक्तिशाली कोई निकाय या संस्था हो उतने ही अधिक संयम की विशेषकर अपने दांडिक अधिकारों के प्रयोग में, उससे उपेक्षा की जाती है।"

विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करना : संविधान के अनुच्छेद 105 (3) में निर्धारित है कि संविधान में उल्लिखित विशेषाधिकारों के अलावा, संसद विधि द्वारा अपने विशेषाधिकारों की, समय समय पर, परिभाषा कर सकती है, परंतु इस उपबंध के अनुसरण में, प्रत्येक सदन की और उसके सदस्यों और समितियों की शक्तियों, विशेषाधिकारों, और उन्मुक्तियों की परिभाषा करने के लिए संसद द्वारा अब तक कोई विधि नहीं बनाई गई है। वास्तव में, संसद का एक महत्वपूर्ण विशेषाधिकार यह है कि विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध न किया जाए। वे वैसे ही अपरिभाषित रहने चाहिए जैसे कि आज हैं और जैसे कि वे सदा रहे हैं।

जहां तक इस संवैधानिक उपबंध का, अर्थात "जब तक संसद द्वारा, विधि द्वारा, परिभाषित न किये जायें" और संसदीय विशेषाधिकारों की परिभाषा करने या उन्हें संहिताबद्ध करने के प्रश्न का संबंध है, इस बारे में मतभेद हैं।

इस विषय पर विधान बनाने का प्रश्न भी 1921 से भारत में संसद के तथा राज्यों के विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों के विचाराधीन रहा है। परंतु अधिकांश लोगों का सदा यही विचार रहा है कि उन्हें संहिताबद्ध करने से संसद/राज्य विधानमंडलों की प्रतिष्ठा और प्रभुसत्ता को हानि पहुंचने की ज्यादा संभावना है और प्रेस को उससे कोई लाभ नहीं मिलेगा।[1] वर्तमान परिस्थितियों में संसदीय विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करना न तो आवश्यक है और न ही वांछनीय। विधानमंडल और न्यायपालिका अपने अपने क्षेत्रों में सर्वोच्च हैं। संसद अपने क्षेत्र में सर्वोच्च है और न्यायपालिका अपने क्षेत्र में। जो मामले न्यायालयों के समक्ष आते हैं उनमें विधि की व्याख्या करना न्यायपालिका का काम है। इस संबंध में एम. हिदायतुल्ला, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश और राज्य सभा के भूतपूर्व सभापति का, यह कथन स्मरण कराए जाने योग्य है :—

"यदि संसद और न्यायालय एक दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मान की भावना रखते हैं तो विशेषाधिकारों के विषय पर विधि को संहिताबद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। संहिताबद्ध विधि से उन लोगों को अधिक लाभ होगा जो संसद, उसके सदस्यों और समितियों को बदनाम करने पर तुले होते हैं और न्यायालयों को अधिकाधिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए कहा जाएगा। आज जो स्थिति है उसमें अगर दोनों तरफ उचित सुझ बूझ हो तो अधिक संभावना यही है कि संसदीय विशेषाधिकार भंग करने और उसकी अवमानना करने के मामलों में दंड देने के संसदीय अधिकार को न्यायालयों का समर्थन मिलेगा न कि इसके विपरीत रुख अपनाया जायेगा। लिखित रूप में विधि होने से संसद

के लिए तथा न्यायालयों के लिए वह गरिमा बनाए रखना कठिन होगा जो वैध रूप से संसद की है और जिसे न्यायालय सदा उत्साहपूर्वक वैसे ही बनाए रखेंगे जैसे कि वे अपनी गरिमा बनाए रखते हैं"।

संदर्भ

1. इस विषय पर एक भिन्न विचार के लिए *देखिए*, सुभाष काश्यप, कोडिफाई प्रिविलेजेज आफ पार्लियामेंट, **टाइम्स आफ इंडिया**, 5 दिसंबर, 1990

15

सदस्यों के वेतन और भत्ते—अन्य सुविधाएं और पेंशन

दोनों सदनों के सदस्य ऐसे वेतन और भत्ते, जिन्हें संसद समय समय पर, विधि द्वारा अवधारित करे, प्राप्त करने के हकदार हैं। (अनुच्छेद 106)

पेंशन : सदस्यों को किये जाने वाले भुगतानों से संबंधित संवैधानिक उपबंध में पेंशनों का कोई उल्लेख नहीं है। किंतु संसद ने संसद सदस्य (वेतन, भत्ते और पेंशन) अधिनियम के अधीन सदस्यों को पेंशन दिए जाने की स्वीकृति दी है। चार वर्ष के सेवाकाल वाले प्रत्येक सदस्य को एक हजार चार सौ रुपये प्रति मास की पेंशन दी जाती है। इसके अतिरिक्त पांच वर्ष के बाद की सेवा के प्रत्येक वर्ष के लिए 250 रुपये और दिये जाते हैं।

वेतन तथा भत्ते : प्रत्येक सदस्य 1500 रुपये प्रति मास का वेतन तथा ऐसे स्थान पर, जहां संसद के किसी सदन का अधिवेशन या समिति की बैठक हो, ड्यूटी पर निवास के दौरान 200 रुपये प्रति दिन का भत्ता प्राप्त करने का हकदार है। कोई सदस्य सदन के अधिवेशन से ठीक पहले या बाद के तीन दिनों के लिए तथा समिति की बैठक से पहले या बाद के दो दिनों के लिए या संसद सदस्य के रूप में उसके कर्तव्यों से संबंधित किसी अंन्य कार्य को करने के प्रयोजन के लिए दैनिक भत्ता प्राप्त करने का भी हकदार है। मासिक वेतन तथा दैनिक भत्ते के अलावा प्रत्येक सदस्य 300 रुपये मासिक या निर्वाचन क्षेत्र भत्ता और 1000 रुपये प्रति मास की दर से कार्यालय व्यय प्राप्त करने का हकदार है।

यात्रा संबंधी सुविधाएं : कोई सदस्य निम्नलिखित यात्रा-भत्ते पाने का हकदार है :

(क) रेल द्वारा यात्रा के लिए, एक प्रथम श्रेणी के तथा एक द्वितीय श्रेणी के किराये के बराबर रकम;

(ख) विमान द्वारा यात्रा के लिए; प्रत्येक ऐसी यात्रा के लिए विमान किराये के सवा गुना के बराबर रकम;

(ग) सड़क द्वारा यात्रा के लिए, पांच रुपये प्रति किलोमीटर तथा स्टीमर द्वारा यात्रा के लिए उच्चतम श्रेणी के किराये के अतिरिक्त उसका 3/5 भाग।

इसके अलावा, प्रत्येक सदस्य को प्रति वर्ष देश के अंदर कहीं भी अपनी पत्नी/अपने पति या सहचर के साथ 28 एकतरफा विमान यात्राएं करने की छूट होती है। प्रत्येक सदस्य को देश के अंदर कहीं भी, कितनी भी बार, वातानुकूलित श्रेणी में यात्रा के लिए स्वयं तथा सहचर के लिए एक रेलवे पास भी मिलता है। पत्नी/पति के लिए एक पृथक पास भी मिल सकता है।

टेलीफोन : प्रत्येक सदस्य निःशुल्क टेलीफोन—एक नयी दिल्ली/दिल्ली में तथा दूसरा अपने सामान्य निवास स्थान पर—लगवाने का हकदार है। इसके अलावा, उसे प्रतिवर्ष निःशुल्क 50,000 स्थानीय काल करने की छूट होती है।

वास सुविधा तथा वाहन : प्रत्येक सदस्य को नयी दिल्ली में आवास स्थान प्रदान किया जाता है। फ्लैटों के लिए कोई शुल्क नहीं है जबकि बंगलों के लिए नाममात्र लाइसेंस शुल्क लगाया जाता है। कतिपय सीमाओं में बिजली तथा पानी निःशुल्क होते हैं।

प्रत्येक सदस्य को उसके कार्यकाल के दौरान वाहन खरीदने के लिए 50,000 रुपये की अग्रिम-राशि दी जाती है।

अन्य परिलब्धियां : सदस्यों को जो अन्य परिलब्धियां तथा सुविधाएं प्रदान की जाती हैं उनमे आशुलिपिक तथा टंकण पूल, आय कर में राहत, कैंटीन, जलपान और खानपान, क्लब, कामन रूम, बैंक, डाकघर, रेलवे तथा हवाई बुकिंग तथा आरक्षण, बस परिवहन, एल पी जी सेवा, विदेशी मुद्रा का कोटा, लॉकर, सुपर बाजार आदि शामिल हैं। पार्लियामेंट एस्टेट के परिसर में एकमात्र सदस्यों के लिए एक प्रथमोपचार केंद्र तथा एक सुसज्जित चिकित्सा केंद्र भी कार्यशील हैं।

16

राजनीतिक दल तथा दल-बदल निरोधक कानून

दल तथा समूह

भारत में अभी तक एक समुचित दल-प्रणाली विकसित नहीं हुई है। एक बड़ी संख्या में दल निर्वाचनों में भाग लेते हैं। पीछे निर्वाचन आयोग की पंजीकृत दलों की सूची में 365 दल थे। यदि हर तरह से विचार किया जाये तो प्रायः इनकी कोई विशिष्ट विचारधारा नहीं होती या वे किन्हीं कार्यक्रम संबंधी मतभेदों पर आधारित नहीं होते। अनेक दल विशिष्टजनों या जातीय, सांप्रदायिक, जनजातीय, भाषाई या क्षेत्रीय पहचानों के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। ये दल हमेशा बनते रहते हैं, विभाजित होते रहते हैं, एक-दूसरे में विलीन होते रहते हैं, आदि। 1977-79 के दौरान जनता पार्टी और कांग्रेस के साथ और पुनः 1989-90 के दौरान जनता दल और कांग्रेस के साथ थोड़े समय के लिए केवल दो ऐसे अवसर आए थे जब दो-दल प्रणाली साकार होती हुई नजर आई थी।

1985 तक, संविधान में राजनीतिक दलों का कोई उल्लेख नहीं था। निर्वाचन विधि में प्रतीक आवंटित करने के विशिष्ट प्रयोजन के लिए उन्हें मान्यता देने का उपबंध था। पीठासीन अधिकारियों ने संसद के अपने अपने सदनों के काम-काज की सुविधा के लिए अपने स्वविवेक तथा निदेशों के अधीन संसदीय दलों तथा समूहों को मान्यता दे दी थी। इस प्रकार, लोक सभा में, जिनकी न्यूनतम सदस्य-संख्या गणपूर्ति बनाए रखने के लिए पर्याप्त अर्थात कुल सदस्य संख्या का दसवां भाग थी, उन्हें संसदीय दल के रूप में मान्यता दी जाती थी और जिनकी न्यूनतम सदस्य-संख्या 30 थी, उन्हें संसदीय समूहों के रूप में। संसदीय दल/समूह के रूप में मान्यता मिल जाने के बाद कतिपय कार्यात्मक सुविधाएं उपलब्ध हो जाती थीं। इनमें पृथक स्थानों का आवंटन, दलों के कार्यालयों के लिए पार्लियामेंट एस्टेट में स्थान, संसदीय पत्रों तथा प्रकाशनों की सप्लाई, समितियों में सदस्यता, बोलने के समय का आवंटन, सदन के महत्वपूर्ण मामलों में परामर्श आदि शामिल थे।

संविधान (52 वां संशोधन) अधिनियम ने, जिसके अंतर्गत संविधान में दसवीं अनुसूची—जिसे आमतौर पर दल-बदल रोक विधि कहा जाता है—जोड़ी गई, पहली बार

राजनीतिक दलों तथा विधायी दलों को संवैधानिक मान्यता प्रदान की। इस में अन्य बातों के साथ साथ यह उपबंध भी है कि यदि कोई सदस्य ऐसे राजनीतिक दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है या उसके निदेशों का पालन नहीं करता, जिसके टिकट पर वह सदन में चुनकर आया हो, तो वह सदस्यता से निरर्हित होगा। केवल उन सदस्यों को संरक्षण प्रदान किया गया है जो दल के विभाजन या विलय के बाद ऐसा करते हैं। दल-बदल रोक विधि के प्रवृत्त होने के बाद, सदन का प्रत्येक सदस्य, जो स्वतंत्र या नामनिर्देशित के रूप में नहीं चुना जाता, अपने दल का अंग होता है भले ही वह अपने दल का एकमात्र सदस्य हो अर्थात सदन में प्रतिनिधित्व प्राप्त प्रत्येक दल को, सदन में उसके सदस्यों की संख्या विचार में लाये बिना, स्वतः दल के रूप में संवैधानिक मान्यता प्राप्त हो जाती है। आशा की जानी चाहिए कि इस मामले में संवैधानिक उपबंधों तथा अध्यक्ष के निदेशों के बीच परस्पर विरोध को सुलझाने के लिए शीघ्र ही कार्यवाही शुरू की जायेगी।

बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक नेता : अमेरिकी कांग्रेस की बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक नेताओं की अवधारणा भारत में लागू नहीं होती। इसके बजाय, हमारे यहां सदन का नेता तथा विपक्ष का नेता होता है।

सदन का नेता : लोक सभा में बहुसंख्यक दल के नेता को, किसी पार्टी का पूर्ण बहुमत न होने की स्थिति में, ऐसे नेता को, जिसे सदन में बहुसंख्यक सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो, राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री बनने के लिए आमंत्रित किया जाता है। बहुसंख्या का नेता होने के नाते वह सदन के नेता के रूप में भी कार्य करता है। किसी ऐसी असाधारण स्थिति में, जब प्रधानमंत्री सदन का सदस्य न हो, वरिष्ठतम मंत्री को, जो लोक सभा का सदस्य हो, सदन के नेता के रूप में नामनिर्दिष्ट किया जाता है। इसी तरह, राज्य सभा के सदस्यों में से वरिष्ठतम मंत्री को प्रधानमंत्री द्वारा राज्य सभा में सदन का नेता नियुक्त किया जाता है।

महत्वपूर्ण संसदीय कार्य सदन के नेता के पद के साथ जुड़े हुए हैं। वह अध्यक्ष को सदन का अधिवेशन बुलाने तथा अधिवेशन का अवसान करने की तारीखों का सुझाव देता है, सरकारी कार्य का कार्यक्रम तैयार करता है और परस्पर प्राथमिकतायें निश्चित करता है।

सदन का नेता सदन की गुप्त बैठक का सुझाव दे सकता है। अध्यक्ष सरकारी कार्य की व्यवस्था, महत्वपूर्ण चर्चाओं के लिए समय के आवंटन, किसी सदस्य के निलंबन, विशेषाधिकार प्रस्तावों आदि के संबंध में उसके साथ सीधे या संसदीय कार्य मंत्री के माध्यम से परामर्श करता है। सदन का नेता समूचे सदन के प्रति जिम्मेदार तथा प्रत्युत्तरदायी होता है। अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर वह समूचे सदन के लिए तथा उसकी ओर से बोलता है। वह दोनों सदनों के लिए उप-नेता का नामनिर्देशित कर सकता है।

विपक्ष का नेता : प्रत्येक सदन में विपक्ष के सब से बड़े दल के नेता को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी जाती है किंतु उस दल के सदस्यों की संख्या इतनी होनी चाहिए जो सदन की कार्यवाही को चलता रख सके अर्थात संख्या सदन की बैठक के लिए नियत गणपूर्ति से, जो कुल सदस्य संख्या की दसवां भाग है, कम नहीं होनी चाहिए।

चूंकि ब्रिटिश टाइप की दो-दल प्रणाली अभी तक भारत में विकसित नहीं हुई है, इसलिए विपक्ष का नेता अपने स्वयं के छाया मंत्रिमंडल के साथ प्रतीक्षारत प्रधानमंत्री नहीं हो सकता। वस्तुतया ऐसी स्थिति आ सकती है जब विपक्ष के नेता सत्तारूढ़ दल की अपेक्षा एक-दूसरे के अधिक विरुद्ध हों।

'आधिकारिक' विपक्ष तथा विपक्ष के नेता को स्वाधीनता के बाद पहली बार दिसंबर, 1969 से दिसंबर, 1970 के दौरान मान्यता दी गई थी जब कांग्रेस पार्टी कांग्रेस (आर) तथा कांग्रेस (ओ) में विभाजित हो गई थी; पहली सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी तथा दूसरी विपक्ष में थी, जिसका नेता विपक्ष का नेता था। 1977 में छठे सामान्य निर्वाचनों के बाद, जिसके परिणामस्वरूप जनता पार्टी की सरकार बनी, कांग्रेस पार्टी मान्यता प्राप्त आधिकारिक विपक्ष बन गई और इसका नेता 1977-79 के दौरान विपक्ष का नेता रहा। एक बार फिर, दिसंबर, 1989-दिसंबर, 1990 के दौरान श्री राजीव गांधी लोक सभा में विपक्ष के नेता था। तत्पश्चात 1991 से 1994 तक भारतीय जनता पार्टी आधिकारिक विपक्ष रही और दोनों सदनों में इस का नेता विपक्ष का नेता रहा।

1977 से लोक सभा तथा राज्य सभा में विपक्ष के नेताओं को कतिपय आधिकारिक पदस्थिति तथा केबिनेट मंत्री के बराबर वेतन, संसद भवन में कार्यालय की सुविधाएं आदि जैसी सुविधाएं दी जाती हैं। वेतन तथा भत्ते संसद में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 द्वारा विनियमित होते हैं।

1977 के अधिनियम में विपक्ष के नेता की परिभाषा राज्य सभा/लोक सभा के ऐसे सदस्य के रूप में दी गई है, जो तत्समय, सरकार की विपक्षी ऐसी पार्टी का नेता है, जिसके सदस्यों की संख्या सब से अधिक हो तथा उसे राज्य सभा/लोक सभा के सभापति/अध्यक्ष द्वारा इस रूप में मान्यता दी गई है।

सचेतक तथा दलीय अनुशासन : भारतीय संसदीय संदर्भ में, संसदीय दल या समूह का सचेतक वह होता है जिसे यह सुनिश्चित करने के लिए नामनिर्दिष्ट किया गया हो कि दल के सदस्य महत्वपूर्ण प्रश्नों के समय पर्याप्त संख्या में उपस्थित हों तथा दल द्वारा निर्धारित आदेशों के अनुसार मतदान करें। लोक सभा/राज्य सभा में सरकारी दल का मुख्य सचेतक संसदीय कार्य मंत्री होता है तथा वह प्रत्यक्षतया सदन के नेता के प्रति उत्तरदायी होता है। संसदीय कार्यों के संबंध में सरकार को परामर्श देना उसके कर्तव्यों का एक अंग है। जहां तक सदस्यों का संबंध है मुख्य सचेतक दल के नेता के आंख तथा कान का काम करता है। अधिवेशनों के दौरान, नेता के सलाहकार की अपनी हैसियत में, उसे

प्रधानमंत्री के साथ निरंतर संपर्क बनाए रखना होता है। दो राज्य मंत्री मुख्य सचेतक की सहायता करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्थान पर रखने तथा अपने दल को एकजुट, मजबूत और सुसंगठित बनाये रखने की जिम्मेदारी उसकी होती है।

सत्तारूढ़ दल तथा विपक्षी दलों के सचेतक सर्वसामान्य हित के मामलों को सुलझाने तथा अनेक नाज़ुक मौकों पर एक-दूसरे को समझने तथा समझाने के लिए एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं। इस प्रकार, सत्तारूढ़ दल के एवं विपक्षी दलों के सचेतक संसदीय लोकतंत्र के सुप्रवाही तथा कुशल कार्यकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सरकारी दल के सचेतक को "सदन को एकत्र करना तथा उसे बनाए रखना" होता है। इसका अर्थ यह है कि इस बात को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी उसकी होती है कि जब तक सदन की बैठक चलती है, उसमें गणपूर्ति बनी रहे और सदस्यगण, विशेष रूप से जब कोई महत्वपूर्ण कार्य विचाराधीन हो, इतनी दूरी के अंदर अंदर उपस्थित रहें जहां मत-विभाजन की घंटियों की आवाज सुनाई देती हो। उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण काम सदस्यों की उपस्थिति को सुनिश्चित करना और खासतौर पर महत्वपूर्ण वाद विषयों के संबंध में अपने दल की शक्तियों को सुविन्यस्त करना होता है।

सदन का प्रबंधक होने के नाते, सत्तारूढ़ दल का मुख्य सचेतक अन्य दलों के सचेतकों के परामर्श से मतभेदों को शांत करने तथा सदन के कार्य की योजना बनाने का काम कराता है। वह एक ओर संसद के दोनों सदनों, उनके पीठासीन अधिकारियों और सचिवों तथा दूसरी ओर मंत्रियों तथा मंत्रालयों और सरकार के विभागों के बीच संपर्क का कार्य करता है। संक्षेप में, इस समय सचेतकों के कार्यों में प्रबंध, संचार और समझाने-बुझाने के कार्य सम्मिलित हैं। वे अपने सदस्यों को सदन के कार्य तथा विभिन्न वाद विषयों पर दल की विचारधारा से अवगत कराते रहते हैं तथा दल में अनुशासन लागू करते हैं।

अधिवेशनों के दौरान, विभिन्न दलों के सचेतक अपने सदस्यों को समय समय पर सूचनाएं तथा निदेश भेजते रहते हैं जिनमें उन्हें महत्वपूर्ण वाद विवादों तथा मतविभाजनों की सूचना दी गई होती है, उन्हें बताया गया होता है कि किस समय पर मतविभाजन होने की संभावना है और उस समय पर उनकी उपस्थिति की अपेक्षा की गई होती है। ऐसी सूचनाओं/अथवा, निदेशों को भी "सचेतक" कहा जाता है।

सचेतक तीन प्रकार के होते हैं—एक पंक्ति के, दो पंक्ति के और तीन पंक्ति के सचेतक। उन्हें यह नाम उनकी उन पंक्तियों की संख्या के अनुसार किया जाता है जिनके द्वारा उनके पाठ को रेखांकित किया जाता है। पंक्तियों की संख्या इस बात की द्योतक होती है कि सदन के समक्ष उपस्थित कानून विशेष कितना महत्वपूर्ण है तथा उसकी कितनी अपरिहार्यता है। तीन पंक्ति का सचेतक अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य तथा मतविभाजन का संकेतक होता है। सदस्य को इसका अवश्य पालन करना चाहिए तथा सदन में उपस्थित होना चाहिए; यह पूर्णतया आज्ञापक होता है तथा इसकी अवहेलना केवल अपने आपको

खतरे में डालकर ही की जा सकती है। तीन पंक्ति के सचेतक की उपेक्षा करना निश्चित रूप से गंभीर अनुशासनिक कार्यवाही को न्यौता देना है।

ब्रिटिश लेबर तथा कंजर्वेटिव पार्लियामेंटरी पार्टी द्वारा जारी किये गये सचेतकों में प्रयोग में लाई गई भाषा और भारत में कांग्रेस (आई) संसदीय दल द्वारा जारी किये गये सचेतकों की भाषा में अंतर है। इन में सर्वाधिक उल्लेखनीय अंतर यह है कि जबकि ब्रिटिश सचेतक केवल उपस्थित रहने का 'अनुरोध' या 'विशेष रूप से अनुरोध' करते हैं या उपस्थिति को 'अनिवार्य' घोषित करते हैं, भारतीय सचेतक इस से भी आगे बढ़ जाते हैं तथा सदस्यों को न केवल उपस्थित रहने के लिए कहते हैं बल्कि उन्हें निदेश देते हैं कि वे सरकारी नीति का समर्थन करें या सचेतक द्वारा बताये गये ढंग से, 'निश्चित रूप से दल के प्रत्याशी के पक्ष में मतदान करें'। ब्रिटिश सचेतक कभी भी 'समर्थन' या 'मतदान' की बात नहीं करते बल्कि 'उपस्थिति' तक सीमित होते हैं।

भारत के संविधान या सदन के प्रक्रिया संबंधी नियमों में सचेतक के पद का कोई उल्लेख नहीं है। वस्तुतया, अभी हाल तक राजनीतिक दलों या मान्यता के बारे में भी इस तरह का कोई उल्लेख नहीं मिलता था। संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985, जिसे आमतौर पर दल-बदल रोक कानून कहा जाता है, पारित होने के साथ ही दल के अनुशासन को बनाये रखने के मामले में सचेतक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि सचेतक दल का एक निदेश है तथा दल के निदेश की अवहेलना करने पर अब सदस्यता से हाथ धोना पड़ सकता है।

दल-बदल रोक कानून

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 के द्वारा स्थानों के रिक्त होने तथा संसद तथा राज्य विधानमंडलों की सदस्यता से निरर्हता के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 101, 102, 190 और 191 में संशोधन कर दिया गया तथा संविधान में एक नई अनुसूची (दसवीं अनुसूची) जोड़ दी गई, जिसमें दल-बदल के आधार पर निरर्हता के लिए कतिपय उपबंधों का उपवर्णन किया गया। दसवीं अनुसूची में अन्य बातों के साथ साथ यह उपबंध है कि :

(i) संसद या राज्य विधानमंडल का कोई सदस्य जो किसी राजनीतिक दल द्वारा खड़े किए गए अभ्यर्थी के रूप में सदस्य निर्वाचित हुआ है, तथा संसद या राज्य विधानमंडल का कोई नामनिर्देशित सदस्य, जो अपना स्थान ग्रहण करने के समय किसी राजनीतिक दल का सदस्य हो, दल-बदल के आधार पर निरर्हित होगा यदि उसने ऐसे राजनीतिक दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी या ऐसे दल द्वारा दिए गए किसी निदेश के विरुद्ध मतदान किया हो या मतदान करने से विरत रहा है;

(ii) संसद या राज्य विधानमंडल का कोई सदस्य निरर्हित होगा यदि वह अपने निर्वाचन के बाद किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है;

(iii) संसद या राज्य विधानमंडल का कोई नामनिर्देशित सदस्य, जो उसके नामनिर्देशन के समय किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं है तथा जो अपना स्थान ग्रहण करने की तारीख से छह मास की समाप्ति से पूर्व किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं बन गया है, निरर्हित होगा यदि वह छह मास की उक्त अवधि की समाप्ति के बाद किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित होता है;

(iv) जहां कोई सदस्य दावा करता है कि वह किसी दल के विभाजन से या किसी दल के दूसरे दल में विलय से उत्पन्न गुट का प्रतिनिधित्व करने वाले समूह से संबद्ध हैं तो उस स्थिति में कोई निरर्हता नहीं होगी किंतु विभाजन की स्थिति में विधान दल के एक-तिहाई से अन्यून सदस्य और विलय की स्थिति में विधान-दल के दो-तिहाई से अन्यून सदस्य उस समूह में होने चाहिए;

(v) कोई व्यक्ति, जो लोक सभा अथवा किसी राज्य की विधान सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के पद पर अथवा राज्य सभा के उपसभापति या किसी राज्य की विधान परिषद के सभापति या उपसभापति के पद पर निर्वाचित हुआ है, यदि वह अपने राजनीतिक दल से संबंध विच्छेद कर लेता है तो वह निरर्हित नहीं होगा;

(vi) यदि यह प्रश्न उठता है कि संसद या राज्य विधानमंडल के किसी सदन का कोई सदस्य निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं तो उसका विनिश्चिय उस सदन के सभापति या अध्यक्ष द्वारा किया जाएगा, जहां प्रश्न स्वयं सभापति या अध्यक्ष के संदर्भ में हो तो उसका विनिश्चिय संबंधित सदन के उस सदस्य द्वारा किया जायेगा, जिसे इस निमित्त निर्वाचित किया गया हो;

(vii) इस अनुसूची के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए सदन के सभापति या अध्यक्ष को नियम बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। नियम सदन के सामने रखे जाने अपेक्षित हैं और सदन द्वारा उनमें परिवर्तन किये जा सकते हैं। उनका निरनुमोदन किया जा सकता है;

(viii) इस अनुसूची के अधीन सदन के किसी सदस्य की निरर्हता के बारे में किसी प्रश्न के संबंध में सभी कार्यवाहियों के बारे में यह समझा जायेगा कि वे यथास्थिति, अनुच्छेद 122 के अर्थ में संसद की कार्यवाहियां हैं या अनुच्छेद 212 के अर्थ में राज्य के विधानमंडल की कार्यवाहियां हैं; और

(ix) संविधान में किसी बात के होते हुए भी, किसी न्यायालय को सदन के किसी सदस्य की निरर्हता से संबंधित किसी विषय के बारे में कोई अधिकारिता नहीं होगी।

दसवीं अनुसूची के उस पैरा को, जिसके अंतर्गत न्यायालयों की अधिकारिता का वर्णन किया गया है, पंजाब तथा हरियाणा उच्च न्यायालय ने संविधान के अधिकार से परे होने के कारण विखंडित कर दिया था। इस आदेश के विरुद्ध सरकार द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील दायर की गई। उच्चतम न्यायालय ने (किहोटो होलोहान बनाम ज़ाचिल्लहू तथा अन्य, एस सी, 1991 का सी डब्ल्यू पी 17) ने पाया कि दल-बदल रोक कानून के इस पैरे में वैधिक शैथिल्य हैं क्योंकि संविधान संशोधन विधेयक का, उसे राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत किये जाने से पूर्व, अपेक्षित संख्या में राज्यों की विधान सभाओं द्वारा अनुसमर्थन नहीं किया गया। इसके अलावा, दसवीं अनुसूची के अधीन अध्यक्ष के कृत्य विषयों का विधि के अधीन न्यायिक अवधारणा किये जाने की मांग करते हैं। निरर्हता के प्रश्न का अवधारण करने की प्रक्रिया को सदन की कार्यवाही का हिस्सा नहीं माना जा सकता और इसलिए वह न्यायिक पुनर्विलोकन से बरी नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने न्यायालयों की अधिकारिता का वर्जन करने वाले अनुसूची के पैरा 7 का विखंडन कर दिया तथा घोषणा की कि दल-बदल रोक कानून के अधीन कार्य करते हुए अध्यक्ष एक अधिकरण की स्थिति में होता है और इसलिए उसके विनिश्चय सभी अधिकरणों की भांति न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन हैं।

17

अंतर्संसदीय संपर्क

अन्य क्षेत्रों की तरह संसदीय क्षेत्र में भी विधायी संस्थाओं में काम करने वालों द्वारा विचारों का आदान प्रदान और अपने अपने अनुभव एक-दूसरे को बताने की स्पष्ट उपयोगिता एवं महत्व होता है। इस तथ्य की दृष्टि से, भारतीय संसद ने देश के भीतर और विश्व के अन्य भागों के विधानमंडलों के साथ, विभिन्न साधनों के द्वारा, निकट के संपर्क विकसित करने और बराबर बनाये रखने का प्रयास किया है।

संसद तथा राज्य विधानमंडल

संविधान के अधीन, संसद के और राज्य विधानमंडलों के प्रत्येक सदन को अपनी अपनी प्रक्रिया तथा अपने अपने कार्य संचालन को सुनियोजित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्राप्त है। संसद और राज्य विधानमंडलों के सदनों ने अपनी अपनी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कुछ परिवर्तनों के साथ, अपने कार्य के संचालन के लिए प्रक्रिया के समरूपी नियम बनाये हैं। प्रक्रिया में यह समरूपता उन निकट के संपर्कों का परिणाम है जो संसद और राज्य विधानमंडलों ने सम्मेलनों, विचार गोष्ठियों, संगोष्ठियों, पत्र-व्यवहार, चर्चाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, प्रबोधन पाठ्यक्रमों आदि के माध्यम से आपस में स्थापित किये हैं और बनाए रखे हैं। पीठासीन अधिकारियों, विधायी निकायों के सचिवों और संसदीय समितियों के सभापतियों द्वारा समय समय पर सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। इसी प्रकार, संसदीय प्रथा तथा प्रक्रिया और संसदीय तथा विधायी संस्थाओं की सर्वोच्चता की दृष्टि से, चयनित महत्वपूर्ण विषयों पर विचार गोष्ठियां एवं संगोष्ठियां, समय समय पर, संघ के स्तर पर और राज्यों के स्तर पर आयोजित की जाती हैं। पीठासीन अधिकारी, प्रसिद्ध सांसद, राज्य विधानमंडलों के सदस्य, विशिष्ट विधिवेत्ता, वरिष्ठ संसदीय अधिकारी एवं विशेषज्ञ उन्हें संबोधित करते हैं।

पीठासीन अधिकारियों तथा विधायी निकायों के सचिवों और संसदीय समितियों के सभापतियों के सम्मेलनों में यद्यपि सामान्यतया कोई संकल्प स्वीकृत नहीं किये जाते, फिर भी संसदीय/विधायी प्रथा और प्रक्रिया तथा साझी व्यावसायिक समस्याओं के जटिल प्रश्नों पर, मतैक्य लाने में उसकी चर्चाएं बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं।

भारत के विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों का सम्मेलन : भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों का प्रथम सम्मेलन 14 सितंबर, 1921 को दिल्ली में हुआ था, अध्यक्ष व्हाईट ने जिसकी अध्यक्षता की थी। पिछले कुछ वर्षो से यह सम्मेलन, बारी बारी, अलग अलग राज्यों की राजधानियों में, प्रति वर्ष दो या तीन दिन के लिए होता है। यह एक महत्वपूर्ण मंच होता है जहां अनुभवों का आदान प्रदान हो सकता है और प्रक्रियागत समस्याओं पर पूरी चर्चा हो सकती है। इससे स्वस्थ संसदीय प्रथाएं और परंपराएं विकसित करने और संसद में और राज्य विधानमंडलों में यथासंभव समरूपी प्रथा एवं प्रक्रिया स्थापित करने में सहायता मिलती है।

लोक सभा का अध्यक्ष पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन का पदेन सभापति होता है और लोक सभा का महासचिव सम्मेलन के सचिव के रूप में कार्य करता है।

भारत में विधायी निकायों के सचिवों का सम्मेलन : भारत में विधायी निकायों के सचिवों का प्रथम सम्मेलन 1943 में हुआ था और तब से यह लगभग प्रत्येक वर्ष प्रायः पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन से एक दिन पूर्व होता है। इस सम्मेलन का उद्देश्य सारे भारत में विधानमंडल सचिवालयों के समक्ष आने वाली प्रशासनिक, प्रक्रियागत और अन्य साझी समस्याओं पर विचार करना, और पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन द्वारा इसे निर्दिष्ट किसी मामले पर विचार करना और प्रतिवेदन देना है।

संसदीय समितियों के सभापति का सम्मेलन : संसदीय समितियों, अर्थात, लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति, सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति इत्यादि समितियों के सभापतियों के सम्मेलन सामयिक रूप से होते हैं। ये सम्मेलन इन समितियों से संबंधित परस्पर हित के प्रश्नों पर विचार करने के लिए समान नीति विकसित करने के लिए प्रथा एवं प्रक्रिया के महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचारों के आदान प्रदान के लिए होते हैं। ये सम्मेलन नयी दिल्ली में (संसद भवन में या संसदीय सौध में) संबंधित संसदीय समिति के सभापति की अध्यक्षता में, लोक सभा की कार्यावधि में आमतौर पर एक बार होते हैं।

संसदीय तथा राज्य विधानमंडलों की समितियों के दौरे : राज्य विधानमंडलों की समितियां प्रायः नयी दिल्ली और विभिन्न राज्यों की राजधानी के दौरे करती हैं और समान हित के मामलों पर विचारों के आदान प्रदान के लिए संसद की अपनी समकक्ष समितियों से और राज्य विधानमंडलों की अपनी समकक्ष समितियों से मिलती हैं। दौरे पर आई समितियां विधानमंडल की समितियों की, जब वे साक्ष्य लेती हैं, कार्यवाहियां भी देखती हैं। संसदीय समितियां अपने विषयों का मौके पर अध्ययन करने के लिए जब राज्यों के दौरे पर जाती हैं तो उस समय राज्यों में अपनी समकक्ष समितियों से भी मिलती हैं।

विचार-गोष्ठियां/संगोष्ठियां : विचार गोष्ठियां और संगोष्ठियां नयी दिल्ली में भारतीय संसदीय ग्रुप के और संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण केंद्र के तत्वावधान में समकालीन महत्व के विषयों पर होती हैं जिनमें संसद के और राज्य विधानमंडलों के सदस्य भाग लेते हैं। विभिन्न राज्यों में समय समय पर विचार गोष्ठियां आयोजित होती रहती हैं। पिछले कुछ वर्षों से किसी सामयिक रुचि के विषय पर पीठासीन अधिकारियों के वार्षिक सम्मेलन के अंतिम दिन भी एक विचार गोष्ठी आयोजित की जाती है।

भारतीय संसदीय ग्रुप : 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो अंतर्संसदीय संघ और राष्ट्रमंडल संसदीय संघ जैसे अंतर्राष्ट्रीय निकायों द्वारा तुरंत अनुरोध किये गये कि भारत उनका सदस्य बने और भारतीय शाखायें खोले। ऐसे अनुरोध किये जाने पर "भारतीय संसदीय ग्रुप" नामक एक स्वायत्त निकाय स्थापित किया गया। संसद के सदस्य उस निकाय के सदस्य बन सकते हैं। भूतपूर्व संसद सदस्य इसके सह सदस्य बन सकते हैं। अध्यक्ष, लोक सभा इसके पदेन प्रेजीडेंट हैं और उपाध्यक्ष, लोक सभा तथा उपसभापति, राज्य सभा, इसके वाईस प्रेजीडेंट हैं। महासचिव लोक सभा भारतीय संसदीय ग्रुप के पदेन सचिव हैं।

यह ग्रुप अंतर्संसदीय संघ के राष्ट्रीय ग्रुप के रूप में और राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की भारत शाखा के रूप में कार्य करता है।

अंतर्संसदीय संबंध

लोगों के प्रतिनिधियों के रूप में सांसदों की, अंतर्राष्ट्रीय तनाव कम करने और देशों के बीच समझ-बूझ को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है क्योंकि वे लोकमत का निर्माण कर सकते हैं और लोगों और देशों में समझ-बूझ पैदा करने के लिए अपने अपने देशों की कार्यपालिका पर प्रभाव डाल सकते हैं और विश्व शांति एवं सहयोग को बढ़ावा दे सकते हैं। भारत की संसद विदेशों की संसदों के साथ प्रतिनिधिमंडलों, सद्भावना मिशनों आदि का आदान प्रदान करती है और भारतीय संसदीय ग्रुप के माध्यम से अंतर्संसदीय संघ और राष्ट्रमंडल संसदीय संघ के तत्वाधान में आयोजित सम्मेलनों में नियमित रूप से भाग लेती है।

अंतर्संसदीय संघ राष्ट्रीय संसदों में गठित संसदीय ग्रुपों का संघ है जिसका उद्देश्य सभी संसदों के सदस्यों में वैयक्तिक संपर्क को बढ़ावा देना और सांझी कार्यवाही के लिए उन्हें एकजुट करना है ताकि संसदीय संस्थाएं स्थापित करने और उनका विकास करने के कार्य में उनके अपने अपने राज्य भाग ले सकें और संयुक्त संघ के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकें। इस संघ का सम्मेलन वर्ष में दो बार होता है और सदस्य देश मेजबान होते हैं।

राष्ट्रमंडल संसदीय संघ राष्ट्रमंडल के सांसदों का संघ है जिसका उद्देश्य आपस में समझ-बूझ और सहयोग को बढ़ावा देना और संसदीय संस्थाओं के अध्ययन को और उनके

प्रति सम्मान को बढ़ावा देना है। इस संघ का प्रत्येक वर्ष सम्मेलन होता है और यह प्रादेशिक स्तरों पर संसदीय प्रथा एवं प्रक्रिया पर विचार गोष्ठियां आयोजित करने में भी सहायक होता है।

भारत जब से अंतर्संसदीय संघ और राष्ट्रमंडल संसदीय संघ का सदस्य बना है तभी से इन संस्थाओं के कार्यकरण में पर्याप्त रुचि लेता रहा है। भारत 1969 में 57वें अंतर्संसदीय संघ के सम्मेलन का मेजबान था; 1957 और 1975 में राष्ट्रमंडल संसदीय सम्मेलनों का भी मेजबान था और 1969 और 1986 में राष्ट्रमंडल अध्यक्षों तथा पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलनों का भी मेजबान था। इसके अतिरिक्त, अनेक अंतर्राष्ट्रीय प्रादेशिक विचार गोष्ठियों का समय समय पर भारत में आयोजन किया जाता रहा है। सितंबर, 1991 में एक बार फिर भारत ने राष्ट्रमंडल संसदीय सम्मेलन की और 1993 में अंतर्संसदीय सम्मेलन की मेजबानी की और नयी दिल्ली में यह सम्मेलन विधिवत संपन्न हुए।

18

संसद भवन तथा अन्य इमारतें —दर्शकों के लिए व्यवस्था

संसद की इमारतों में संसद भवन, संसदीय सौध, स्वागत कार्यालय और निर्माणाधीन संसदीय ज्ञानपीठ अथवा संसद ग्रंथालय सम्मिलित है। इन सभी को मिलाकर संसद परिसर अथवा पार्लियामेंट ऐस्टेट कहा जाता है, इसमें लंबे-चौड़े लान, जलाशय, फव्वारे और सड़कें बनी हुई हैं। यह सारा परिसर सजावटी लाल पत्थर की दीवारों तथा लोहे के जंगलों और लोहे के ही विशाल द्वारों से परिबद्ध है।

संसद भवन

संसद भवन का निर्माण जिस में संसद के दो सदन—लोक सभा तथा राज्य सभा अवस्थित हैं, 1921-1927 के दौरान किया गया था। संसद भवन "नयी दिल्ली की बहुत ही शानदान इमारतों में से एक है" तथा "विश्व के किसी भी देश में विद्यमान वास्तुकला का एक उत्कृष्ट नमूना है।" इस की तुलना विश्व के सर्वोत्तम विधान-भवनों के साथ की जा सकती है। यह एक विशाल वृत्ताकार इमारत है जिसका व्यास 560 फुट तथा जिसका घेरा 1/3 मील है। यह लगभग छह एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। भवन के 12 द्वार हैं, जिनमें से पांच के सामने द्वार मंडप बने हुए हैं। पहली मंजिल पर खुला बरामदा हल्के पीले रंग के 144 चित्ताकर्षक खंभों की कतार से सुसज्जित है जिनकी प्रत्येक की ऊंचाई 27 फुट है।

भले ही इसका डिजाइन विदेशी वास्तुकारों ने बनाया था, किंतु इस भवन का निर्माण स्वदेशी सामग्री के साथ तथा भारतीय श्रमिकों द्वारा किया गया था और इसकी वास्तुकला पर भारतीय परंपराओं की गहरी छाप है।

इस भवन का केंद्र तथा केंद्र बिंदु केंद्रीय कक्ष (सेंट्रल हाल) का विशाल वृत्ताकार ढांचा है। केंद्रीय कक्ष के गुंबद का व्यास 98 फुट तथा इसकी ऊंचाई 118 फुट है। विश्वास किया जाता है कि यह विश्व के बहुत ही शानदार गुंबदों में से एक है। भारत की संविधान सभा की बैठक (1946-49) इसी कक्ष में हुई थी। 1947 में अंग्रेजों से भारतीयों के हाथों में सत्ता का ऐतिहासिक हस्तांतरण भी इसी कक्ष में हुआ था। इस कक्ष का प्रयोग

अब दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के लिए तथा राष्ट्रपति और विशिष्ट अतिथियों—राज्य सभा या शासनाध्यक्ष आदि—के अभिभाषण के लिए किया जाता है। कक्ष राष्ट्रीय नेताओं के छविचित्रों से सजा हुआ है। केंद्रीय कक्ष के तीन ओर लोक सभा, राज्य सभा और ग्रंथालय के लिए तीन चैंबर हैं तथा उनके बीच सुविन्यस्त उद्यान प्रांगण है जिनमें घनी हरी घास के लॉन तथा फव्वारे बने हुए हैं। इन तीन चैंबरों के चारों ओर एक चार मंजिला वृत्ताकार इमारत बनी हुई है जिसमें मंत्रियों, संसदीय समितियों के सभापतियों, पार्टी के कार्यालयों, लोक सभा तथा राज्य सभा सचिवालयों के महत्वपूर्ण कार्यालयों और संसदीय कार्य मंत्रालय के कार्यालयों के लिए स्थान की व्यवस्था की गई है।

पहली मंजिल पर चार समिति कक्षों का प्रयोग संसदीय समितियों की बैठकों के लिए किया जाता है। इसी मंजिल पर तीन अन्य कक्षों का प्रयोग संवाददाताओं द्वारा किया जाता है जो लोक सभा तथा राज्य सभा की प्रेस दीर्घाओं में आते हैं। संसद भवन के भूमि-तल पर गलियारे की बाहरी दीवार को अनेक भित्ति-चित्रों से सजाया गया है जिन में प्राचीन काल से भारत के इतिहास तथा पड़ौसी देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक संबंधों को प्रदर्शित किया गया है।

चैंबर के साथ जुड़े हुए तथा इसके साथ समविस्तृत दो आच्छादित गलियारे हैं जिन्हें भीतरी तथा बाहरी लाबियां कहा जाता है। ये लाबियां फर्नीचर आदि से सुसज्जित हैं जहां सदस्य आराम से बैठकर आपस में अनौपचारिक विचार-विमर्श कर सकते हैं।

लोक सभा के सदन की पहली मंजिल पर अनेक सार्वजनिक दीर्घाएं तथा प्रेस दीर्घा बनी हुई है। प्रेस दीर्घा अध्यक्ष पीठ के बिल्कुल ऊपर है और इसके बाईं ओर अध्यक्ष की दीर्घा (जो अध्यक्ष के अतिथियों के लिए है) तथा राज्य सभा दीर्घा (जो राज्य सभा के सदस्यों के लिए है) हैं। प्रेस दीर्घा के दाईं ओर राजनयिक तथा अति-विशिष्ट दर्शकों की दीर्घाएं हैं।

लोक सभा चैंबर में, जिसका फर्शी क्षेत्रफल 4800 वर्ग फुट तथा जिसमें 550 सदस्यों के बैठने का स्थान है, आधुनिक ध्वनि प्रवर्धन प्रणाली की व्यवस्था है। प्रत्येक सीट के साथ पायदानों पर चुने हुए स्थानों पर एकदिशीय निम्न प्रतिबाधा वाले माइक्रोफोन रखे गये हैं जिनके साथ बैंच की पीठ में छिपे हुए लाउडस्पीकर लगाये गये हैं। दीर्घाओं में छोटे छोटे लाउडस्पीकर लगे हुए हैं। सदस्य माइक्रोफोन के पास आए बिना ही अपनी सीटों से बोल सकते हैं। लोक सभा चैंबर में स्वचालित मत-अभिलेखन उपकरण लगाये गये हैं जिनके द्वारा सदस्य मतविभाजन होने की स्थिति में शीघ्रता के साथ अपने मत अभिलिखित कर सकते हैं।

राज्य सभा चैंबर भी लोक सभा के चैंबर की भांति ही है, किंतु यह आकार में छोटा है। इस में 250 सदस्यों के बैठने के लिए स्थान है।

संसद ग्रंथालय की अपनी इमारत अभी पूरी नहीं हुई है, इसलिए इस समय यह भूमि तल पर लाइब्रेरी हाल में, इस के साथ लगते कमरों में और पहली मंजिल के कई

कमरों में अवस्थित है। बड़ी संख्या में पुस्तकें संसद भवन के बाहर दूसरी इमारतों में जमा करके रखी हुई हैं।

संसद सदस्यों की सुविधा के लिए, पहली मंजिल पर दो मुख्य जलपान गृहों और केंद्रीय कक्ष से सदनों की ओर जाने वाले रास्तों के निकट कुछ छोटे छोटे चाय, काफी और दूध के बूथों, की व्यवस्था की गई है। अन्य सुख सुविधाओं में रेलवे बुकिंग आफिस, भारतीय स्टेट बैंक का पे आफिस, प्रथमोपचार केंद्र, डाकघर, हवाई बुकिंग और केंद्रीय लोक निर्माण विभाग का शिकायत केंद्र शामिल हैं।

संसद भवन की दीवारों पर अनेक महान वाक्य उत्कीर्ण हैं जो दोनों सदनों में विचार-विमर्श के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। संसद भवन में प्रवेश करते ही, उपनिषदों से संस्कृत में एक सूक्ति हमें राष्ट्र की प्रभुता का, जिसकी दृश्यमान प्रतीक संसद है, स्मरण कराती है। जब हम घूमकर केंद्रीय कक्ष को जाने वाले रास्ते में गुंबद की ओर देखते हैं तो वहां पर हमें अरबी में एक सूक्ति नजर आती है जिसमें कहा गया है कि लोग स्वयं ही अपने भाग्य को बना तथा ढाल सकते हैं। केंद्रीय कक्ष के द्वार के ऊपर हमें पंचतंत्र से संस्कृत में एक पद्यांश देखने को मिलता है जिसका अर्थ है कि "यह मेरा है तथा वह पराया है, इस तरह की धारणा संकीर्ण मन वालों की होती है। किंतु विशाल हृदय वालों के लिए, सारा विश्व ही उनका कुटुंब होता है।"

स्वागत कार्यालय

स्वागत कार्यालय 1975 में निर्मित एक वृत्ताकार इमारत में अवस्थित है जो आकार में अधिक बड़ी नहीं है। यह बड़ी संख्या में आने वाले मुलाकातियों/दर्शकों के लिए, जो सदस्यों, मंत्रियों आदि से मिलने के लिए या संसद की कार्यवाही को देखने के लिए आते हैं, एक मैत्रीपूर्ण प्रतीक्षा स्थल है। यह इमारत, जो पूरी तरह से वातानुकूलित है, कल्पना की दृष्टि से अनूठी है तथा पुरानी तथा नई वास्तुकला दोनों के मूल्यों का सम्मिश्रण है। स्वागत कार्यालय का केंद्रीय भाग फव्वारे जैसे ही एक शुंडाकार स्तंभ पर टिका हुआ औंधी शंकु-आकृति का है तथा शेष भाग बारह स्तंभों पर बने गोल बीम पर टिका हुआ एक स्वतंत्र शंक्वाकार ढांचा है। इमारत के बाहरी हिस्से को लाल पत्थरों से फिनिश किया गया है तथा भीतरी हिस्से में लकड़ी की लाइनिंग लगाई गई है जो गर्मजोशी तथा स्वागत की भावना को बिखेरती है। मुलाकातियों/दर्शकों के आराम के लिए स्वागत कार्यालय के अंदर एक उत्तम जलपान गृह (रेस्तरां) है।

निम्नतल में विश्रामस्थल सदस्यों की सुविधा के लिए हैं जहां वे अपने अतिथियों से भेंट कर सकते हैं तथा उनकी आवभगत कर सकते हैं।

संसदीय सौध

संसदीय सौध की इमारत 9.8 एकड़ भूखंड पर बनी हुई है। इसका फर्शी क्षेत्रफल 35,000 वर्ग मीटर है। यह एक आधुनिक, कार्यात्मक, मितव्ययी और शानदार इमारत है। इसका

निर्माण 1970-75 के दौरान हुआ। आगे तथा पीछे के ब्लाक तीन मंजिला तथा बीच का ब्लाक 6 मंजिला है, जिसके टेरेस भी हैं। निम्नतल पर जलाशय, जिसके ऊपर झूलता हुआ जीना बना हुआ है और पिरामिड, जिन से प्राकृतिक प्रकाश छन कर आता है, इस क्षेत्र की सुंदरता को और भी बढ़ा देते हैं।

सड़क के स्तर पर बने निम्नतल में स्वागत तथा पूछताछ के लिए प्रमुख सार्वजनिक क्षेत्र की व्यवस्था है। इस तल पर एक सुसज्जित चिकित्सा केंद्र है जिस ने प्रायः एक लघु-अस्पताल का रूप ले लिया है। जलाशय के चारों ओर एक विस्तृत विश्राम-स्थल की व्यवस्था की गई है। टेलीफोन एक्सचेंज, टेलीकॉम ब्यूरो, डाकघर आदि भी इसी निम्नतल में हैं।

दूसरी से पांचवीं मंजिल पर सदस्यों की सुविधा के लिए टेलीफोन, नयी दिल्ली नगरपालिका और संपदा निदेशालय के संपर्क कार्यालयों के अलावा लोक सभा तथा राज्य सभा के सचिवालय अवस्थित हैं। तीसरी मंजिल पर आयकर विवरणियां भरने में सदस्यों की सहायता के लिए आयकर कार्यालय अवस्थित है।

टेरेस तल पर संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण केंद्र और कर्मचारी पुस्तकालय अवस्थित हैं।

भूमितल एक अत्यधिक कार्यक्षम क्षेत्र माना जाता है जो राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के लिए आदर्शतया अनुकूल है। एक वर्गाकार निमग्न प्रांगण के चारों ओर एक मुख्य समिति कक्ष तथा चार लघु समिति कक्षों का समूह है। इस प्रांगण के मध्य में एक अष्टकोणीय जलाशय है। प्रांगण में, जिसके ऊपर की ओर पच्चीकारी युक्त जाली का पर्दा है, पौधे लगाकर एक प्राकृतिक दृश्य उत्पन्न किया गया है और इसमें पत्थर की टुकड़ियों तथा छोटे पत्थरों के खंडजे बनाये गये हैं। पांचों के पांचों समिति कक्षों में संसद भवन में लोक सभा तथा राज्य सभा चेंबरों की भांति साथ साथ भाषांतरण की व्यवस्था है। प्रत्येक समिति कक्ष के साथ संसदीय समितियों के सभापतियों के कार्यालयों के लिए एक कमरा है। जलाशय इस क्षेत्र की प्रमुख विशेषता है। बहुद्देश्यीय सभागार, भारतीय स्टेट बैंक की शाखा, एक विशाल बैंकट हाल, प्राइवेट डाइनिंग रूम, और जलपान गृह भी, जिनमें एक मिल्क बार सम्मिलित है, भूमि तल पर उपस्थित हैं। समूचे भूमितल पर विश्राम स्थल बने हुए हैं।

एक आधुनिक तथा कुशल पी ए बी एक्स टेलीफोन एक्सचेंज स्थापित किया गया है जो एकमात्र पार्लियामेंट हाउस एस्टेट की जरूरतों को पूरा करता है। इंटर-काम तथा बाहरी कालों के लिए एक ही टेलीफोन का प्रयोग किया जाता है।

दर्शकों के लिए भ्रमण की व्यवस्था

अधिवेशनों के बीच की अवधियों में पर्यटकों, छात्रों और रुचि रखने वाले अन्य व्यक्तियों को निर्दिष्ट समय के दौरान संसद की इमारतें देखने के लिए घुमाने की व्यवस्था विद्यमान है। दर्शकों के साथ स्टाफ का एक सदस्य जाता है जो उनका मार्गदर्शन करता है तथा

इमारतों के बारे में संक्षेप में बताता है। दर्शक हर आधे घंटे बाद मोटे तौर पर 40-50 व्यक्तियों के सुविधाजनक समूहों में स्वागत कक्ष से अपने भ्रमण के लिए प्रस्थान करते हैं। छात्रों तथा संसदीय संस्थाओं के कार्यकरण के बारे में जानकारी प्राप्त करने में विशेष रूप से रुचि रखने वाले अन्य लोगों के समूहों के लिए विशेष भ्रमण की व्यवस्था भी की जाती है। ऐसी स्थितियों में, संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण केंद्र भ्रमण शुरू करने से पहले दर्शकों को संक्षिप्त परिचय देने की व्यवस्था करता है। पिछले दस वर्षों के दौरान हर वर्ष संसद भवन की इमारतों को देखने के लिए आने वाले दर्शकों की कुल संख्या 3000 से लगभग 90,000 के बीच रही है।

अनुक्रमणिका

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित